तृतीय सेमेस्टर
Third Semester

कृषि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त **एम.ए.ई.सी. - 604**
Theories of Agricultural Economics **M.A.E.C. - 604**

विषय-सूची

खण्ड – 1 परिचय (Introduction)	**पृष्ठ संख्या 1-49**
इकाई 1- कृषि अर्थशास्त्र की प्रकृति और क्षेत्र (Agricultural Economics: Meaning, Nature and Scope)	1-11
इकाई 2- आर्थिक विकास में कृषि का महत्व और कृषि उद्योग सम्बन्ध (Importance of Agriculture in Economic Development and Agriculture-Industry Relation)	12-23
इकाई 3- कृषि क्षेत्र आकार, वृद्धि एवं उत्पादकता की प्रवृत्तियाँ (Agricultural Sector- Size, Growth and Trends of Productivity)	24-36
इकाई 4- भारत में भूमि सुधार (Land Reforms in India)	37-49
खण्ड – 2 सत्त कृषि एवं खाद्य सुरक्षा (Sustainable Agriculture and Food Security)	**पृष्ठ संख्या 50-93**
इकाई 5- हरित क्रान्ति और तकनीकी परिवर्तन (Green Revolution and Technical Change)	50-61
इकाई 6- भारतीय कृषि और मशीनीकरण (Indian Agriculture and Mechanization)	62-72
इकाई 7- बायो तकनीक एवं आर्गेनिक कृषि (Bio-Tech and Organic Farming)	73-83
इकाई 8- खाद्य सुरक्षा (Food Security)	84-93

खण्ड – 3 उत्पादन फलन, सम्बन्ध एवं नियम (Production Function, Relationship and Rules)	**पृष्ठ संख्या 94-165**
इकाई 9- कृषि उत्पादन फलन और आगत-निर्गत सम्बन्ध (Agricultural Production Function and Input-Output Relationship)	94-108
इकाई 10- साधन-साधन सम्बन्ध (Factor-Factor Relationship)	109-125
इकाई 11- उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध (Production-Production Relationship)	126-144
इकाई 12- कृषि उत्पादन नियमः परिवर्तनशील एवं अनुपातों का नियम (Agricultural Production Rules: Law of Variable Proportions and Return of Scale)	145-165

खण्ड – 4 कृषि विकास प्रारूप (Agricultural Development Model)	**पृष्ठ संख्या 166-211**
इकाई 13- लेविस का कृषि विकास प्रारुप (Lewis's Agricultural Development Model)	166-177
इकाई 14- फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारुप (Fei-Ranis Development Model)	178-188
इकाई 15- मिलर का कृषि विकास प्रारुप (Miller's Agricultural Development Model)	189-196
इकाई 16- शुट्ज और बोसरेज का कृषि विकास प्रारुप (Schultz and Boserup Model of Agricultural Development)	197-211

Suggested Readings:

1. Dantawala, M.L. et al. (1991) ***Indian Agricultural Development since Independence***, Oxford & IBH, New Delhi.
2. Dev, S.M. (2013) ***India Development Report***, Oxford University Press, New Delhi
3. Desai, R.G. (2009) ***Agricultural Economics***, Himalaya Publishing House.
4. Ghatak, S and K. Ingerscant (1984) ***Agriculture and Economic Development***; Select books, New Delhi.
5. Nachanc, D.M. (2011) ***India Development Report 2011***, Oxford University Press, New Delhi
6. Bhalla, G.S. (2008) ***Indian Agriculture since Independence***, SAGE Publications Pvt. Ltd, New Delhi
7. Chakravariti, S. (1987) ***Development Planning: The Indian Experience***, Oxford University Press New Delhi
8. Datt, Gaurav and Ashwani Mahajan (2010) ***Indian Economy***, S. Chand & Company Pvt. Ltd., New Delhi
9. Dhingra, I.C. ***The Indian Economy: Environment and Policy***, 23rd Ed. Sultan Chand & Sons, New Delhi

10. Gupta, S.P. (1989) ***Planning and Development in India :A Critique***, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
11. Prakash, B.A. (Ed.) (2009), "***Indian Economy since 1991: Economic Reforms and Performance****"*, Sage Publications, New Delhi.
12. Prasad, C.S. (2010) ***Indian Economy- A Performance Review -1947-48 to 2010-11***, New Century Publications, New Delhi
13. Sandh A.N., Singh, Amarjit (2009) ***Fundamentals Agricultural Economics***, Himalaya Publishing House.
14. Taylor, H.C., (1949), ***Outlines of Agricultural Economics***, MacMillan
15. Uma, Kapila, (2008), "***Indian Economy: Performance & Policies***", 8th Ed. Academic Foundation, New Delhi.

इकाई 1- कृषि अर्थशास्त्र की प्रकृति और क्षेत्र
(Agricultural Economics: Meaning, Nature and Scope)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 कृषि अर्थशास्त्र का विकास
1.4 कृषि अर्थशास्त्र का आशय एवं परिभाषाएँ
1.5 कृषि अर्थशास्त्र की प्रकृति
1.6 कृषि अर्थशास्त्र का क्षेत्र
1.7 कृषि अर्थशास्त्र का अलग अध्ययन क्यो?
1.8 कृषि अर्थशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ सम्बन्ध
1.9 महत्व
1.10 अभ्यास प्रश्न
1.11 सारांश
1.12 शब्दावली
1.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.14 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ
1.15 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ
1.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1. प्रस्तावना

कृषि अर्थशास्त्र से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई कृषि अर्थशास्त्र आशय, प्रकृति और क्षेत्र है। जैसा कि आप जानते है कि अब कृषि अर्थशास्त्र का अलग से अध्ययन किया जाता है, क्योंकि कृषि क्षेत्र की समस्याएँ अन्य क्षेत्रों जैसे उद्योग, ब्यापार तथा व्यवसाय से अलग है। अर्थशास्त्र में हम अध्ययन करते है कि कैसे अपने सीमित साधनों से असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करें जिससे कि हमे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो। वर्तमान समय में कृषि न केवल फसल उगाने तक सीमित रही है, बल्कि वनिका तथा पशुपालन भी कृषि क्षेत्र में आते है। कृषि अर्थशास्त्र का प्रारम्भ खेत में होने वाले उत्पादन के अध्ययन के रूप में हुआ था किन्तु समय के साथ-साथ इसका क्षेत्र ब्यापक होता चला गया। कृषि शब्द का प्रयोग खाद्यान्न उत्पादन के लिए किया जाता है जिसे खेती बाड़ी भी कहते है। कृषि में सभी खाद्य उत्पादन क्रियाएँ, उनके उत्पादन, प्रसंस्करण, फसलों के लिए खेतों का वितरण , विपणन एवं कृषि साख का अध्ययन किया जाता है। सभी क्रियाए कृषि आगत की तरह है जैसे ,उर्वरक, साख, मशीनरी, परिवहन, प्रसंस्करण, संग्रहण, तथा सेवाए कृषि अर्थशास्त्र में अध्ययन का एक अंग है। कृषि अर्थशास्त्र में हम अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को कृषि की समस्याओं को हल करने के लिए प्रयोग करते है। हम अपने सीमित साधनों को अधिकतम कृषि उत्पादन के लिए प्रयोग करते है जिससे कि हम अधिकतम लाभ प्राप्त कर सके। हम अर्थशास्त्र की सहायता से विभिन्न उत्पादन साधनों का इस प्रकार से एकत्र करते है कि अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके। जब हम कृषि से सम्बन्धित कोई निर्णय लेते है तो अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों से हमे सीख मिलती है कि इनका प्रयोग किस प्रकार करे जिससे कि हमे अधिकतम कृषि उत्पादन प्राप्त हो।

1.2 उदेश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन बाद आप समझा सकेगे की –

- ✓ कृषि अर्थशास्त्र का आशय एवं परिभाषाएं क्या है।
- ✓ कृषि अर्थशास्त्र की प्रकृति क्या है।
- ✓ कृषि अर्थशास्त्र का क्षेत्र क्या है।
- ✓ कृषि अर्थशास्त्र का अलग से अध्ययन क्यों किया जाता है।
- ✓ कृषि अर्थशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ क्या सम्बन्ध है।

1.3 कृषि अर्थशास्त्र का विकास:

प्रारम्भिक अर्थशास्त्रियों के विचारों में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यूरोप में 19वी. शताब्दी के औद्योगीकरण से पूर्व कोई भी अर्थशास्त्री कृषि का उल्लेख किए बिना अपने विचार प्रकट नही कर सकता था। जैसा कि ब्लैक का कहना है कि कृषि अर्थशास्त्र विशेषीकरण के रूप में जितना अर्थशास्त्र से विकसित हुआ है उतना ही प्राकृतिक विज्ञानों एवं तकनीकी से भी, विद्वानों द्वारा वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कृषि से सम्बन्धित प्रश्नों पर ध्यान जाने लगा था। 1890 की आर्थिक मन्दी ने कृषि को बुरी तरह से प्रभावित किया था। उस समय संगठित समूहों ने फार्म की समस्यों में पर्याप्त रूचि ली। जो प्रोफेसर पहले कृषि रसायन शास्त्र, एग्रानामी, हार्टीकल्चर एवं सामान्य अर्थशास्त्र जैसे प्रश्नों पर ही विचार करते थे, वे अब कृषि अर्थशास्त्र के अध्ययन की ओर अभिमुख हुए। फार्म प्रबन्ध का सर्वप्रथम प्रोफेसर एन्डूयूबाँस को नियुक्त किया गया। वे उस समय एग्रानामी के प्रोफेसर भी थे। थामस एक.हन्ट (Thomas F. Hunt) को कृषि कालेज एवं कृषि प्रयोग सम्बन्धी कार्यो का सूत्रधार माना जाता है। मि. हन्ट एक ऐसे कृषि अर्थशास्त्री थे जिन्होंने खेती बाड़ी के भौतिक, जैविक एवं आर्थिक पहलुओं को पहचाना तथा

अच्छे फार्म प्रबन्ध की व्यवस्था को प्रोत्साहित करने में इनकी आवश्यकता को स्वीकार किया। विलियम जे. स्पिलमैन (william I. Spillman) ने 1920 में संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग में फार्म प्रबन्ध का कार्य प्रारम्भ किया तथा एक फार्म पर खेती कितनी ब्यापक होनी चाहिए तथा फार्म कितना बड़ा होना चाहिए आदि बातों पर विचार किया। कृषि अर्थशास्त्र का अध्ययन सर्वप्रथम अमेरिका से ही प्रारम्भ होता है। थामस निक्सन कार्बर ने 1903 में एवं प्रोफेसर एच. सी. टेलर (Prof. H.C Taylor) ने कृषि अर्थशास्त्र तथा प्रो. जार्ज लामेन ने ग्रामीण अर्थव्यावस्था (Rural Economy) का पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया टेलर ने अपनी पुस्तक Agricultural Economies 1905 में प्रकाशित की। प्रो. कार्बर की रचना Principals of Rural Eco nomics 1911 में प्रकाश में आयी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद ब्यावसायिक खेती बाड़ी का प्रसार हुआ।

कृषि अर्थशास्त्र के राष्ट्रीय ब्यूरो तथा कृषि कालेजों के स्टाफ ने सामान्य विक्री की समस्याओं, कीमतों, विदेशी प्रतियोगिता, यातायात, उत्पादन बाजार एवं सांख्यिकीय की समस्याओं का अध्ययन किया। 1920 से फार्म कीमत एवं आय नीति की समस्याओं ने कृषि अर्थशास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

ब्यावसायिक कृषि अर्थशास्त्रियों को उत्पादन अर्थशास्त्र (Prduction Economics), फार्म प्रबन्ध (Earm management), कृषि विपणन ब्यवस्था (Agricaltural Marketing) तथा कृषि नीति (Agricaltural policy) में वर्गीकृत किया जा सकता है। इस प्रकार कृषि अर्थशास्त्र की विभिन्न समस्याओं ने अर्थशास्त्रियों को विचार के लिए प्रेरित किया है, साथ ही वर्तमान में देशो में तो कृषि पूर्णत: वैज्ञानिक हो गयी है।

1.4 कृषि अर्थशास्त्र का आशय एवं परिभाषाएँ

कृषि अर्थशास्त्र में कृषि तथा किसानों से सम्बन्धित आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। अनेक विद्वानों ने कृषि अर्थशास्त्र की परिभाषा अपने-अपने ढंग से दी है इनमें से प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित है।

प्रो. ग्रे (*Prof. Gray*) के अनुसार ***"कृषि अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें सामान्य अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों एवं विधियों को कृषि व्यवसाय की विशिष्ट परिस्थितियों में लागू किया जाता है।" (According to, " It may defined the science in which the principles and methods of Economics are applied to the special conditions of agricultural industry.")***

प्रो. जोजियर (Jouzier) के अनुसार ***"कृषि अर्थशास्त्र कृषि विज्ञान की वह शाखा है जो कृषि साधनों के नियमन से सम्बन्ध रखता हुआ यह बताता है कि किसान किस प्रकार अपने व्यवसाय से लाभ उठाकर अपने को सुखी बना सकते है।" ("Agricultural Economics is that branch of agricultural science which treats of the manner of regulating the relations of the different elements comprising the resources of the farmer, it be their relation to each other or with other human beings in order to secure the great degree of prosperity of the enterprise.")***

प्रो. हिबार्ड (Hibbard) के अनुसार- ***"कृषि अर्थशास्त्र कृषि कार्य वाले मनुष्यों के धन कमाने और ब्यय करने की क्रियाओं से उत्पन्न पारस्परिक समस्याओं का अध्ययन करता है।" ("Agricultural economics is the study of relationship arising from the wealth getting and wealth spending activities of man in agriculture".)***

प्रो. हावार्ड के अनुसार ***"कृषि अर्थशास्त्र सामान्य अर्थशास्त्र के नियमों को कृषि कला व व्यापार पर लागू करने वाला शास्त्र है।"*** According to Prof. Howard, ***"Agriculture Economics may be defined as the application of general economics to the crafts and business of agriculture."***

प्रो. टेलर के अनुसार, ***"कृषि अर्थशास्त्र उन सिद्धान्तों का विवेचन करता है जो कृषक की इन समस्याओं क्या उत्पादन किया जाय और कैसे उत्पादन किया जाए, क्या बेचा जाए और कैसे बेचा जाए को***

शासित करते है जिससे सम्पूर्ण समाज के हित के साथ-साथ किसानों को भी अधिक से अधिक लाभ हो ।' According to Taylor, ***"Agricultural Economics deals with the principles which underlie for farmers problems of what to produce, how to produce it, what to sell and how to sell it, in order to secure the largest net profit for himself consistent with the best of society as a whole. ,,***

प्रो. एस. बी. के अनुसार, " ***कृषि अर्थशास्त्र कृषि से संबंधित उन सिद्वान्तों एवं सूत्रों का अध्ययन है जिनकी सहायता से कम समयावधि में ही उन्नत खेती करके समृद्ध एवं सुखमय जीवन व्यतीत किया जा सकता है।"*** According to A. W. Ashby, ***"Agricultural Economics is an applied science that is methodical pursuit off knowledge of results, for the purpose of stabilizing, adopting or modifying them, if and when necessary of changing their results."***

स्नोड गाँस एवं वालास के अनुसार, ***"कृषि अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान का एक ब्यावहारिक पहलू माना जा सकता है जिसमें कृषि सम्बन्धित समस्याओं के समस्त पहलूओं की और ध्यान दिया जाता है।"***

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कृषि अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग कृषि क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के लिए किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र मूल रूप से अर्थशास्त्र की ही एक शाखा है। कृषि अर्थशास्त्र में कृषि से मनुष्य को धन कमाने और उसे व्यय करने की समस्त क्रियाओं से उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। कृषि क्या है ? लम्बे समय तक कृषि फसलों के उत्पादन से सम्बन्धित था। जैसे-जैसे आर्थिक विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ी अन्य बहुत से व्यवसाय कृषि उत्पादन से जुड़े गये तथा ए कृषि के भाग बन गये। वर्तमान समय में कृषि में कृषि उत्पादन के अलावा फारेस्ट्री, वनीकरण तथा पशुपालन इत्यादि को शामिल किया जाता है। कृषि उत्पादों का विपणन, परिष्करण एवं वितरण अब कृषि व्यवसाय के भाग समझे जाने लगे है। कुछ अन्य कृषि क्रियाएँ जैसे कृषि आगतों की पूर्ति, बीज, उर्वरक, ऋण, बीमा, इत्यादि भी प्रस्तावना कृषि व्यवसाय के भाग माने जाते है।

1.5 कृषि अर्थशास्त्र की प्रकृति

कृषि अर्थशास्त्र में सामान्य अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है। प्रथम प्रश्न जो संबंधित है वह कृषि अर्थशास्त्र के क्षेत्र से है। कृषि अर्थशास्त्र के अधिकतर सिद्धान्त सामान्य अर्थशास्त्र से लिए गये है, तथा कृषि अर्थशास्त्र की मुख्य साखाएं सामान्य अर्थशास्त्र के समान है, लेकिन तब यह प्रश्न उठता है कि यदि सामान्य अर्थशास्त्र के सिद्धान्त कृषि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त से अलग नही है तो कृषि अर्थशास्त्र को अलग से अध्ययन की आवश्यकता क्यों है। इसका कारण यह है कि कृषि अर्थशास्त्र में सामान्य अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से नही करते है, बल्कि सामान्य अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों में सुधार करके, कृषि क्षेत्र की विशेषताओं तथा स्थितियों के अनुसार इसका प्रयोग करते है।

1. क्या कृषि अर्थशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान है: कृषि अर्थशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान के नाते वस्तु स्थिति हमारे सम्मुख रखता है। यह कारण तथा परिणाम के संबंध को बताता है। उत्पादन के क्षेत्र में यह हमें बताता है कि किसी भूमि के टुकड़े पर ज्यों-ज्यों श्रम तथा पूँजी की इकाइयां बढ़ाते है त्यों-त्यों प्रत्येक अगली इकाई का उत्पादन घटता जाता है। इस प्रवृत्ति को घटते प्रतिफल का नियम कहते है। कुछ अर्थशास्त्री कृषि अर्थशास्त्री को व्यावहारिक विज्ञान कहते है। जैसा कि एस.बी. की परिभाषा से स्पष्ट है कि कृषि अर्थशास्त्र एक व्यावहारिक विज्ञान है तथा यह कृषि से संबंधित आर्थिक समस्याओं का पहचान करना, अध्ययन करना, समस्याओं का वर्गीकरण करना आदि समस्याओं के समाधान से संबंधित है। ग्रे के अनुसार- कृषि अर्थशास्त्र

एक विज्ञान है, जिसमें अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों एवं उपायों को कृषि उद्योग की विशेष दशाओं में प्रयोग करते है। जबकि ब्लैक इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं है। जैसा कि हम जानते है कि विशुद्ध विज्ञान का प्रयोग विशेष स्थिति में होता है। उदाहरण के लिए इंजीनियरिग एक व्यावहारिक विज्ञान है, यह सुझाव देता है कि भौतिक विज्ञान तथा अन्य विज्ञानों का प्रयोग एक निश्चित स्थिति में किस प्रकार किया जाता है।

2 **कृषि अर्थशास्त्र विज्ञान तथा कला दोनों है** : जैसा कि बताया जा चुका है कि कृषि अर्थशास्त्र को व्यावहारिक विज्ञान नही कहना चाहिए बल्कि यह विशुद्ध विज्ञान का एक विशेष रूप है। विज्ञान की तरह कृषि अर्थशास्त्र भी विभिन्न आर्थिक चरो के बीच कारण तथा परिणाम संबंध किस प्रकार का है। यदि यह संबंध पाया जाता है तो हम इसका प्रयोग हम विभिन्न आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए करते है। कृषि अर्थशास्त्र एक कला भी है। यह हमें उन उपायों तथा विधियों को बताता है जिन्हें अपनाकर कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि की जा सकती है। दूसरे हमें यह बताता है कि किसान को, महाजन के चंगुल से छुड़ाने के लिए सहकारी समितियों का गठन करना चाहिए। तीसरें कृषि मजदूरों की मजदूरी बढ़ाने के लिए यह कृषि मजदूरों की संघ बनाने की सलाह देता है। चौथे किसान को उसकी उपज का उचित मूल्य दिलवाने के लिए यह कृषि विपणन समितियों का गठन करने को कहता है।

3 **आदर्श विज्ञान (Normative Science):** कृषि अर्थशास्त्र हमारे सामने आदर्श भी प्रस्तुत करता है अर्थात यह अच्छे/ बुरे तथा उचित / अनुचित का भी विचार करता है। यह इस प्रश्न का भी उत्तर देता है कि क्या होना चाहिए। उदाहरण के लिए कृषि अर्थशास्त्र बताता है कि भारत में अन्य देशों की अपेक्षा प्रति हेक्टेअर उत्पादन बहुत कम है अतः उसे बढ़ाना चाहिए। दूसरे कृषि श्रमिकों की मजदूरी व कार्यक्षमता भी अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है जिसे बढाना चाहिए। तीसरे भारत में कृषि मजदूरों के कार्य करने के घण्टे बहुत अधिक है जिन्हें सीमित करना चाहिए। चौथे महाजन किसान से ऊची ब्याज दर वसूल करते है जिसे कम करना चाहिए। इस प्रकार हम कह सकते है कि कृषि अर्थशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान और आदर्श विज्ञान के साथ-साथ कला भी है।

1.6 कृषि अर्थशास्त्र का क्षेत्र उपरोक्त परिभाषाएं

कृषि अर्थशास्त्र के क्षेत्र को इंगित करती है। सामान्य अर्थशास्त्र के सिद्धान्त और कृषि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त में मूल रूप से कोई अन्तर नहीं है। सामान्य अर्थशास्त्र के लगभग सभी यन्त्रों का प्रयोग कृषि अर्थशास्त्र में होता है। उत्पादन उपभोग, वितरण, विपणन,वित्त, योजना एवं नीति निर्माण आदि कृषि अर्थशास्त्र की मुख्य शाखाएं है। कृषि क्षेत्र का ब्यष्टिगत तथा समष्टिगत दृष्टि से भी वर्णन किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत कृषि समस्याएं तथा उनके समाधान के उपायों का अध्ययन किया जाता है। प्रो. केस के अनुसार, "कृषि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत कार्य प्रबन्ध, विपणन, सहकारिता, भू-धारण पद्धतियां, ग्रामीण कृषि साख, कृषि नीति, कृषि मूल्यों का विश्लेषण तथा इतिहास आदि को सम्मिलित किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र में हम न केवल आर्थिक तथ्यों का ही अध्ययन करते है, बल्कि कृषि समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक सुझाव भी प्रस्तुत करते है। अन्य शब्दों में हम कह सकते है कि कृषि अर्थशास्त्र में किसान क्या पैदा करे, कितना पैदा करे, उसे कहां तथा किसके द्वारा बेचे, आय को बढ़ाने के लिए कौन सा सहायक धंधा अपनाएं, अपनी पैदावार में किसकों कितना तथा किस प्रकार हिस्सा दे तथा किन-किन वस्तुओं का उपयोग करें आदि सभी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। आज कृषि अर्थशास्त्र की विषय सामग्री ब्यक्तिगत स्तर पर कार्य संगठन एवं प्रबन्ध तक ब्यापक हो गयी है। दूसरे कृषि अर्थशास्त्र का विकास होने के साथ-साथ कृषि उत्पादन में नई-नई संभावनाएं पैदा हो गयी है। कृषि अर्थशास्त्र किसानों के लिए इस नये ज्ञान को आसान बनाकर उनमें प्रेरणा का संचार करता है। तीसरे कृषि अर्थशास्त्र, कृषि अनुसंधान तथा तकनीकि विकास को प्रोत्साहन देता है। चौथे अन्तर्राष्ट्रीय ब्यापार में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान हो जाने के कारण कृषि

उत्पादों का ब्यवस्थित ढंग से उत्पादन और वितरण करने के उद्देश्य से आजकल भिन्न राष्ट्रो के बीच सहयोग में वृद्धि हो रही है। अतः कृषि अर्थशास्त्र अन्तर्गर्राष्ट्रीय स्तर के समझौते करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

1.7 कृषि अर्थशास्त्र का अलग अध्ययन क्यों?

यद्यपि कृषि तथा उद्योग की समस्याए मिलती जुलती है। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त कृषि व्यवसाय में लागू होते है। जैसे कृषि के उत्पादन, विनिमय, वितरण तथा उपभोग क्रियाओं में अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों किया जा सकता है। लेकिन कृषि अर्थशास्त्र का अलग से अध्ययन की आवश्यकता क्यों है, उसके निम्न कारण है

1. **जीवन पद्धति:** बहुत सी स्थितियों में लोग कृषि को व्यवसाय के रूप में नही लेते है, इसे जीविका के साधन के रूप में लेते है। कुछ निश्चित रीति-रिवाज कृषि से जुडे हुए है। कुछ मेले तथा त्योहार फसलों की बुआई तथा कटाई के समय मनाये जाते है। इस प्रकार सामाजिक रीति -रिवाज कृषि उत्पादन को प्रभावित करते है, जबकि औद्योगिक क्षेत्र में इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. **आत्म निर्भरता:-** बहुत सी परिस्थितियों में कृषक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए फसलों का उत्पादन करता है। बहुत सी स्थितियों में वह लाभ कमाने के लिए फसलों का उत्पादन करता है।
3. **संयुक्त उत्पाद:-** कृषि में बहुत सी वस्तुएं संयुक्त उत्पाद का उत्पादन करती है। जैसे गेहूँ तथा दूंसा या मांस तथा ऊन इत्यादि। इस प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन लागत की गणना करना कठिन हो जाता है, जबकि उद्योगों में उत्पादन लागत की गणना करना आसान होता है।
4. **उत्पादन पर कम नियंत्रण:-** कृषि क्षेत्र में कृषकों का उत्पादन को बढाने या घटाने पर बहुत ही सीमित नियन्त्रण होता, है, यह प्राकृतिक दशाओं द्वारा ज्यादा प्रभावित होता है, जो कि कोई ब्यक्ति नियन्त्रित नही कर सकता है। फसलों का विकास तथा अन्य कृषि क्रियाएँ मौसम तथा अन्य प्राकृतिक दशाओं से ज्यादा प्रभावित होती है।
5. **श्रम का विभाजन:-** कृषि में श्रम विभाजन की बहुत ही कम सम्भावना है। अधिकतर कृषि इकाइयाँ बहुत ही छोटी होती है तथा अधिकतर कृषि कार्य अकुशल होता है।
6. **साधनों का एकत्रीकरण:-** कृषि में उद्योगों की तुलना में उत्पादन के साधनों की एकत्रीकरण की बहुत कम सम्भावना होती है। जबकि उद्योगों साधनों के विभाजन की ज्यादा सम्भावना होती है। कृषि में जमीन उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन है तथा कृषि में आगतों की संख्या कम होती है।
7. **जमीन का महत्व:-** कृषि में जमीन उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन होता है। कृषि उत्पादन अधिकतर जमीन की स्थिति, आकार तथा गुण पर आधारित होता है।

1.8 कृषि अर्थशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ सम्बन्ध

1. **कृषि अर्थशास्त्र तथा इतिहास:-** कई ऐतिहासिक घटनाएं कृषि की दशा को प्रभावित करती है। कृषि व्यवसाय की सफलता तथा कृषि व्यवसाय की असफलता भी कृषि को प्रभावित करती है। 1789 की फ्रांस क्रान्ति कृषि में लगे हुए गरीब जनता की खराब दशा का परिणाम था। उस समय कृषि एक मुख्य व्यवसाय था। ठीक इसी तरह बहुत से घटनाएं कृषि की अच्छी तथा बुरी दशा का परिणाम थी। आर्थिक इतिहास इतिहास की आर्थिक भाग का हिस्सा है। जैसा की हम इतिहास में राजनैतिक, भौगोलिक, अर्थशास्त्र इत्यदि घटनाओं

के रिकार्ड का अध्ययन करते है। इसलिए अर्थशास्त्र तथा इतिहास का साथ-साथ अध्ययन करते है। इंग्लैण्ड में कृषि क्रान्ति ही औद्योगिक क्रान्ति का मुख्य कारण थी, इसलिए इतिहास तथा कृषि अर्थशास्त्र का बहुत निकट का सम्बन्ध है।

2. **कृषि अर्थशास्त्र तथा भूगोल:-** कृषि अर्थशास्त्र में हम यह अध्ययन करते है कि सीमित साधनों से किस प्रकार अधिकतम उत्पादन प्राप्त करे। कृषि उत्पादन मुख्य रूप से भौगोलिक संसाधनों पर निर्भर करता है। उर्वरा भूमि, वेहतर जल संसाधन, जंगल, खनिज संसाधन इत्यादि अर्थव्यवस्था की उत्पादकता को प्रभावित करते है। यदि हमारे पास अच्छे संसाधन है तो हम अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते है। आस्ट्रेलिया में अच्छी भौगोलिक संसाधन उसकी अर्थव्यवस्था को अनुकूल रूप से प्रभावित करती है। जल संसाधनों का वेहतर प्रयोग अच्छी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है तथा इनका साथ-साथ अध्ययन किया जाता है। आर्थिक भूगोल अर्थशास्त्र विषय का एक भाग है।
3. **कृषि अर्थशास्त्र तथा सांख्यिकीय:-** सांख्यिकीय कृषि अर्थशास्त्र के वेहतर अध्ययन में सहायता होता है। विभिन्न कृषि अर्थव्यवस्थाओं का सांख्यिकीय की सहायता से तुलना करना आसान होता है। कृषि उत्पादन, कार्यक्षमता, कीमत या आय को सांख्यिकीय की सहायता से गणना की जा सकती है। सांख्यिकीय आकड़े किसी क्षेत्र विशेष के पिछडापन को इंगित करते है तथा इन आकड़ो के आधार पर अर्थशास्त्री उस क्षेत्र विशेष की समस्याओं को दूर करने के लिए सुझाव दे सकते है। सांख्यिकीय आकड़े पहले से लागू की गयी योजनाओं का परिणाम जानने के लिए लाभदायक होती है। औसत, सह-सम्बन्ध, माध्य, माध्यिका, तथा अन्य सांख्यिकीय उपाय किसी अर्थव्यवस्था की आर्थिक दशा को अच्छे तरीके से समझने में सहायक होता है। इसलिए कृषि अर्थशास्त्र तथा सांख्यिकीय का एक साथ अध्ययन आवश्यक होता
4. **कृषि अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र:-** समाजशास्त्र एक समाज का अध्ययन है। समाज के विभिन्न आयाम जैसे आर्थिक, राजनैतिक , धार्मिक, कानूनी इत्यादि समाजशास्त्र में अध्ययन किये जाते है। अर्थशास्त्र समाजशास्त्र के अध्ययन का एक भाग है। सामाजिक तत्व आर्थिक दशा को प्रभावित करते है। संगठित परिवार तथा जाति पद्धति का टूटना समाजशास्त्र के अध्ययन का विषय है, लेकिन ये तत्व कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन को प्रभावित करते है तथा ए श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा गतिशीलता को भी प्रभावित करते है। दूसरी तरफ आर्थिक दशा भी समाज को बहुत अधिक प्रभावित करता है। देश की सम्पन्नता तथा वेहतर आर्थिक दशा कुछ सामाजिक बुराइयों जैसे चोरी, डकैती इत्यादि को दूर करने में सहायक होते है। काला बाजारी या स्मगलिंग इत्यादि को असामाजिक बुराईयां माना जाता है। धनी तथा गरीब समाज में सामाजिक पद्धति भिन्न-भिन्न हो सकती है। अतः इन दानों विषयों का साथ-साथ अध्ययन आवश्यक है।
5. **कृषि अर्थशास्त्र तथा न्यायशास्त्र:-** न्यायशास्त्र कानूनी प्रणाली का अध्ययन है। विभिन्न कानून तथा उनके प्रयोग का अध्ययन न्यायशास्त्र में किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र की सभी क्रियाओं को न्यायिक सीमा के अन्तर्गत कार्य करना आवश्यक होता है। कानून के विरूद्ध कोई गतिविधि आर्थिक क्रिया नही हो सकती है। विभिन्न कानून अर्थव्यवस्था को अनुकूल रूप से प्रभावित किया है। खेतों की चकबन्दी भी जमीन के प्रयोग के प्रभावित करते है। इसी प्रकार जमीन अधिकार तथा कृषक कानून इत्यादि भी कृषि उत्पादन तथा अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते है। किसी देश की बुरी अच्छी आर्थिक स्थिति भी उस देश न्यायिक पद्धति

को प्रभावित करती है। किसी देश का कानून उस देश की सम्पन्नता तथा आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इन दोनो विषयों का साथ-साथ अध्ययन किया जाय।

1.9 महत्व

आज कृषि अर्थशास्त्र का विकास होने के साथ-साथ कृषि उत्पादन में नई-नई संभावनाएं पैदा हो गयी है। कृषि अर्थशास्त्र किसानों के लिए इस नये ज्ञान को आसान बनाकर उनमें प्रेरणा का संचार करता है। कृषि अर्थशास्त्र, कृषि अनुसंधान तथा तकनीकि विकास को प्रोत्साहन देता है। अन्तर्राष्ट्रीय ब्यापार में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान हो जाने के कारण कृषि उत्पादों का ब्यवस्थित ढंग से उत्पादन और वितरण करने के उद्देश्य से आजकल भिन्न राष्ट्रो के बीच सहयोग में वृद्धि हो रही है। अतः कृषि अर्थशास्त्र अन्तर्गर्राष्ट्रीय स्तर के समझौते करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

1.10 अभ्यास प्रश्न

(अ)

(1) कृषि अर्थशास्त्र में हम अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को कृषि की समस्याओं को हल करने के लिए प्रयोग करते है।

(सत्य/ असत्य)

(2) कृषि अर्थशास्त्र मूल रूप से अर्थशास्त्र की ही एक शाखा है।

(सत्य/असत्य)

(3) कृषि में बहुत सी वस्तुए संयुक्त उत्पाद का उत्पादन नही करती है।

(सत्य/असत्य)

(4) कृषि उत्पादन अधिकतर जमीन की स्थिति, आकार तथा गुण पर आधारित नहीं होता है।

(सत्य/असत्य)

(5) कृषि अर्थशास्त्र के अधिकतर सिद्धान्त सामान्य अर्थशास्त्र से लिए गये है, तथा कृषि अर्थशास्त्र की मुख्य साखाएं सामान्य अर्थशास्त्र के समान है।

(सत्य/असत्य)

(6) कृषि अर्थशास्त्र ब्यावहारिक विज्ञान और आदर्श विज्ञान के साथ-साथ कला भी है।

(सत्य/असत्य)

(7) कृषि अर्थशास्त्र का अध्ययन सर्वप्रथम अमेरिका से प्रारम्भ नही होता है।

(सत्य/असत्य)

(ब)

(1) फसलो का विकास तथा अन्य क्रियाएं किस-किस दशाओं से ज्यादा प्रभावित होती है।

(2) कृषि में उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन क्या होता है।

(3) किसी भूमि के टुकड़े पर ज्यों-ज्यों श्रम तथा पूँजी की इकाइयाँ बढ़ाते है त्यों-त्यों प्रत्येक अगली इकाई का उत्पादन घटता जाता है। इस प्रवृत्ति को क्या कहते है।

(4) ग्रे के अनुसार- कृषि अर्थशास्त्र क्या है।

(5) कृषि से सम्बन्धित किन्हीं दो संयुक्त उत्पाद वस्तुओं का उदाहरण दीजिए।

(6) कृषि अर्थशास्त्र एक विज्ञान है, जिसमें अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों एवं उपायों को कृषि उद्योग की विशेष दशाओं में प्रयोग करते है, यह किसका कथन है।
(7) किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाने के लिए किस किस प्रकार की समिति का गठन करना चाहिए।
(8) फार्म प्रवन्ध का सर्वप्रथम प्रोफेसर किसको नियुक्त किया गया।
(9) टेलर ने अपनी पुस्तक Agiculture Economics कब प्रकाशित की।

1.11 सारांश

कृषि अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग कृषि क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के लिए किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र मूल रूप से अर्थशास्त्र की ही एक शाखा है। कृषि अर्थशास्त्र में मनुष्य धन कमाने और उसे व्यय करने की समस्त क्रियाओं से उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र व्यावहारिक विज्ञान और आदर्श विज्ञान के साथ-साथ कला भी है। कृषि पूरी अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्र होता है। कृषि क्षेत्र का विकास दूसरे क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक है। सामान्य अर्थशास्त्र के लगभग सभी यन्त्रों का प्रयोग कृषि अर्थशास्त्र में होता है। उत्पादन उपभोग, वितरण, विपणन, वित्त, योजना एवं नीति निर्माण आदि कृषि अर्थशास्त्र की मुख्य शाखाएं है। कृषि क्षेत्र का हम ब्यष्टिगत तथा समष्टिगत दृष्टि से भी वर्णन किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत कृषि समस्याएं तथा उनके समाधान के उपायों का अध्ययन किया जाता है। कृषि अर्थशास्त्र में किसान क्या पैदा करे, कितना पैदा करे, उसे कहां तथा किसके द्वारा बेचे, आय को बढ़ाने के लिए कौन सा सहायक धंधा अपनाएं अपनी पैदावार में किसकों कितना तथा किस प्रकार हिस्सा दे तथा किन-किन वस्तुओं का उपयोग करें आदि सभी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- **अ** (1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) असत्य (5) सत्य (6) सत्य (7) असत्य
उत्तर- **ब** (1) मौसम तथा अन्य प्राकृतिक दशाओं से (2) जमीन (3) घटते प्रतिफल का नियम (4) विज्ञान (5) गेंहूँ, भूसा तथा मांस, ऊन (6) ग्रे के अनुसार (7) कृषि विपणन समिति का (8) एन्डूयूवॉस (9) 1905 में

1.13 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ:

- R.K Lekhi and Joginder Singh, "Technological Possibilities of Agricaltural Development in India"
- S.S. china "Agricultural Economics and India Agriculture"
- गौरव दत्त एवं के.पी. एम. सुन्दरम 66 "भारतीय अर्थव्यवस्था'
- एस. के. मिश्र एवं वी.के. पुरी "भारतीय अर्थव्यवस्था "
- C.P. Dutt and B.M. Pugh, "Principles and Practices of Crop Production"
- Naidu and Narsinham, "Economics of Indian Agriculture" Vol. 1
- R.D. Tiwari, "Indian Agriculture"
- J.P. Bhattacharjee, "Studies in Indian Agricultural Economics"

- Ramesh chand, S.S Raju and L.M. Pandey “Growth crisis in Agriculture” EPW, June 30, 2007

1.14 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ:

- Robbins L. (1946), "An essay on the Nature and significance of Economic Review” Ed. Londan, Macmillan company
- Taylor, H.C. (1949), “Outlines of Agricultural Economics” Newyark, Mac Millan
- Black, J.D. (1951), “Introduction to Economices for Agriculture”, New yark, Macmillan Company
- Goodwin, H.G. (1977), "Economics of Agriculture", Reston, Reston publishing Co.
- Cohen, R. L. (1948), “Economics of Agriculture”, Londan, Nisbet
- Hibbard, B.H. (1948), "Agriculture, Economics", Newyark, McGraw Hill.
- Gray, L.C. (1922), “Introduction to Agriculture, Economics" New York MacMillan
- Forster, G.W. and Leoger, M.C. (1959) “Elements of Agriculture Economics" Prentice Hall.
- Halcrow, H.G. (1981), “Economics of Agriculture” Mcgraw Hill Book Agencly,
- Bachman, K.L. and Chritensen, R.P. “The Economics of Form size"
- Johnston, B.F. and H.M South worth (1974) "Agriculture, Develoment and Economic Growth", London, Cornell, University, Press.
- Roegen N.G. (1960), "The Economics theory and Agricultural Economics" oxford Economics papers, Feb. 1960.
- Caqpstic. M (1970), “The Economics of Agricultural,” London George Allen and Unwin Ltd.
- Metcoff, D, “Economics of Agricultural” Harmondsworth Penguin Books, 1969.
- Ross, Robert c. “An Introduction to Agricultural Economics "Me Geoue Hill inc. Book co. 195.

1.15 निबन्धात्मक प्रश्न:

1. कृषि अर्थशास्त्र की धारणा को परिभाषित कीजिए तथा इसकी प्रकृति और क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए।
2. कृषि अर्थशास्त्र के क्षेत्र की ब्याख्या कीजिए।

3. कृषि अर्थशास्त्र के अलग अध्ययन के महत्व को बताइए।
4. कृषि अर्थशास्त्र क्या है? कृषि अर्थशास्त्र का अलग से अध्ययन क्यों किया जाता है।
5. कृषि अर्थशास्त्र को परिभाषित कीजिए। कृषि अर्थशास्त्र सामान्य अर्थशास्त्र से किस प्रकार अलग है।
6. कृषि अर्थशास्त्र को परिभाषित कीजिए। अन्य सामाजिक विज्ञान के साथ इसका किस प्रकार का सम्बन्ध है।
7. कृषि अर्थशास्त्र की विषय सामग्री तथ्य इसकी प्रकृति का वर्णन कीजिए।
8. कृषि अर्थशास्त्र का विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के साथ क्या सम्बन्ध है, इसकी विस्तृत ब्याख्या कीजिए।

इकाई 2- आर्थिक विकास में कृषि का महत्व और कृषि उद्योग सम्बन्ध
(Importance of Agriculture in Economic Development and Agriculture-Industry Relation)

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 आर्थिक विकास में कृषि किस प्रकार सहायक होता है
2.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व
2.5 कृषि तथा उद्योग में अन्तर
2.6 कृषि तथा उद्योग के बीच अतसंबंध
2.7 औद्योगिक क्षेत्र का कृषि क्षेत्र को अंशदान
2.8 कृषि क्षेत्र का औद्योगिक क्षेत्र को अंशदान
2.9 अभ्यास प्रश्न
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.13 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ
2.14 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

आप पिछले अध्याय में कृषि अर्थशास्त्र आशय, प्रकृति और क्षेत्र के बारे में अध्ययन कर चुके है। इस अध्याय में आप "आर्थिक विकास में कृषि का महत्व और कृषि उद्योग सम्बन्ध" के बारे में अध्ययन करेगें।

जैसा कि आप जानते है किसी देश के आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत आज के विकसित देशों से भी पुराना देश है, इसकी कृषि बहुत पहले ही परिपक्वता की स्थिति में पहुंच चुकी थी और उस समय देश में कृषि तथा उद्योग में सन्तुलन था, जिससे किसानों की दशा उतनी खराब नहीं थी जितनी की आज है। अंग्रेजों के आने के बाद कृषि की स्थिति बहुत ही खराब हो गयी तथा कृषि तथा उद्योग में जो सहयोग था वह भी समाप्त हो गया। लेकिन स्वतंत्रता के बाद स्थिति में कुछ परिवर्तन आया है और कुछ किसानों ने इसे व्यावसायिक आधार पर अपनाया।

अगर हम विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के इतिहास को देखे तो यह पता चलता है कि विकसित देशों के आर्थिक समृद्धि में कृषि क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका रही है तथा विकासशील देशों के लिए इसकी भूमिका और अधिक बढ़ जाती है क्योंकि विकासशील देशों में जनसंख्या बहुत अधिक तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बहुत ही कम होती है। इंग्लैण्ड का इतिहास स्पष्ट प्रमाण है कि कृषि क्रांति से ही यहा औद्योगिक क्रांति हुई। इसी प्रकार अमेरिका तथा जापान में भी कृषि क्षेत्र औद्योगिकरण के लिए बहुत ही सहायक हुई। उद्योग और कृषि क्षेत्र एक दूसरे के वैकल्पिक नहीं है बल्कि एक दूसरे के पूरक है और यह परस्पर आगत एवं निर्गत के रूप में एक दूसरे के सहायक है।

किसी भी अर्थव्यवस्था को मुख्यतः तीन क्षेत्रों में बाटा जा सकता है –

(1) प्राथमिक क्षेत्र

(2) द्वितीयक क्षेत्र

(3) तृतीयक क्षेत्र

कृषि अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र है। प्राथमिक क्षेत्र में मुख्यतः कृषि (वानिकी एवं पशुपालन), खनन तथा मछली शामिल किए जाते है। यह अन्य आर्थिक क्षेत्रों का आधार है। विभिन्न क्षेत्रों के विकास तथा अर्थव्यवस्था को सामान्य रूप से आगे बढ़ते रहने के लिए कृषि प्राथमिक दशा है। द्वितीयक क्षेत्र में सभी प्रकार के उद्योग आते है तथा तृतीयक क्षेत्र में सेवाएं जैसे बैकिंग, परिवहन, व्यापार आदि शामिल है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप समझा सकेंगे कि

- ✓ आर्थिक विकास में कृषि का क्या महत्व है।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का क्या महत्व है।
- ✓ कृषि तथा उद्योग के अन्तर क्या है।

कृषि क्षेत्र का औद्योगिक क्षेत्र को तथा औद्योगिक क्षेत्र का कृषि क्षेत्र को क्या अंशदान है।

2.3 आर्थिक विकास में कृषि किस प्रकार सहायक होता है

किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि का बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है। कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ होती है। कृषि से केवल कच्चे माल की प्राप्ति नहीं होती, बल्कि जनसंख्या के एक बड़े भाग को रोजगार भी उपलब्ध भी

कराता है। निम्न तथ्यों को पढ़ने के बाद आप समझ जायेगे कि आर्थिक विकास में कृषि का क्या महत्व है या आर्थिक विकास में कृषि किस प्रकार सहायक होता है।

1. भोजन आवश्यकता की पूर्ति:- सभी देश अपनी भोजन सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करने को पहली प्राथमिकता देते है। कोई भी देश अपनी सभी खाद्य आवश्यकताओं को दूसरे देश से आयात करके पूरा नहीं कर सकता है। अगर कोई देश अपनी खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आयात पर निर्भर है तो उसे बहुत अधिक मात्रा में आय को खर्च करना पड़ेगा और खाद्य वस्तुओं पर ज्यादा ब्यय से सभी योजनाएँ बिगड़ सकती है। इसलिए सरकार को खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने के प्रयास करने चाहिए।

2. कच्चे माल की उपलब्धता:- आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि से सम्बन्धित उद्योगों का विकास होता है। जैसे चीनी, सूती वस्त्र, जूट उद्योग इत्यादि केवल तभी सफल हो सकते है जब उन्हें कच्चे माल की पर्याप्त उपलब्धता हो। अतः इन उद्योगों के तीव्र विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में कच्चे माल की उपलब्धता होनी चाहिए।

3. क्रय शक्ति:- यदि किसी देश की कृषि की स्थिति ठीक नही है तो कृषकों की आय भी कम होगी। कृषकों की आय कम होने से औद्योगिक वस्तुओं को नहीं खरीद पायेगें तथा औद्योगिक विकास रूक जायेगा। कृषि क्षेत्र की सम्पन्नता से ही औद्योगिक विकास होता है। किसी उद्योग का प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक वस्तुओं का विक्रय करना होता है और यह तभी सम्भव है जब कृषि क्षेत्र विकसित हो।

4. बचत तथा पूंजी निर्माण :- कृषि क्षेत्र के समृद्ध होने से कृषकों की आय में वृद्धि होती है। आय में वृद्धि होने से कृषकों की बचत में वृद्धि होती है और बचत कृषकों द्वारा बैकों व अन्य बचत संस्थाओं में जमा होता है। इन बचतों का प्रयोग पूंजी निर्माण के लिए किया जाता है, जिससे आर्थिक विकास होता है। अगर कृषकों की आय कम होगी तो बचत भी कम होगी तथा पूंजी निर्माण भी कम होगा। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे जनसंख्या का अधिकत्तर भाग कृषि में कार्यरत होता है, अतः औद्योगिक क्षेत्र के तीव्र विकास के लिए कृषि क्षेत्र की सम्पन्नता ज्यादा जरूरी है।

5. श्रम-शक्ति की पूर्ति:- कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव बहुत अधिक है। कृषि पर जनसंख्या का दबाव अधिक होने से कृषि उत्पादन भी विपरीत रूप से प्रभावित होता है। इसलिए जनसंख्या के कुछ हिस्से को हटाकर औद्योगिक क्षेत्र में लगाया जा सकता है, इससे औद्योगिक क्षेत्र का भी तेजी से विकास होगा। अधिक विकसित कृषि में श्रम की आवश्यकता कम होती है।

6. विदेशी मुद्रा की प्राप्ति:- कृषि प्रधान देशों मे औद्योगिक वस्तुएँ अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता नहीं कर पाती है, क्योंकि औद्योगिक वस्तुएँ घटिया किस्म की होती है। अतः कृषि वस्तुएँ ही ऐसी है जो कि अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में प्रतियोगिता का सामना कर सकती है तथा विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकती है।

2.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व

पिछले कई दशकों से भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान बना हुआ है।

1. राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा :- भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि का हिस्सा 56.5 प्रतिशत था। जैसे-जैसे विकास की प्रक्रिया तेज हुई, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों के विकास के कारण कृषि का हिस्सा लगातार कम होता गया और यह 2011-12 में 13.3 प्रतिशत निम्न स्तर पर पहुंच गया। अगर हम विकसित देशों को देखे तो राष्ट्रीय आय में हिस्सा बहुत ही कम है। जैसे अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा केवल 2 प्रतिशत है। फ्रांस में

यह अनुपात 7 प्रतिशत तथा आस्ट्रेलिया में 6 प्रतिशत है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जैसे - जैसे कोई देश विकास करता है, राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा कम होता जाता है।

वर्ष

तालिका – 1 साधन पर सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि क्षेत्र का भाग

(1999-2000 की कीमतों पर)	सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि क्षेत्र का भाग
1950-51	56.5%
1970-71	45.9%
1990-91	34.0%
1999-2000	25.0%
(2004-05 की कीमतों पर)	
2008-09	15.7%
2009-10	14.7%
2010-11	14.5%
2011-12	13.9%
2012-13	13.8

2. रोजगार की दृष्टि से कृषि का महत्व:- अल्प विकसित या विकासशील देशों में कृषि की इतनी अधिक प्रधानता होती है कि कार्यकारी जनसंख्या का बहुत अधिक भाग रोजगार के लिए इस पर आश्रित होता है। उदाहरणार्थ यह मिश्र में 42 प्रतिशत, बांग्लादेश में 50 प्रतिशत, इण्डोनेशिया में 52 प्रतिशत व चीन में 68 प्रतिशत है।1951 में कार्यकारी जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं में कार्यरत था, वही 2001 में यह हिस्सा गिरकर 59 प्रतिशत हो गया। अर्थात् 2001 में कृषि में 23.5 करोड़ व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त है। 2005-06 में कृषि में श्रमशक्ति का 57 प्रतिशत रोजगार प्राप्त करता है तथा सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का हिस्सा 2005-06 में 21. 7 प्रतिशत थी। इसका अर्थ हुआ कि कृषि का प्रति व्यक्ति सकल घेरलू उत्पाद गैर कृषि व्यवसाय में काम करने वाले श्रमिकों की तुलना में केवल पांचवा भाग है और इसमें लगातार गिरावट होती जा रही है। कृषि तथा गैर कृषि व्यवसाय में काम करने वाले श्रमिकों की औसत आय में अन्तर बढता चला जा रहा है

तालिका - 2 कृषि में मुख्य श्रमिकों को रोजगार (करोड़ में) |

जनसंख्या	1951	2001
कुल जनसंख्या	36.1	102.7
ग्राम जनसंख्या	29.9 (83)	74.2 (72)
कृषक	7.0 (50)	12.8 (32)
कृषि श्रमिक	2.7 (20)	10.7 (27)
अन्य श्रमिक	4.3 (30)	16.7 (41)
कल कार्यकारी जनसंख्या	14.1 (100)	40.2 (100)

3. बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की पूर्ति :- भारत जैसे विकासशील देशों में जनसंख्या का दबाव बहुत अधिक है। जनसंख्या में तेज वृद्धि के साथ-साथ खाद्यान्नों की मॉग में भी वृद्धि होती है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ खाद्यान्नों की उत्पादन तथा उत्पादकता भी बढती रहें। भारत में खाद्यान्नों की मॉग 2004-05 में 207 मिलियन टन तथा ग्यारहवीं योजना के अंतिम वर्ष 2011-12 में 235.4 मिलियन टन से बढ़कर 2020-21 में 280.6 मिलियन टन हो जाने की सम्भावना है। इस मॉग को पूरा करने के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन को 2 प्रतिशत वृद्धि होना आवश्यक है। भारत के सामने चुनौती का अन्दाज इस बात से लगा सकते है कि हाल के दस वर्षों में (1997-98-2006-07 के बीच) खाद्यान्नों के उत्पादन में मात्र 0.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

4. औद्योगिक विकास के लिए कृषि का महत्व :- भारत में औद्योगिक विकास के लिए कृषि का बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि हमारे कुछ उद्योगों को कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है। इन उद्योगों में सूती वस्त्र, चीनी, वनस्पति तथा बागान उद्योग तथा जूट उद्योग प्रमख है। औद्योगिक क्षेत्र में लगें हए लोगों को खाद्यान्न भी कषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है। ग्रामीण क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र द्वारा निर्मित वस्तुओं का बाजार होता है। अतः कृषि क्षेत्र का विकास होने पर औद्योगिक क्षेत्र का भी विकास होता है। लेकिन कुछ वर्षों से उद्योगों के लिए कृषि के महत्व में कमी आयी है, क्योंकि अनेक ऐसे उद्योग विकसित हो गये है जो कृषि पर निर्भर नही है जैसे इस्पात उद्योग, लौह उद्योग, रसायन उद्योग, मशीनी औजार तथा अन्य इन्जीनियरिंग उद्योग, विभाग निर्माण, सूचना तकनालाजी इत्यादि। इसके बावजूद कृषि द्वारा चीनी, चाय, सूती वस्त्र और पटसन वनस्पति तेल, खाद्य पदार्थो, साबुन तथा अन्य कृषि पर आधारित उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराया जाता है।

5. अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में कृषि का महत्व :- अन्तराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में भी कृषि का बहुत अधिक महत्व है। बहुत अधिक समय तक तीन कृषि वस्तुओं (चाय, पटसन तथा सूती वस्त्र) का निर्यात आय में हिस्सा 50 प्रतिशत से अधिक रहा। यदि हम अन्य कृषि वस्तुओं जैसे काफी, तम्बाकू, काजू, वनस्पति तेल, चीनी इत्यादि को भी शामिल कर लिया जाय तो यह 70 से 75 प्रतिशत तक पहुंच जाता है। कृषि पर इतनी अधिक निर्भरता भारत के अल्पविकास को दर्शाती है। पिछले दो दशकों के दौरान निर्यात के विविधीकरण के कारण कुल निर्यात में कृषि का हिस्सा कम हुआ है और यह 2010-11 में कम होकर 9.9 प्रतिशत हो गया है। 1991 में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के पश्चात् कृषि आयात में वृद्धि हुई है और इसमें खाद्य तेलों का विशेष योगदान है।

6. पूंजी निर्माण में सहयोग:- जैसा कि आप जानते है कि आर्थिक विकास के लिए पूंजी निर्माण बहुत अधिक आवश्यक है। भारत में कृषि क्षेत्र अर्थव्यवस्था का एक बड़ा क्षेत्र है। अतः पूंजी निर्माण में इसका सहयोग आवश्यक है। यदि यह क्षेत्र ऐसा कर पाने में असफल होगा तो इससे आर्थिक विकास की प्रक्रिया अवरूद्ध होगी।

7. गरीबी निवारण में भूमिका:- भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का हिस्सा अब सकल घरेलू उत्पाद का 15 प्रतिशत से भी कम है। तथा अभी भी आधे से अधिक श्रमशक्ति कृषि क्षेत्र में कार्यरत है। इसके अलावा एक आम आदमी अपनी आय का एक बड़ा भाग भोजन पर खर्च करता है। क्योंकि कृषि कम आय वाले व निर्धन व्यक्तियों का जीवन आधार है तथा खाद्य सुरक्षा का मुख्य अस्त्र है, इसलिए गरीबी निवारण में इसकी भूमिका स्वतः सिद्ध है।

2.5 कृषि तथा उद्योग में अन्तर

किसी भी व्यवसाय की सफलता सुनिश्चित बनाई गयी योजना के कार्यान्वयन पर निर्भर करती है। योजना ऊपर से तो अच्छी दिखाई देती है परन्तु कई बार व्यवसाय की विशेषताएँ योजना को लागू करने से पहले जी परिस्थितिओं को बदल देती है। कृषि क्षेत्र में निर्णय लेने वाले आधार भूत तत्व उद्योगों से भिन्न होते है जिनका वर्णन आगे किया गया है।

1. **मॉग पक्ष**:- मॉग पक्ष को देखे तो कृषि वस्तुओं की मॉग कम लोचदार होती है। यदि खाद्य वस्तुओं की कीमतों में कमी होती है तो लोग उसकी ज्यादा मॉग नहीं करते है। खाद्य वस्तुओं की मॉग जीवन के लिए आवश्यक है लेकिन उनकी कीमतों के कम या ज्यादा होने पर उनकी मॉग पर ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन दूसरी तरफ औद्योगिक वस्तुओं की मॉग ज्यादा लोचदार होती है। औद्योगिक वस्तुओं की कीमतों के कम होने पर लोग ज्यादा से ज्यादा खरीदना चाहते है।
2. **पूर्ति पक्ष**:- कृषि वस्तुओं की पूर्ति भी कम लोचदार होती है, तथा यह प्राकृतिक दशा पर निर्भर करती है। कृषि उत्पादन को ज्यादा आगतों का प्रयोग करके या ऋतुओं के विपरीत स्थिति में ज्यादा बढ़ाया नहीं जा सकता है। दूसरी तरफ औद्योगिक वस्तुओं की पूर्ति अधिक लोचदार होती है। औद्योगिक वस्तुओं को अधिक फैक्टरी लगाकर या अधिक घण्टे काम करके बढ़ाया जा सकता है। यदि औद्योगिक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होती है तो इसकी पूर्ति को भी बढ़ाया जा सकता है।
3. **उत्पादन के साधन**:- कृषि क्षेत्र में जमीन उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन होता है। कृषि उत्पादन अधिकतम् कृषि क्षेत्र के आकार तथा स्थिति पर निर्भर करता है। लेकिन उद्योगों में जमीन का उत्पादन के साधन के रूप में ज्यादा महत्व नहीं है। मशीन तथा पूंजी ज्यादा महत्वपूर्ण है। मशीनों को एक बिल्डिंग के विभिन्न तलों पर स्थापित किया जा सकता है।
4. **उत्पादन की जीव विद्या संबंधी प्रकृति**:- कृषि का संबंध जीव पदार्थो जैसे पशुओं और पौधों से होता है। इस प्रकार यह जीव पदार्थ कई प्रकार की बीमारियों जैसे प्रतिकूल वातावरण तथा छूत के शिकार हो सकते हैं। परन्तु औद्योगिक क्षेत्र में ऐसा नहीं होता
5. **जलवायु पर निर्भरता**:- कृषि में उत्पादन मुख्यतः जलवायु की देन है। जिस वर्ष जलवायु अनुकूल रहता उस वर्ष कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है जबकि विपरीत होने पर कृषि उत्पादन कम होता है। इस प्रकार कृषि उत्पादन पर जलवायु जैसे तापमान, वर्षा, तुफान, धूप, नमी अथवा बाढ़ इत्यादि तत्वों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। उद्योगों को इस प्रकार के तत्वों से बचाया जा सकता है।
6. **उत्पादन इकाई का छोटा आकार**:- कृषि में उत्पादन की इकाई का आकार बड़ा तथा उससे प्राप्त होने वाला प्रतिफल उद्योगों की अपेक्षा बहुत कम होता हैं। कृषि में भूमि की मॉग बहुत अधिक होती है जबकि पूर्ति वेलोचदार होती है। जनसंख्या के बढ़ने के साथ उत्पादन इकाई का आकार निरन्तर कम होता जा रहा है।
7. **वित्त की समस्या**:- कृषि में जोखिम तथा अनिश्चितता अधिक होती है। उत्पादकता एवं कीमतों में बहुत अधिक अनिश्चितता तथा कम प्रतिफल के कारण इस क्षेत्र में हमेशा वित्त की समस्या रहती है।
8. **कीमतों में उतार-चढ़ाव**:- कृषि उत्पादन मौसमी, नाशवान तथा कृषि पदार्थों की निरन्तर मॉग के फलस्वरूप कृषि पदार्थो की कीमतों में उतार-चढाव आता रहता है। कृषि में मॉग एवं पूर्ति में समायोजन करना कठिन होता है। क्योंकि कृषि उत्पादन में समय का अन्तराल होता है।
9. **स्थापना का सीमित चयन**:- कृषि में भूमि उत्पादन का एक आधार भूत साधन होता है। किसान के पास भूमि की स्थापना तथा आकार का चयन सीमित होता है। इसके विपरीत उद्योगों को सुरू करने से पहले स्थापना तथा आकार का चयन करना पड़ता है, जो कि एक महंगा व्यवसाय है।

10. घटते प्रतिफल का नियम:- कृषि में उद्योगों की अपेक्षा जल्दी ही घटते प्रतिफल का नियम आरंभ होता है। एक अवस्था के बाद जब उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से श्रम तथा पूंजी की अतिरिक्त इकाई लगायी जाती है तो उत्पादन कम अनुपात की दर से बढता है जिसके कारण उत्पादन की लागत बढ़ जाती है।

11. नाशवान उत्पाद:- अधिकतर कृषि पदार्थ नाशवान प्रकृति के होते है। इन पदार्थो को अधिक देर तक संग्रह करके नहीं रखा जा सकता तथा इनके संग्रह करने की लागत भी बहुत ऊची होती है। इन पदार्थो का तुरंत उपयोग करना पड़ता है।

12. संयुक्त उत्पाद:- बहुत से कृषि पदार्थ संयुक्त उत्पाद होते है जैसे गेहूँ तथा भूसा, रूई तथा खिनौले, ऊन तथा मांस आदि। यह एक ही पौधे के भाग होते है और आसानी से उसी क्षेत्र पर कम लागत पर पैदा किए जा सकते है। उद्योगों में भी बहुत से उत्पाद एक साथ पैदा किए जाते है। परन्तु उनकी लागत को अलग नहीं किया जा सकता है।

2.6 कृषि तथा उद्योग के बीच अतसंबंध

औद्योगिक एवं विकसित देशों की तुलना में सभी अल्पविकसित एवं विकासशील देशों में कृषि उत्पादकता बहुत कम है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, लेकिन इसकी प्रति एकड़ उत्पादन जर्मनी, इग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस, आस्ट्रेलिया तथा जापान आदि देशों की तुलना में बहुत ही कम है।

सभी विकसित देशों में देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या उद्योगों में कार्यरत है तथा 8 प्रतिशत से भी कम जनसंख्या कृषि क्षेत्र में लगी हुई है, लेकिन उनका कृषि क्षेत्र बहुत ही विकसित है। विकसित देशों में ज्यादा से ज्यादा मशीनों, उर्वरकों, कीटनाशकों तथा अन्य आगतों का प्रयोग किया जाता है। यदि हम विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के इतिहास का अध्ययन करे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि ने औद्योगिक विकास में सहायता की है तथा औद्योगिक विकास ने कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सहायता की है।

इस प्रकार कृषि तथा उद्योग अर्थव्यवस्था के दो पहिए है। एक क्षेत्र का विकास दूसरे क्षेत्र के विकास पर निर्भर करता है। जब कृषि उत्पादन बढ़ता है तो इससे कृषकों का जीवन स्तर भी बढ़ता है। इससे कृषकों की क्रय शक्ति, कृषि सम्बन्धी उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति, उद्योगों के लिए श्रमिकों की प्राप्ति, विदेशी मुद्रा की प्राप्ति इत्यादि में वृद्धि होती है। इस तरह से कृषि उत्पादन में वृद्धि उद्योगों के विकास में सहायक होती है। दूसरी तरफ उद्योगों का विकास भी कृषि उत्पादन के वृद्धि एवं विकास में सहायक होता है। कृषि में मशीनों, उर्वरकों एवं अन्य आगतों की उपलब्धता भी उद्योगों के विकास पर ही निर्भर करता है। बिना औद्योगिक विकास के अधिक से अधिक आगतों की पूर्ति सम्भव नहीं है। औद्योगिक क्षेत्र बहुत से कृषि श्रमिकों को रोजगार प्रदान करता है, इससे कृषि पर जनसंख्या के दबाव में कमी आती है। उद्योग क्षेत्र कृषि क्षेत्र को बहुत सी उपभोग वस्तुएं उपलब्ध कराता है। इस प्रकार कृषि तथा उद्योग में बहुत ही निकट का सम्बन्ध है। यह बात स्पष्ट हो गयी है कि कृषि तथा उद्योग एक दूसरे के पूरक है, प्रतियोगी नहीं। अतः कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र का साथ-साथ विकास होना चाहिए।

2.7 औद्योगिक क्षेत्र का कृषि क्षेत्र को अंशदान

कुछ समय पश्चात् कृषि क्षेत्र की औद्योगिक क्षेत्र पर निर्भरता बढ़ जाती है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में औद्योगिक क्षेत्र, कृषि क्षेत्र की निम्न प्रकार से सहायता करता है।

1. कृषि क्षेत्र के उत्पाद को बाजार प्रदान करना:- निःसंदेह विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि क्षेत्र का औद्योगिक क्षेत्र को अधिक सहयोग होता है। परन्तु विकास पाश्चात्य अवस्था में औद्योगिक क्षेत्र का कृषि क्षेत्र को सहयोग बढ़ता जाता है। जब उद्योग परिपक्व हो जाते है और खनिजों को कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है तो इसकी पूंजी, श्रम और कच्चे माल पर निर्भरता कम हो जाती है।

2. **कृषि आगतों को प्रदान करना**:- औद्योगिक क्षेत्र कृषि क्षेत्र को नयी तकनीक प्रदान करता है, विकसित देश में कृषि भी पूंजी प्रधान व्यवसाय है जिसके उच्च श्रेणी के मशीनों, भारी मात्रा में रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयां और उच्च कोटि के बीजों का प्रयोग किया जाता है। ये सब प्रकार की आगतें औद्योगिक क्षेत्र से ही प्राप्त होती
3. **उपभोग वस्तुओं की पूर्ति**:– औद्योगिक क्षेत्र कृषि क्षेत्र को केवल आगतों की पूर्ति नहीं करता है, बल्कि कई प्रकार के उपभोग वस्तुओं की पूर्ति करता है। कृषक भी कुछ आरामदायक एवं ऐश्वर्य वाली वस्तुओं का उपभोग करने लगते है जिससे उसका जीवन स्तर भी ऊँचा और अधिक काम करने की प्रेरणा देता है।
4. **भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम करना**:- भारत जैसे विकासशील देशों में कृषि पर जनसंख्या का दबाव बहुत अधिक होता है। जैसे-जैसे औद्योगिक क्षेत्र का विकास होता है कृषि क्षेत्र से श्रमिकों का प्रवाह औद्योगिक क्षेत्र की ओर होता है, जिससे भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम हो जाता है। अधिक जनसंख्या के कारण ही कृषि क्षेत्र में उत्पादकता कम रही है तथा जोतों के उपविभाजन और विखण्डन की समस्या पैदा हुई है। औद्योगिकरण के कारण ही कुछ विकसित देशों जैसे अमेरिका और इंग्लैण्ड में जोतों का आकार बड़ा हुआ है तथा कृषि की उत्पादकता में भी वृद्धि हुई है।
5. **बुद्धिमत्ता वाला वातावरण:-** जब कृषि क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र के सम्पर्क में आता है तो परम्परागत वातावरण नये वातावरण में परिवर्तित हो जाता है। यह नया वातावरण, नया कौशल, पूंजी निर्माण, जन्म दर में कमी तकनीकी आविश्कार और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण उद्यम वर्ग को पैदा करने में सक्षम होता है जिसमें कृषि क्षेत्र का और अधिक विकास होता है।
6. **कृषि विकास के लिए अधोसंरचना:-** कृषि का विकास आधुनिक कृषि आगतों पर निर्भर करता है। परन्तु इनके उपयोग के लिए कई प्रकार की सहायक क्रियाओं की आवश्यकता होती है। जैसे यातायात के साधन, ऊर्जा कृषि अनुसंधान प्रयोगशालाएं आदि औद्योगिक क्षेत्र की ही देन है।

2.8 कृषि क्षेत्र का औद्योगिक क्षेत्र को अंशदान

कृषि क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र को निम्न प्रकार से सहायता करता है।

1. **उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति**:– उद्योगों में प्रयोग होने वाला कच्चा माल कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है। जब कृषि क्षेत्र का विकास होता है तो औद्योगिक क्षेत्र का भी विकास होता है क्योंकि औद्योगिक क्षेत्र को कच्चे माल की आपूर्ति अधिक होती है।
2. **खाद्यान्नों की आपूर्ति**:– जब खाद्यान्न बाजार में पहुंचता है तो गैर कृषि क्षेत्र को प्राप्त है |
3. **कृषि तथा विदेशी व्यापार:-** यद्यपि स्वतंत्रता के बाद भारत अनाज का आयात करता था, फिर भी यहाँ से कृषि आधारित उद्योगों को कृषि उत्पादों का निर्यात भी करता रहा है। इस प्रकार देश को अनिवार्य विदेशी विनिमय भी प्रदान करता रहा है जिसकी वजह से पूंजीगत वस्तुओं का आयात किया जाता है।
4. **औद्योगिक क्षेत्र के बाजार का विस्तार:-** कृषि का विकास होने पर कृषकों की आय में वृद्धि होती है जिसकी वजह से इन कृषकों की औद्योगिक वस्तुओं की मांग में विस्तार होता है।
5. **गैर कृषि क्षेत्र को श्रम तथा पूंजी की आपूर्ति**:- विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि क्षेत्र ही श्रम तथा पंजी का एक मात्र श्रोत होता है इसलिए इसे औद्योगिक क्षेत्र का संरक्षक भी कहा जाता है। इग्लैण्ड तथा जापान में बहुत से उद्योग किसानों द्वारा सुरू किए गये थे। भारत में भी सूती वस्त्र उद्योग अधिकतर किसानों द्वारा सुरू किए गये थे।

इस प्रकार उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि कृषि क्षेत्र का विकास होने से औद्योगिक क्षेत्र का विकास होता है और औद्योगिक क्षेत्र का विकास होने से कृषि क्षेत्र का विकास होता है। इस प्रकार दोनों क्षेत्रों

का विकास होना चाहिए। एक क्षेत्र की गतिहीनता दूसरे क्षेत्र को भी गतिहीन बना देती है। परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का विकास रूक जाता है।

2.9 अभ्यास प्रश्न

अ. सत्य/असत्य

1. विकासशील देशों में जनसंख्या बहुत अधिक होती है।

(सत्य/असत्य)

2. विकासशील देशों में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बहुत ही कम होती है।

(सत्य/असत्य)

3. कृषि तथा उद्योग एक दूसरे के पूरक नहीं है।

(सत्य/असत्य)

4. आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में जनसंख्या का अधिकतर भाग कृषि में कार्यरत होता है।

(सत्य/असत्य)

5. जैसे-जैसे विकास की प्रक्रिया तेज होती है वैसे-वैसे देश की राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा बढ़ता जाता है।

(सत्य/असत्य)

6. विकसित देशों की राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा अधिक होता है।

(सत्य/ असत्य)

7. भारत में खाद्यान्नों की मॉग वर्ष 2011-12 में 235.4 मिलियन टन थी।

(सत्य/असत्य)

8. कृषि वस्तुओं की मॉग कम लोचदार होती है।

(सत्य/ असत्य)

9. औद्योगिक वस्तुओं की मॉग ज्यादा लोचदार होती है।

(सत्य/असत्य)

10.जिस वर्ष जलवायु अनुकूल रहता है, उस वर्ष कृषि उत्पादन कम होता है।

(सत्य/असत्य)

11.कृषि क्षेत्र का विकास होने पर कृषकों की आय में वृद्धि होती है।

(सत्य/असत्य)

12.कृषि वस्तुओं की पूर्ति कम लोचदार होती है।

(सत्य/असत्य)

13.औद्योगिक वस्तुओं की पूर्ति अधिक लोचदार होती है।

(सत्य/असत्य)

ब. एक शब्द में उत्तर दीजिए

1. किसी भी अर्थव्यवस्था को मुख्यतः कितने क्षेत्रों में बाटा जा सकता है।
2. प्राथमिक क्षेत्र में किनकों शामिल किया जाता है।
3. द्वितीयक क्षेत्र में किनकों शामिल किया जाता है।
4. तृतीयक क्षेत्र में किनकों शामिल किया जाता है।
5. भारत के सकल घेरलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि का हिस्सा 1950-51 कितना था।

6. भारत के सकल घेरलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि का हिस्सा 2011-12 में कितना था।
7. विकासशील देशों में कार्यकारी जनसंख्या का बहुत अधिक भाग किस पर निर्भर होता है।
8. 2001 में भारत की कार्यकारी जनसंख्या का कितना प्रतिशत कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाओं में कार्यरत था।
9. भारत की कूल निर्यात में कृषि का हिस्सा 2010-11 में कितना था।

2.10 सारांश

उपरोक्त इकाई के अध्ययन के बाद यह बात स्पष्ट है कि किसी भी देश के आर्थिक विकास में कृषि का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ होती है। कषि से केवल भोजन तथा कच्चे माल की प्राप्ति नहीं होती है, बल्कि जनसंख्या के एक बड़े भाग को रोजगार की उपलब्ध कराता है। कृषि तथा उद्योग परस्पर एक दूसरे पर निर्भर करते है। एक क्षेत्र का विकास होने पर दूसरे क्षेत्र का भी विकास होता है। एक क्षेत्र का उत्पादन दूसरे क्षेत्र के लिए आगत बन जाता है। एक क्षेत्र के विकास होने का अर्थ है दूसरे क्षेत्र को अधिक आगतों का प्रवाह। "दूसरे की सहायता करो यदि आप अपनी सहायता चाहते है। यही दोनों क्षेत्रों की निर्भरता का सारांश है। जैसे-जैसे किसी देश का आर्थिक विकास होता है, वैसे-वैसे कृषि की भूमिका में भी परिवर्तन आ जाता है। जब द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों का विकास होता है तो कृषि की महत्ता कम हो जाती है। कुछ समय पश्चात् कृषि क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में हिस्सा भी कम हो जाता है, परन्तु कृषि क्षेत्र का अन्य क्षेत्रों पर निर्भरता बढ़ जाती है। कृषि तथा उद्योग दोनों एक दूसरे के पूरक है, प्रतियोगी नहीं। बिना कृषि के आधुनीकरण के औद्योगिक विकास सम्भव नहीं है क्योंकि यदि कृषि विकास नहीं होगा तो अधिकतर जनसंख्या के पास क्रयशक्ति नहीं होगी तथा बाजार का विस्तार भी नहीं होता। अतः यह बात भी सत्य है कि बिना औद्योगिकरण के कृषि विकास भी सम्भव नहीं है। अतः कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र का साथ-साथ विकास होना चाहिए।

2.11 शब्दावली

- **आर्थिक विकास :** आर्थिक विकास की धारणा, आर्थिक संवृद्धि की धारणा से अधिक ब्यापक है। आर्थिक संवृद्धि उत्पादन की वृद्धि से सम्बन्धित है जबकि आर्थिक विकास सामाजिक, आर्थिक, गुणात्मक एवं परिमाणात्मक सभी परिवर्तनों से सम्बन्धित है। जहां आर्थिक संवृद्धि परिमाणात्मक परिवर्तनों से सम्बन्धित है तथा आर्थिक विकास परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों से सम्बन्धित है अर्थात राष्ट्रीय उत्पाद तथा साथ ही जीवन की गुणवत्ता में सुधार।
- **आर्थिक संवृद्धि** : आर्थिक संवृद्धि से अभिप्राय किसी समयावधि में किसी अर्थव्यवस्था में होने वाली वास्तविक आय की वृद्धि से है। सामान्यतया यदि सकल राष्ट्रीय उत्पाद, सकल घरेलू उत्पाद तथा प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हो रही है तो हम कहते है कि आर्थिक संवृद्धि हो रही है।
- **आगत** : आगत किसी भी उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादन के साधन होते है जैसे जमीन, श्रम, पूँजी तथा उद्यम। निर्गत : निर्गत उत्पादन प्रक्रिया में सभी उत्पादन के साधनों का प्रयोग करने के बाद उत्पादित अन्तिम वस्तुएँ तथा सेवाये है।
- **प्राथमिक क्षेत्र** : प्राथमिक क्षेत्र में मुख्यतः कृषि (वानिकी एवं पशुपालन), खनन तथा मछली व्यवसाय को शामिल किया जाता है।

- **द्वितीयक क्षेत्र** : द्वितीयक क्षेत्र में सभी प्रकार के उद्योग आते है। तृतीयक क्षेत्र : तृतीयक क्षेत्र में सेवाएं जैसे बैंकिग, परिवाहन, व्यापार इत्यादि को शामिल किया जाता है।
- **पूँजी निर्माण** : व्यक्तियों एवं घरेलू क्षेत्र की बचतों को व्यवसायिक क्षेत्र में निवेश किया जाता है।
- **सकल घरेलू उत्पाद (जी. डी.पी.)** : किसी देश की घरेलू सीमा के भीतर स्थित निवासी उत्पादक तथा गैर निवासी उत्पादक इकाइयों द्वारा उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल मूल्य का योग होता है।
- **उत्पादन** : उत्पादन का सम्बन्ध किसी क्षेत्र में उत्पादन की कुल मात्रा से है।
- **उत्पादकता** : उत्पादकता का सम्बन्ध प्रति इकाई भूमि में कुल उत्पादन से है।
- **कम लोचदार माँग** : जब एक वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन कीमत में आनुपातिक परिवर्तन की अपेक्षा कम होता है तो इसे कम लोचदार माँग कहते है।
- **कम लोचदार माँग** : जब एक वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन कीमत में आनुपातिक परिवर्तन की अपेक्षा कम होती है, तो इसे कम लोचदार माँग कहते है।
- **अधिक लोचदार माँग** : जब एक वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन कीमत में आनुपातिक परिवर्तन की अपेक्षा ज्यादा होता है तो इसे अधिक लोचदार माँग कहते है।
- **अधोसंरचना :** एक देश की आन्तरिक सुविधा जो कि ब्यवसायिक क्रियाओं को सम्भव बनाती है जैसे कि दूरसंचार, परिवहन, वित्तीय संस्थाए, उर्जा पूर्ति इत्यादि सेवाएं।
- **घटते प्रतिफल का नियम** : यदि साधनों को जिस अनुपात में बढाया जाता है, उत्पादन उससे कम अनुपात में बढ़ता है तो इसे घटते प्रतिफल का नियम कहते है। जैसे यदि सभी साधनों को 10% बढ़ाया जाता है, लेकिन उत्पादन 8% बढ़ता है तो इसे घटते प्रतिफल का नियम कहते है।
- **संयुक्त उत्पाद** : संयुक्त उत्पाद दो या दो से अधिक वें उत्पाद है जो एक ही उत्पादन प्रक्रिया से एक साथ उत्पादिक किए जाते है जैसे दूध से दही, घी इत्यादि।
- **नाशवान उत्पाद** : ऐसी वस्तुएं या उत्पाद जो बहुत ही कम समय में नष्ट हो जाते है।

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अ. सत्य/असत्य

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य (5) असत्य (6) असत्य (7) सत्य (8) सत्य (9) सत्य (10) सत्य (11) सत्य (12) सत्य (13) सत्य

ब. एक शब्द में उत्तर दीजिए

(1) तीन (2) प्राथमिक क्षेत्र में मुख्यतः कृषि, खनन तथा मछली व्यवसाय को शामिल किया जाता है। (3) द्वितीयक क्षेत्र में सभी प्रकार के उद्योग शामिल किये जाते है। (4) तृतीयक क्षेत्र में सेवाये जैसे बैंकिग, परिवहन, ब्यापार आदि को शामिल किया जाता है। (5) 56.5 प्रतिशत (6) 13.9 प्रतिशत (7) कृषि पर (8) 40.2 प्रतिशत (9) 9.9 प्रतिशत

2.13 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ

- R.K. Lekhi and Joginder Singh "Technological Possibilities of Agricultural Development in India"
- S.S Chinna "Agricultural Economics and Indian Agriculture
- गौरव दत्त एवं के. पी. एम. सुन्दरम, " भारतीय अर्थव्यवस्था "
- एस. के. मिश्र एवं बी. के. पुरी " भारतीय अर्थव्यवस्था "
- Ramesh Chand. S.S. Raju and L.M. Pandey "Growth Crisis in Agriculture"EPW. June 30, 2007.
- डॉ. पी. गुप्ता "कृषि अर्थशास्त्र' 7. डॉ. के. एन. जोशी एवं मंजुला मिश्रा " कृषि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त एवं भारत में कृषि विकास

2.14 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ ()

- W.Burns " Technological Passibilities of Agricultural Development in India"
- T. Eallance "Agricultural Economics and growth"
- Harold G. Haldrow "Contemporary Readings in Agricultural Economics"
- Carl Eicher and Lawrence with (Ed.) "Agriculture in Economic Development"
- R. cohen "The Economics of Agriculture"
- A.P. Thiralwal "Growth and Development"
- John W. Mellor "The Economics of Agricultural Development"

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व का उल्लेख कीजिए।
2. कृषि तथा उद्योग की पूरकता का उल्लेख कीजिए।
3. एक विकासोन्मुख देश में आर्थिक विकास की दर तीव्र करने में कृषि जो भूमिका निभाती है उसकी विवेचना कीजिए।
4. कृषि आर्थिक विकास का इंजन है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।
5. एक अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि के महत्व का उल्लेख कीजिए।
6. कृषि तथा उद्योगों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
7. कृषि तथा उद्योग के बीच अतसंबंध की ब्याख्या कीजिए।
8. कृषि क्षेत्र का औद्योगिक क्षेत्र को तथा औद्योगिक क्षेत्र का कृषि क्षेत्र को अंशदान का वर्णन कीजिए।

इकाई 3- कृषि क्षेत्र आकार, वृद्धि एवं उत्पादकता की प्रवृत्तियाँ
(Agricultural Sector- Size, Growth and Trends of Productivity)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 कृषि क्षेत्र के आकार में वृद्धि की प्रवृत्ति
3.4 कृषि उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति
3.5 कृषि उत्पादकता में वृद्धि की प्रवृत्ति
3.6 वे साधन जिन पर उत्पादकता निर्भर करती है।
3.7 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के कम होने के कारण
3.8 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने के उपाय
3.9 महत्व
3.10 अभ्यास प्रश्न
3.11 सारांश
3.12 शब्दावली
3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.14 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ
3.15 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ
3.16 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

कृषि अर्थशास्त्र से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है इसके पहले की द्वितीय इकाई में आप आर्थिक विकास में कृषि का महत्व और कृषि उद्योग सम्बन्ध की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके है। भारत जैसे विकासशील देश में कृषि ही जीविका का मुख्य साधन है। भारत की 65% जनता कृषि पर निर्भर है। लेकिन भारत में खेतो में फसलों की पैदावार मानसून पर निर्भर है। कृषि का लगभग 60% क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है इसलिए भारतीय कृषि को 'मानसून का जुआ' कहा जाता है। स्वतंत्रता से पूर्व कृषि की स्थिति ठीक नही थी। ब्रिटिश शासको की औपनिवेशिक नीति के फलस्वरुप इस देश में कृषि का कोई विकास नहीं हुआ। उत्पादन एवं उत्पादकता का स्तर बहुत ही कम था। लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात विशेषकर हरित क्रान्ति के बाद की अवधि से कृषि में नयी तकनीकी के प्रयोग से कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई है। 1965-66 तथा 1966-67 में देश में भयंकर सूखा पड़ा और भूखमरी से बचने के लिए 1 करोड 90 लाख टन खाद्यान्नों का आयत करना पड़ा। इस प्रकार परिस्थितियों के कारण कृषि विकास युक्ति पर पुर्नविचार करने की जरूरत महसूस की गयी तथा कृषि उत्पादन व उत्पादकता को बढाने के महत्व को स्वीकार किया जाने लगा। इस प्रकार कृषि नीति दिशा संस्थागत सुधारों से हटकर प्रौद्योगिकी व तकनीकों की तरफ हो गया। भारतीय कृषि में कृषिगत क्षेत्र को बढ़ाने की बहुत ही कम संभवना है। केवल गहन खेती (श्रम गहन एवं पूंजी गहन दोनों) द्वारा ही कषि उत्पादन को बढ़ाने की ज्यादा सम्भावना है। प्रत्येक कृषक अपने खेत की उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने का प्रयास करता है। उत्पादन एवं उत्पादकता में थोड़ा अन्तर होता है। उत्पादन का सम्बन्ध कूल मात्रा से है, जबकि उत्पादकता प्रति इकाई भूमि में कूल उत्पादन है। भूमि उत्पादन का मुख्य साधन है। कुछ छोटे किसान बड़े किसानों की अपेक्षा ज्यादा उत्पादन करते है, और यह सम्भव इसलिए हो पाता है क्योंकि छोटे खेत की उत्पादकता ज्यादा है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप समझा सकेगें कि

- ✓ कृषि क्षेत्र के आकार में वृद्धि की क्या प्रवृत्ति है।
- ✓ कृषि उत्पादन में वृद्धि की क्या प्रवृत्ति है।
- ✓ कृषि उत्पादकता में वृद्धि प्रवृत्ति क्या है।
- ✓ वे कौन से साधन है जिन पर कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता निर्भर करती है।
- ✓ कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के कम होने के कारण तथा इनको बढ़ाने के उपाय।

3.3. कृषि क्षेत्र के आकार में वृद्धि की प्रवृत्ति

स्वतन्त्रता के पश्चात तथा आर्थिक आयोजन आरम्भ होने के पश्चात और कृषि विकास पर बल देने के कारण कृषि क्षेत्र के आकार में लगातार वृद्धि हुई है। श्रमिकों की संख्या, मशीनरी इत्यादि कृषि क्षेत्र के आकार पर ही निर्भर करता है। सामान्यतया यदि कृषि क्षेत्र का आकार बड़ा है तो हम इसे बड़े पैमाने की खेती कहते है, यदि आकार छोटा है तो हम इसे छोटे पैमाने की खेती कहेगें।

तालिका-01 स्वतन्त्रता के बाद मुख्य फसलों के क्षेत्रफल में वृद्धि (लाख हेक्टेअर)

	1945-50	1964-65	2008-09
(1) सभी खाद्यान्न जिसमे	990	1180	1238
चावल	300	360	456
गेहूं	100	130	277
मोटे अनाज	390	400	283
दाले	200	240	230
(2) सभी अखाद्यान्न जिसमे	230	330	433
तिलहन	50	115	277
गन्ना	16	26	44
रुई	30	84	45
आलू	2	4	16
सभी फसलें	1220	1510	1671

स्रोत : भारत सरकार आर्थिक समीक्षा विभिन्न अंक

स्वतन्त्रता के बाद कृषि क्षेत्र के आकर में वृद्धि के साथ-साथ प्रति हेक्टेअर उत्पादन में वृद्धि के परिणाम स्वरुप लगभग सभी फसलों के कूल उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति पायी गयी है स्वतन्त्रता के पश्चात मुख्य फसलों के क्षेत्रफल में वृद्धि को नीचे तालिका में दिखाया गया है।

अगर हम स्वतन्त्रता के बाद के आकड़ो को देखे तो सभी फसलों के अधीन क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है स्वतन्त्रता के बाद की अवधि में अतिरिक्त भूमि पर भी खेती की जाने लगी और सिचाई सुविधाओं के विस्तार के परिणाम स्वरुप बंजर भूमि पर भी खेती की जाने लगी। कुछ परिस्थितियों में इसे ब्यर्थ भूमियों और वन अधीन भूमियों में भी बढ़ाया गया।

अगर हम तालिका-01 देखे तो आलू की खेती के अधीन क्षेत्रफल में सबसे अधिक वृद्धि हुई है। अर्थात यह 1949-50 में यह 2 लाख हेक्टेअर से बढ़कर 2008-09 में 16 लाख हेक्टेअर हो गया अर्थात 8 गुने की वृद्धि हुई है। दूसरा स्थान तिलहन का है जो इस अवधि में बढ़कर 50 हेक्टेअर से 277 लाख हेक्टेअर हो गया अर्थात इसमें 5 गुने से अधिक की वृद्धि हई है।

खाद्यान्नों में सबसे अधिक गेहूँ के अधीन क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है। अर्थात यह 100 लाख हेक्टअर से बढ़कर 277 लाख हेक्टअर हो गया। इसके बाद चावल के अधीन क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है जो कि 300 लाख हेक्टेअर से बढ़कर 456 लाख हेक्टेअर हो गया। गेहू के अधीन क्षेत्रफल में वृद्धि का मुख्य कारण नयी तकनीक, उर्वरक इत्यादि का प्रयोग था, परन्तु गेहू के अधीन क्षेत्रफल में यह वृद्धि मोटे अनाजों एवं दालों की कीमत पर था। अगर उपरोक्त तालिका को हम देखे तो यह स्पष्ट होता है कि हरित क्रान्ति के बाद की अवधि में कृषि क्षेत्र के आकार में वृद्धि बहुत ही कम रही है।

3.4 कृषि उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति

कृषि उत्पादन को मुख्य रुप से दो भागों में बाँटा जाता है-

(1) खाद्यान्न

(2) अखाद्यान्न

कूल उत्पादन में खाद्यान्नों का हिस्सा दो तिहाई से थोड़ा कम है। खाद्यान्नों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान चावल तथा गेहूँ का है, जबकि अखाद्यान्नों में खाद्य तेलों का महत्वपूर्ण स्थान है। कुल खाद्यान्नों का उत्पादन 1950-51 में 508 लाख टन था जो कि 2011-12 बढ़कर 2526 लाख टन हो गया अर्थात 62 वर्ष में खाद्यान्नों में वृद्धि लगभग 5 गुने के बराबर हुई है अगर हम 1950-51 से लेकर 2011-12 तक की अवधि को दो हिस्से में बाट ले तो विश्लेषण करने में आसानी होगी। यह दो हिस्से है हरित क्रान्ति के पहले की अवधि तथा हरित क्रान्ति के बाद की अवधि। तीसरी योजना के बाद की अवधि को हरित क्रान्ति का काल कहा जाता है।

अगर हम हरित क्रान्ति के बाद की अवधि में देखे तो खाद्यान्नों के उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है। खाद्यान्नों में गेहूँ के उत्पादन में तेज वृद्धि हुई है। 1950-51 गेहूँ का उत्पादन 64 लाख टन था, जो तीसरी योजना में औसत 111 लाख टन तथा 2011-12 में 902 लाख टन हो गया। अर्थात स्वतन्त्रता के बाद गेहूँ के उत्पादन में 14 गुने से भी ज्यादा वृद्धि हुई है। चावल के उत्पादन में वृद्धि कुछ समय पश्चात हुआ और यह अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों के प्रयोग के फलस्वरुप हुआ 1980-81 के पश्चात चावल के उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई है।

चावल का उत्पादन 1950-51 में 206 लाख टन था जो तीसरी योजना में औसतन 351 लाख टन तथा 2011-12 में बढ़कर 1034 लाख टन हो गया अर्थात तीसरी योजना के बाद की अवधि में चावल का उत्पादन तेजी से बढ़ा है। ज्वार का उत्पादन विभिन्न योजनाओं में लगभग स्थिर रहा है जबकि बाँजरे के उत्पादन में वृद्धि पायी गयी है। मक्के के उत्पादन में तेजी से वृद्धि पायी गयी है, क्योंकि हाल के वर्षों नये संकर बीजों के प्रयोग से यह संभव हो सका है। जहाँ तक दालों का सम्बन्ध है, इनका उत्पादन (कुछेक वर्षों को छोड़कर) माँग की तुलना में हमेशा कम रही है, जिसके कारण देश को बड़ी मात्रा में दालों का आयात करना पड़ा है। दालों का उत्पादन 1950-51 में 84 लाख टन था जो तीसरी योजना में औसत 111 लाख टन तथा 2011-12 में यह बढ़कर 170 लाख टन हो गया।

जहाँ तक आखाद्यान्नों में तिलहनों का सम्बन्ध है, कुछ वर्षों को छोड़कर इसमें लगातार वृद्धि हुई है। तिलहन का उत्पादन 1950-51 में 62 लाख टन का उत्पादन हुआ जो कि 2011-12 में 301 लाख टन हो गया। इसके बावजूद तिलहन की आपूर्ति, माँग की अपेक्षा बहुत कम है जिसके कारण देश को बड़ी यात्रा से खाद्य तेलो का आयात करना पड़ा है।

कपास का उत्पादन विभिन्न योजनाओं में लगातार बढ़ा है जैसे 1950-51 में 30 लाख टन था जो कि तीसरी योजना में औसतन 54 लाख टन तथा 2011-12 में 352 लाख टन हो गया। जहाँ तक गन्ने के उत्पादन का सम्बन्ध है इसमें विभिन्न योजनाओं में सतत रुप से वृद्धि हुई है। गन्ने का उत्पादन 1950-51 में 571 लाख टन था जो कि बढ़कर तीसरी योजना में औसतन 1092 लाख टन हो गया तथा 2011-12 में बढ़कर 3512 लाख टन हो गया।

तालिका-02

कृषि उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति (लाख टन में)

फसल |	**1950-51**	**तीसरी योजना (1961-66) औसत**	**| 2011-12 | ***
गेहूं	64	111	902
चावल	206	351	1034
ज्वार	55	88	60
बाँजरा	26	39	102
मक्का	17	46	213

दालें	84	11	170
सभी खाद्यान्न	508	810	2526
तिलहन	62	73	301
कपास	30	54	352
गन्ना	|571	1092	3512

*** भारत सरकार के कृषि मन्त्रालय द्वारा जारी अग्रिम अनुमान**

स्रोत : भारत सरकार आर्थिक समीक्षा, विभिन्न अंक

3.5 कृषि उत्पादकता में वृद्धि की प्रवृत्ति

कृषि की उत्पादकता के मुख्य रुप से दो पहलू होते है:

(1) भूमि की उत्पादकता

(2) कृषि में लगे हुए श्रमिकों की उत्पादकता

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भूमि की उत्पादकता लगभग सभी फसलो के सम्बन्ध में धीरे-धीरे बढ़ी है, लेकिन उत्पादकता में यह वृद्धि हरित क्रान्ति के बाद अधिक दिखाई पड़ती है।

जहाँ तक श्रमिको की उत्पादकता का सम्बन्ध है, यह लगभग स्थिर रही है। कृषि की उत्पादकता (विशेषरुप से भूमि की) अनेक कारकों पर निर्भर करती है, परन्तु यह मुख्य रुप से कृषि में प्रयुक्त आगतों जैसे खेत का आकार, बीज, उर्वरक, सिचाई, बिजली, वित्त, प्राद्योगिकी इत्यादि की मात्रा, गुणवत्ता, उपलब्धता तथा पर्याप्तता पर निर्भर करती है।

कृषि ढाँचा भी कृषि उत्पादकता को बहुत अधिक प्रभावित करता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व कृषि की दशा बहुत ही खराब थी, कृषि की उत्पादकता भी बहुत कम थी, लेकिन 1950-51 के बाद विशेषरुप से हरित क्रान्ति के बाद सिचाई के विस्तार, उच्च उत्पादकता वाले बीजों के प्रयोग, नयी तकनीक वाले यन्त्रों के प्रयोग इत्यादि द्वारा सभी फसलों के प्रति हेक्टेअर उत्पादकता में लगातार वृद्धि प्राप्त की गयी। कुछ खाद्यान्नों में तेजी से वृद्धि प्राप्त की गयी है। ए खाद्यान्न है गेहूँ, चावल तथा मक्का। नीचे तालिका में मुख्य फसलों की प्रति हेक्टेअर उत्पादकता दी गयी है:

तालिका–03स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात मुख्य फसलों की प्रति हेक्टेअर उत्पादकता (किलोग्राम प्रति हेक्टेअर)

फसल	1950-51	1970-71	2000-01	2010-11
सभी खाद्यान्न |	552	872	1626	1921
चावल	668	1023	1901	2240
गेहूँ	655	1307	2708	2938
ज्वार	353	466	764	956
बाजरा	288	622	688	1069
मक्का	547	1279	1822	2507
छालें	441	524	544	689
सभी अखाद्यान्न				
तिलहन	481	579	810	1159
कपास	88	106	190	510
पटसन	1043	1186	2026	2344

स्रोत : भारत सरकार आर्थिक समीक्षा, विभिन्न अंक

• अगर हम उपरोक्त तालिका का अध्ययन करे तो स्वतंत्रता के बाद अर्थात 1950-51 से लेकर 2010-11 की अवधि में सभी खाद्यान्नों की प्रति हेक्टअर उत्पादकता में तीन गुने से ज्यादा की वृद्धि हुई है (1950-51 में 552 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर से बढ़कर 2010-11 में 1921 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर हो गयी)।

• अगर हम 1950-51 के बाद की अवधि को देखे तो सबसे अधिक वृद्धि गेहूँ की उत्पादकता में दिखाई देती है। गेहूँ की उत्पादकता 1950-51 में 655 किलोग्राम प्रति हेक्टअर थी जो 2010-11में बढ़कर 2938 किलोग्राम प्रति हेक्टअर हो गयी।

• चावल की उत्पादकता में भी काफी वृद्धि हुई है, यह 1950-51 में 668 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर से बढ़कर 2010-11 में 2240 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर हो गया।

• ज्वार तथा बाँजरे की उत्पादकता में वृद्वि बहुत ही कम हुई है, जबकि गन्ने की उत्पादकता में तेजी वृद्धि हुई है। यह 1950-51 में 547 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर से बढ़कर 2010-11 में 2507 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर हो गया।

• दालों की उत्पादकता में बहुत ही कम वृद्धि हुई है।दालों की उत्पादकता 1950-51 में 441 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर थी जो कि 2010-11 में 689 किलोग्राम प्रति हेक्टअर हो गयी।

• दालों का उत्पादकता घरेलू उपयोग की अपेक्षा काफी कम है, इसलिए देश को बड़े पैमाने पर दालों का आयात करना पड़ता है। तिलहनों की उत्पादकता 1950-51 में 481 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर थी जो कि 2010-11 में बढ़कर 1159 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर हो गयी।

• कपास की उत्पादकता में 2001 के बाद तेजी से वृद्धि हुई है। यह 1950-51 में 88 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर था, जो कि 2000-01 में 190 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर तथा 2010 -11 में 510 किलोग्राम प्रति हेक्टेअर हो गया। यदि हम भारत की प्रत्येक फसल की औसत उत्पादकता की तुलना विश्व के अधिकतम उत्पादकता वाले देशों के साथ करें तो यह ज्ञात होता है कि हमारे देश के फसलों की प्रति हेक्टेअर उत्पादकता बहुत ही कम है। अधिकतर कृषि फसलों के उत्पादन में भारत विश्व के सबसे बड़े उत्पादक देशों में से एक है। लेकिन अगर उत्पादकता की बात करे तो भारत का स्थान बहुत ही नीचे है। नीचे दी गयी तालिका द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाती है।

तालिका-04 कुछ देशों में प्रति हेक्टेअर उत्पादकता (2009) (किलोग्राम/हेक्टेअर)

चावल		गेहूँ		मक्का	
देश	**उत्पादकता**	**देश**	**उत्पादकता**	**देश**	**उत्पादकता**
मिश्र	10000	इंग्लैण्ड	7927	अमेरिका	10339
अमेरिका	7941	फ्रांस	7447	फ्रांस	9101
चीन	6582	मिश्र	6448	अजेन्टाइना	5614
जापान	6522	चीन	4739	चीन	5256
भारत	3195	भारत	2907	भारत	2002
विश्व	**4329**	**विश्व**	**3039**	**विश्व**	**5162**

गन्ना		मूंगफली	
देश	**उत्पादकता**	**देश**	**उत्पादकता**
मिश्र	121429	अमेरिका	3824

अर्जेन्टीना	84366	चीन	3357
ब्राजील	79854	ब्राजील	2638
चीन	68079	पाकिस्तान	2579
भारत	64486	भारत	1007
विश्व |	69866	विश्व	1522

Source: Government of India, Agricultural Statistics at a Glance, 2011 (Delhi)

उपरोक्त तालिका में भारत की चावल में उत्पादकता मिश्र की तुलना में एक तिहाई से भी कम है. जबकि चीन तथा जापान की तुलना में लगभग आधी है। इसी प्रकार गेहूँ, मक्का, गन्ना तथा मूंगफली की उत्पादकता भी भारत में बहुत ही कम है।

3.6 वे साधन जिन पर उत्पादकता निर्भर करती है

कृषि की उत्पादकता जिन महत्वपूर्ण साधनों पर निर्भर करती है वें निम्न है

(1) जमीन की उर्वरता :- जमीन के कुछ टुकड़ों की उर्वरता दूसरे की तुलना में ज्यादा होती है, अतः ज्यादा उर्वरा जमीन में ज्यादा उत्पादन करना आसान होता है।

(2) खेती करने की विधि :- कृषि की उत्पादकता खेती करने की विधि पर भी निर्भर करती है। खेती की पुरानी विधि तथा पुरानी तकनीकी ज्यादा उत्पादन प्राप्त करने के रास्ते में बाँधा है। जबकि खेती की नयी विधि और तकनीकी ज्यादा उत्पादन तथा उत्पादकता प्राप्त करने में सहायक होती है।

(3) फसलों की प्रकृति :- कुछ फसल किसी क्षेत्र के लिए उपयुक्त होती है तो कुछ फसल अन्य क्षेत्र के लिए। यदि फसलों को क्षेत्र की उपयुक्तकता के आधार पर बोया जाय तो इससे उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

(4) आगतों की उपलब्धता :- अगर सभी उत्पादन के आगत पर्याप्त मात्रा में तथा उचित मूल्य पर उपलब्ध है तो इससे इनका उचित प्रयोग करके उत्पादन तथा उत्पादकता की बढाया जा सकता है।

(5) सविधा:- अगर आसानी से उचित ब्याज दर पर साख की उपलब्धता है तो इससे उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है, क्योंकि साख का प्रयोग कृषक विभिन्न आगतों को खरीदने में करता है। इन आगतों का प्रयोग करके कृषक उत्पादन तथा उत्पादकता को बढ़ा सकता है।

(6) खेत का आकार :- इसमें बहुत विवाद है, कुछ अर्थशास्त्री कहते है कि खेत के आकार एवं उत्पादकता में विपरीत सम्बन्ध है, तथा कुछ अर्थशास्त्री कहते है इसमें धनात्मक सम्बन्ध है। लेकिन हम खेत के आकार एवं उत्पादकता के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते है। अतः खेत की उत्पादन तथा उत्पादकता आगतों के प्रयोग व प्रवन्धन पर निर्भर करता

3.7 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के कम होने के कारण

इसमें कोई सन्देह नही है कि स्वतन्त्रता के बाद विशेषकर हरित क्रान्ति के बाद की अवधि में कृषि उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई है, लेकिन जब हम अन्तर्राष्ट्रीय मानक से तुलना करते है तो हम पाते है कि यह बहुत ही कम है। फसलों का कम उत्पादन तथा उत्पादकता ही ग्रामीण गरीबी का मुख्य कारण है। कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के कम होने के कई कारण है, जिनको निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(A) सामान्य कारण

(B) संस्थागत कारण

(C) तकनीकि कारण

(A) सामान्य कारण:

(1) उत्पादक निवेश में कमी : कृषि क्षेत्र में लोग कम निवेश करते है, क्योंकि कृषि क्षेत्र में प्रतिफल की दर अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा बहुत कम होती है। अतः निवेश को बढ़ाकर ही उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

(2) प्राकृतिक आपदा : प्रत्येक वर्ष करोड़ों रूपये कि फसलें बाढ़, सूखा एवं अन्य प्राकृतिक आपदा के कारण नष्ट हो जाती है। भूमि का अधःपतन भी कृषि उत्पादकता को कम करता है।

(3) भूमि पर जनसंख्या का दबाव : भूमि पर जनसंख्या का दबाव बहुत अधिक है। भारत में ग्रामीण जनसंख्या का लगभग तीन चौथाई जनसंख्या कृषि क्षेत्र में लगे है। गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार के पर्याप्त अवसर न बढ़ने के कारण भूमि पर जनसंख्या का दबाव लगातार बढ़ता जा रहा है। कृषि के अनुभवों से पता लगता है कि एक सीमा से अधिक लोगों के कृषि में लगे होने से कृषि की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भूमि पर बढ़ता हुआ दबाव जोतों के उपविभाजन एवं अपखंडन के लिए जिम्मेदार है।

(4) सामाजिक कारण :- हमारे देश का सामाजिक वातावरण भी कृषि विकास में बाधक समझा जाता है। निरक्षरता, अज्ञानता, अन्धविश्वास तथा रूढ़िवादी सोच कृषि में नई तकनीक अपनाने में बड़ी बाधा समझा जाता है।

(B) संस्थागत कारण

(1) वित्त की कमी :- वित्त की उपलब्धता ही किसी उद्योग के विकास का आधार होती है। भारतीय सन्दर्भ में कृषि विकास के लिए पर्याप्त वित्त की कमी है। कृषि में सुधार के लिए अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन दोनों तरह के ऋण की आवश्यकता है।

(2) विपणन सुविधाओं का अभाव :- दोषपूर्ण विपणन ब्यवस्था कृषिको की कठिनाइयों को बढ़ाता है। विपणन की खराब ब्यवस्था के कारण कृषकों को अपनी उपज का उचित मूल्य नही मिल पाता है। अगर कृषकों को कृषि उपज का उचित मूल्य मिले तो वे और अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित होगें।

(3) जोतों का छोटा आकार :- जोतों का बहुत छोटा आकार होने के कारण भारतीय कृषि की उत्पादकता बहुत कम है। खेतों का आकार छोटा होने के कारण हम केवल श्रम प्रधान तकनीकी से ही खेती कर सकते है, इससे उत्पादकता का स्तर कम रहता है। इसके अलावा खेतों का विभाजन एवं विखण्डन भी कम उत्पादकता का कारण है।

(4) भू-स्वामित्व प्रणाली :- भारतीय कृषि में कम उत्पादन एवं उत्पादकता का एक प्रमुख कारण जमीदारी प्रथा रही है। स्वतन्त्रता के बाद मध्यस्थों को समाप्त करना, पट्टेदारी एवं लगान निर्धारण सम्बन्धी ब्यवस्थाओं में कुछ सुधार किया गया, लेकिन अभी भूस्वामित्व प्रणाली में ज्यादा सुधार नही हुआ हैं। पट्टेदारी एवं लगान निर्धारण सम्बन्धी व्यवस्थाओं के अन्तर्गत काश्तकारों को सुरक्षा नहीं मिली है। आज केवल तकनीकी सुधारों द्वारा उत्पादकता को बढाना संभव नही है। बल्कि भूमि सुधार की भी पहल होनी चाहिए। यदि कृषि निवेश की मात्रा बढनी है तो आर्थिक आधिक्य को हड़पने वाले सूदखोर, महाजन वर्ग लगानखोर जमींदार वर्ग का अस्तित्व ही समाप्त करना हो।

(C) तकनीकी की कारण

(1) पुरानी कृषि तकनीकी :- भारतीय कृषक अभी भी कृषि के पुरानी तकनीकी का प्रयोग करते है। उर्वरकों अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग बहुत ही सीमित है, इसलिए उत्पादकता का स्तर बहुत कम है।

(2) सिंचाई की अपर्याप्त ब्यवस्था भारतीय कृषि का बहुत अधिक भाग अभी भी मानसून पर निर्भर हैं।भारत में कुल कृषि क्षेत्र का केवल 45.3% पर सिंचाई की व्यवस्था है, शेष भाग वर्षा पर निर्भर हैं। इस

कारण से कृषि की उत्पादकता का स्तर बहुत ही कम है। भारत में वर्षा अनिश्चित रहता है, क्योंकि यह मानसूनी हवाओं पर निर्भर है। जिन क्षेत्रों में सिचाई की सुविधाएँ नही है वहा उत्पादकता का स्तर बहुत नीचा है। भारत में सिंचाई की ब्यवस्था दोषपूर्ण है। इसके अलावा सिंचाई की लागत में लगातार वृद्धि होने के कारण छोटे किसान सिंचाई की ब्यवस्था का लाभ उठाने में असमर्थ है।

3.8 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने के उपाय

कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के कम होने के कारणों को पढ़ने के बाद हम यह बता सकते है कि उत्पादकता को कैसे बढ़ाया जा सकता है। कृषि उत्पादकता को निम्न तरीके से बढ़ाया जा सकता है।

1. **सिचाई सुविधाए**:- कृषि की उत्पादकता केवल आगतों की गुणवत्ता पर निर्भर नही करती, बल्कि सिचाई सुविधाओं पर भी निर्भर करती है। विभिन्न राज्यों में सिचाई के अधीन क्षेत्र में काफी अन्तर है। कुछ राज्यो जैसे पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान में बहुत अच्छी सिचाई की सुविधाएँ है, वही अन्य राज्यों में कुल सिचाई संभाव्य तथा सिचाई के विद्यमान स्तर में व्यापक अन्तर है। इसलिए सिचाई के लिए नलकूप, नहर, कूआ तथा तालाबों के स्थापना होनी चाहिए।
2. **साख एवं विपणन व्यवस्था का विकास**:- उन्नत किस्म के बीजों, उर्वरकों, कीटनाशक दवाओं, कृषि मशीनरी तथा सिचाई सुविधाओं के प्रयोग के लिए काफी वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है और ए साधन अक्सर छोटे व सीमांत किसानों के पास नहीं होते है। इसलिए यह आवश्यक है की सहकारी ऋण संस्थाओं, वाणिज्यिक बैंको एवं क्षेत्री ग्रामीण बैंको को इस प्रकार के निर्देश देने की जरूरत है कि वें छोटे व सीमांत किसानों को उचित ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराये जिससे साहूकारों एवं महाजनों की कपटपूर्ण नीतियों से किसानों को बचाया जा सकें। सहकारी विपणन संस्थाओं को भी बेहतर करने की आवश्यकता है जिससे कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिल सके। जब कृषकों को उचित मूल्य प्राप्त होगा तो वें और अधिक उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित होगे।
3. **भूमि सुधारों का कार्यान्वयन**:- स्वतंत्रता के बाद मध्यस्थों के उन्मूलन के लिए, काश्तकारों की दशाओं में सुधार के लिए, भूमि पर अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिए तथा कृषि के पुनर्गठन के लिए कदम उठायें गये लेकिन सफलता बहुत ही कम मिल पायी है। भूमि सुधार कानूनों के कारगर कार्यान्वयन के लिए सरकार को प्रभावी कदम उठाने चाहिए ताकि भूमि उस काश्तकार को मिल सके जो उस पर वास्तव में खेती करता है। जब तक ऐसा नही होगा तब तक भूमि में निवेश करने की प्रेरणा नही होगी और उत्पादकता कम रहेगी।
4. **भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम करना**:-भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम करने की आवश्यकता है। अन्य क्षेत्रों में रोजगार बढाने की आवश्यकता है और कृषि क्षेत्र से अतिरेक श्रम को उन क्षेत्रों में लगाकर भूमि पर से जनसंख्या के दबाव को कम किया जा सकता है।
5. **उन्नत बीजों एवं उर्वरकों का प्रयोग :-**उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होता है। तथा उन्नत बीजों के लिए उर्वरकों की काफी बड़ी बड़ी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। कई देशों के अनभवों से तथा हमारे देश में कछ राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश के अनुभव से यह बात सिद्ध होती है। इस लिए ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रों में कृषको को उन्नत किस्म के बीजों को प्रयोग करने के

लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। मिट्टी, जलवायु तथा सिचाई सुविधाओं की उपलब्धि के आधार पर किसानों को सुझाव देने की आवश्यकता है कि कौन से बीज उनकी भूमि के लिए उपयुक्त रहेगें। कृषको को खेती करने के तरीके के बारे में शिक्षित करने की जरूरत है।

6. **बेहतर प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराना:-**कृषको को वेहतर प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर जोर देने की आवश्यकता है क्योंकि बहेतर प्रौद्योगिकी के प्रयोग से उत्पादन के स्तर को बढ़ाया जा सकता है। उपलब्ध जानकारी के आधार पर यह बात स्पष्ट होता है कि वेहतर प्रौद्योगिकी के प्रयोग से उत्पादकता का जो स्तर प्राप्त किया जा सकता है तथा उत्पादकता का जो स्तर प्राप्त किया जा रहा है उसमें काफी अन्तर है। इसलिए यह आवश्यक है कि किसानों को वेहतर प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराया जाय।
7. **बेहतर प्रबंधन**:-जिस प्रकार से उद्योगों में उत्पादकता बढ़ाने के लिए वेहतर प्रबंधन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार कृषि में भी उत्पादकता बढाने के लिए बेहतर प्रबंधन की आवश्यकता होती है।
8. **कृषि अनुसंधान**:-भारत में अनुसंधान का कार्य इंडियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों तथा अन्य विशिष्ट संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है। लेकिन ए अनुसंधान कुछ फसलों में सफलता दिला पाये है। अन्य फसलों के लिए अभी बहुत अनुसंधान करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही विभिन्न क्षेत्रीय प्रयोगशालाओं में भूमि की किस्म को जानने के लिए, भूमि संरक्षण के लिए तथा कृषि मशीनरी को बेहतर बनाने इत्यादि के लिए अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

3.9 महत्व

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि क्षेत्र में उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ने के निम्न महत्व है।

1. कृषि क्षेत्र के उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि से आर्थिक आधिक्य उत्पन्न होता है, जो कि आगें पूँजी निर्माण, औद्योगिक विकास तथा बढ़ती हुई जनसंख्या की उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक होती है।
2. कृषि की उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ने से कृषकों की आय में वृद्धि होती है, इससे अन्य क्षेत्रों का भी विकास होता है, तथा कृषि पर जनसंख्या के दबाव में कमी आती है।

3.10 अभ्यास प्रश्न

(A)

(1) भारत में कूल जनसंख्या का कितना हिस्सा कृषि पर निर्भर है।
(2) भारत में कृषि का लगभग कितना प्रतिशत हिस्सा वर्षा पर निर्भर है।
(3) स्वतन्त्रता के बाद कृषि अधीन क्षेत्रफल में किस प्रकार परिवर्तन हुआ।
(4) स्वतन्त्रता के बाद किस फसल के अधीन क्षेत्रफल में सबसे अधिक वृद्धि हुई है।
(5) कुल उत्पादन में खाद्यान्नों का हिस्सा कितना है।
(6) हरित क्रान्ति के बाद की अवधि में किस खाद्यान्न के उत्पादकता में सबसे अधिक वृद्धि हुई है।
(7) खाद्यान्नों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान किसका है।

(8) हरित क्रान्ति की प्रक्रिया कब सुरु हुई।
(9) अखाद्यान्नों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान किसका है।
(10) हरित क्रान्ति के बाद की अवधि में खाद्यान्नों में परिवर्तन बनी क्या प्रवृत्ति रही है।
(11) स्वतंत्रता के बाद कुल खाद्यान्नों के उत्पादन में लगभग कितने गुना वृद्धि हुई है।
(12) किस योजना के बाद की अवधि को हरित क्रान्ति का काल कहा जाता है।

(B)

(1) भारत जैसे विकासशील देशों में कृषि ही जीविका का मुख्य साधन है। (सत्य /असत्य)
(2) हरित क्रान्ति के बाद की अवधि में कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि हुई है। (सत्य / असत्य)
(3) उत्पादकता का अर्थ प्रति इकाई भूमि में कुल उत्पादन से है। (सत्य / असत्य)
(4) स्वतंत्रता के पश्चात कृषि क्षेत्र के आकार में निरंतर गिरावट आयी है। (सत्य / असत्य)
(5) आलू की खेती के अधीन क्षेत्रफल में 1949-50 में दो लाख हेक्टेयर से बढ़कर 2008-9 में 16 लाख हेक्टेयर हो गया। (सत्य /असत्य)
(6) खाद्यान्नों में सबसे अधिक चावल के अधीन क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है। (सत्य /असत्य)
(7) दालों का उत्पादन हमेशा माँग की तुलना में कम रही है। (सत्य / असत्य)
(8) गन्ने का उत्पादन विभिन्न योजनाओं में सत्त रूप से बढ़ा है। (सत्य / असत्य)

3.11 सारांश

भारत जैसे विकासशील देशों में कृषि जीविका का मुख्य साधन है। स्वतन्त्रता के पूर्व कृषि की स्थिति ठीक नही थी। उत्पादन तथा उत्पादकता का स्तर बहुत ही कम था। स्वतन्त्रता के बाद विशेषकर हरित क्रान्ति की प्रक्रिया सुरु होने के बाद उत्पादन तथा उत्पादकता में काफी वृद्धि दर्ज की गयी है। आर्थिक योजनाओं के लागू होने तथा कृषि विकास पर विशेष ध्यान देने के कारण कृषि क्षेत्र में निम्न प्रवृत्तियां दिखाई देती है।

(1) सभी फसलों के अधीन क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है। जहाँ हरित-क्रान्ति से पूर्व के काल के दौरान क्षेत्र विस्तार के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई वही 1965 के बाद की अवधि में कृषि उत्पादकता में वृद्धि कृषि उत्पादन में वृद्धि का प्रमुख कारण था ।

(2) क्षेत्रफल में वृद्धि के साथ -साथ कृषि उत्पादकता में वृद्धि के कारण सभी फसलों के कूल उत्पान में वृद्धि की प्रवृत्ति पायी गयी है। हरित क्रान्ति के बाद की अवधि में कुछ खाद्यान्नों की उत्पादकता में काफी तेजी से वृद्धि हुई है, ए खाद्यान्न गेहूँ, चावल तथा मक्का है। लेकिन जब हम भारतीय कृषि उत्पादकता की तुलना अन्तर्राष्ट्रीय मानक के अनुसार करते है तो यह बहुत ही कम है।

(3) गेंहूँ को छोड़, आधुनिक कृषि तकनीकि अपनाने के बावजूद उत्पादन की वृद्धि दर कायम न रखी जा सकी ।

(4) चावल में उत्पादकता की वृद्धि दर कुछ समय पश्चात बढ़ी, किन्तु अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों के अधीन क्षेत्रफल में विस्तार फलस्वरूप 1980-81 के पश्चात चावल के उत्पादन में वृद्धि हुई।

(5) आधुनिक तकनीकि को विश्वस्त वर्षा वाले क्षेत्रों में लागू करने के परिणामस्वरूप तिलहनों, मोटे अनाजों और दालों का उत्पादन घटियाँ भूमियों की ओर धकेल दिया गया। अतः इन फसलों में उत्पादकता या कुल उत्पादन में अधिक वृद्धि प्राप्त न की जा सकी।

3.12 शब्दावली

- उत्पादन : उत्पादन का सम्बन्ध किसी क्षेत्र में उत्पादन की कूल मात्रा से है।

- उत्पादकता : उत्पादकता का सम्बन्ध प्रति इकाई भूमि में कूल उत्पादन से है ।
- आर्थिक आधिक्य : कूल उत्पादन तथा उपभोग का अन्तर।
- आगत : उत्पादन क्रिया में जो साधन प्रयोग होते है।
- बड़े पैमाने की खेती : जब खेत के बड़े आकार पर खेती की जाती है, तो इसे बड़े पैमाने की खेती कहते है।
- छोटे पैमाने की खेती : जब खेत के छोटे आकार पर खेती की जाती है तो इसे छोटे पैमाने की खेती कहते है।
- संस्थागत ऋण : जब कोई ऋण संस्थागत स्रोतो से प्राप्त प्राप्त किया जाता है तो इसे संस्थागत ऋण कहते है, जैसे बैंक इत्यादि से प्राप्त ऋण।
- श्रम गहन खेती : जब कृषि उत्पादन क्रिया में श्रम का ज्यादा प्रयोग करते है तो इसे श्रम गहन खेती कहाँ है।
- पूँजी गहन खेती : जब कृषि उत्पादन क्रिया में पूँजी का ज्यादा प्रयोग करते है, तो इसे पूँजी गहन खेती कहते है।

3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(A)

उत्तर :- (1) 65 प्रतिशत (2) 60 प्रतिशत (3) वृद्धि हुई है। (4) आलू में (5) दो तिहाई से थोड़ा कम (6) गेहूँ में (7) चावल तथा गेहूँ का (8) 1965-66 में (9) खाद्य तेलों का (10) वृद्धि हुई है। (11) 5 गुना (12) तीसरी योजना

(B)

उत्तर- (1) सत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य (6) असत्य (7) सत्य (8) सत्य

3.14 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ

- R.K Lekhi and Joginder Singh “Technological Possibilities of Agricaltural Development in India"
- S.S. china “Agricultural Economics and India Agriculture”
- गौरव दत्त एवं के.पी. एम. सुन्दरम 66 "भारतीय अर्थव्यवस्था'
- एस. के. मिश्र एवं वी.के. पुरी "भारतीय अर्थव्यवस्था "
- Ramesh chand, S.S Raju and L.M. Pandey “Growth crisis in Agriculture" EPW, June 30, 2007

3.15 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

- W. Burns “Technological possibilities of Agricultural Development in India"
- डॉ. के. एन. जोशी एवं ST. मंजुला मिश्र "कृषि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त एवं भारत में कृषि विकास "
- डॉ. पी. गुप्ता "कृषि अर्थशास्त्र"
- C.P. Dutt and B.M. Pugh, “Principles and Practices of Crop Production"
- Naidu and Narsinham, “Economics of Indian Agriculture” Vol. 1
- R.D. Tiwari, “Indian Agriculture”
- J.P. Bhattacharjee, “Studies in Indian Agricultural Economics”

3.16 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) कृषि क्षेत्र में वृद्धि की प्रवृत्तियों को बताइए।
(2) कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि की प्रवृत्तियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
(3) कृषि उत्पादकता के कम होने के क्या कारण है तथा वे कौन से उपाय है, जिनसे कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।
(4) वे कौन से कारक है, जिन पर कृषि की उत्पादकता निर्भर करती है।

इकई 4- भारत में भूमि सुधार
(Land Reforms in India)

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 भूमि व्यवस्था
4.4 भूमि सुधार का आशय
  4.4.1. भूमि सुधार के उद्वेश्य
  4.4.2. भूमि सुधार की आवश्यकता
4.5 भूमि सुधारों का स्वरूप।
  4.5.1 जमीदारी तथा मध्यस्थों का उन्मूलन
  4.5.2 जोतो की उच्चतम सीमा का निर्धारण
    4.5.2.1 उच्चतम जोत सीमा निर्धारण के लाभ
    4.5.2.2 उच्चतम जोत सीमा निर्धारण से हानि
  4.5.3. काश्तकारी व्यवस्था में सुधार
    4.5.3.1 लगान का नियमन
    4.5.3.2 भूधारण की सुरक्षा
    4.5.3.3 काश्तकारों का पुनर्ग्रहण
    4.5.3.4 भूमिहीन कामगारो को भूमि प्रदान करना
  4.5.4. कृषि का पुर्नगठन
    4.5.4.1 चकबन्दी
    4.5.4.2 भूमि के प्रबधन में सुधार
    4.5.4.3 सहकारी कृषि
4.6 भूमि सुधार कार्यक्रमों का आलोचनात्मक मूल्यांकन
  4.6.1 भूमि सुधार कार्यक्रमों का प्रभाव
  4.6.2 भूमि सुधार कार्यक्रमों की कमियाँ
  4.6.3 भूमि सुधार कार्यक्रमों की सफलता के लिए सुझाव सांराश शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्न
4.8 सारांश
4.9 शब्दावली
4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.13 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में कृषि क्षेत्र आकार, वृद्धि एवं उत्पादकता की प्रवृत्तियाँ का विस्तार से अध्ययन किया। इस इकाई में हम भारत में भूमि सुधार का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में आप प्राचीन काल में कैसी भूमि व्यवस्था थी से जानकारी प्राप्त करते हुए स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारत में भूमि व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करेगें। भूमि सुधारों का स्वरूप के अन्तर्गत जंमीदारी तथा मध्यस्थों का उन्मूलन ,जोतो की उच्चतम सीमा का निर्धारण और काश्तकारी व्यवस्था में सुधार प्रक्रिया का अध्ययन करेगें। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप भूमि व्यवस्था के प्रमुख प्रकार , भूमि सुधार से क्या आशय एवं इसके अर्न्तगत क्या – क्या कदम उठायें गये और भूमि सुधारों का स्वरूप की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल होंगे कि

- ✓ भूमि व्यवस्था के प्रमुख प्रकार को जान पायेगें।
- ✓ भूमि सुधार से क्या आशय एवं इसके अर्न्तगत क्या क्या – क्या कदम उठायें गये इसको जान सकेगें।
- ✓ भूमि सुधार प्रक्रिया अपनाने के उद्देश्य से अवगत हो सकेगें।
- ✓ भूमि सुधारों का स्वरूप की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- ✓ काश्तकारी व्यवस्था क्या क्या- क्या सुधार किए गयें ।
- ✓ कृषि के पुनर्गठन से अवगत हो पायेगें।

4.3 भूमि व्यवस्था

प्राचीन भारत में गाँव ही देश की आर्थिक एवं सामाजिक गुठली था और इस गाँव की वास्तविक व्यवस्था ग्राम समुदाय द्वारा की जाती थी जो पंचायतो के द्वारा किसानों के अधिकारों को प्रशासित करता था और घास के मैदानों, चरागाहों, तालाबों तथा सिंचाई साधनों पर अपना अप्रत्यक्ष स्वामित्व बनाये रखता था। इन सामूहिक अधिकारों का किसी द्वारा लेश-मात्र अतिक्रमण भी ग्राम सभा द्वारा बुरा माना जाता था और उसे दंडित किया जाता था। इस काल में भूमि पर अधिकार ग्राम समुदाय का था न कि राजा का और ग्राम समुदाय ही भू-राजस्व का निर्धारण तथा संकलन करता था। मनु के अनुसार हिन्दू काल में भू-राजस्व में राजा का परम्परा अथवा रूढ़ियों द्वारा निर्धारित अंश साधारण समय में भूमि की उपज का 1/6 और आपातकाल में 1/4 होता था। मुसलमानी शासनकाल में देश की तत्कालीन भूमि व्यवस्था और कर-प्रणाली को कतिपय संशोधनों के साथ बनाये रखा गया। भू-राजस्व में सरकार के अशं को बढ़ाकर उपज का 1/2 कर दिया गया। अकबर के शासन काल में राजा टोडरमल ने भूमि की क्रमबद्ध विस्तृत पैमाइश की और उसकी बन्दोबस्ती हुई। समस्त भूमि को उर्वरता के आधार पर चार भागों में रखा गया और उपज 1/3 भाग को राजस्व के रूप नगद लिया जाना निर्धारित किया गया। यह व्यवस्था सन् 1765 तक, जब शाह आलम ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को दीवानी प्रदान नहीं कर दी प्रचलित थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भूमि-राजस्व प्रणाली को दृढ़ आधार पर रखने के लिए सन् 1793 में लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल और बिहार के लिए स्थायी बन्दोबस्ती की व्यवस्था की, जिसे बाद में यू0पी0के बनारस पमंडल के साथ भी लागू किया गया। अवध में छोटे जागीर दारों, राजस्व कृषकों आदि को सन 1857 के पश्चात भू-स्वामियों में बदल कर विशेष अधिकार दिए गए। मद्रास और बम्बई में रैयतवाडी प्रथा और शेष यू०पी०में महालवाडी व्यवस्था लागू की गई।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन काल में भू-व्यवस्था की पूर्ण रूपान्तरण हो गया। सरकार सर्वोच्च भू-स्वामिनी बन गई और कृषक कास्तकार। इस व्यवस्था में भारत में वैयक्तिक आधार को मजबूत कर सामूहिक आधार का विनाश हुआ जिस कारण कृषक तथा ग्राम समुदाय दानों का विनाश हुआ। जिस कारण कृषक एवं शिल्पियों के आपसी सम्बन्ध टूट गये। जबकि देश में वस्तु विनिमय प्रणाली के स्थान पर मौद्रिक प्रणाली का विकास हो रहा था। इस तरह स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारत में तीन प्रकार की प्रमुख भूमि व्यवस्थाएँ थी-

(1) रैयतवाडी,

(2) महालवारी और

(3) जमींदारी।

कुल कृषि क्षेत्र के 52 प्रतिशत भाग पर रैयतवाडी, 40 प्रतिशत भाग पर जमींदारी और शेष पर महालवारी और अन्य व्यवस्थाएँ–जागीरदारी, विश्वेदारी आदि प्रचलित थी।

4.4 भूमि सुधार का आशय

भूमि सुधार एक विस्तृत धारणा है जिसमें सामाजिक न्याय की दृष्टि से जोतों के स्वामित्व का पुनर्वितरण तथा भूमि के इष्टतम प्रयोग की दृष्टि से खेती किए जाने वाले जोतों का पुनगर्छन सम्मिलित है। नोबल पुरस्कार प्राप्त महान अर्थशास्त्री प्रो0 गुन्नार मिर्डल के अनुसार–"भूमि सुधार व्यक्ति और भूमि के सम्बन्धों में नियोजन तथा संस्थागत पुनर्गठन है।" स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश के अधिकांश कृषि क्षेत्र में वास्तविक काश्तकार तथा भूमि के स्वामी के बीच मध्यस्थों की एक बड़ी सेना विद्यमान थी। इनके कारण जहाँ एक ओर काश्तकार को भूमि की उपज का बड़ा भाग मध्यस्थों को देना पड़ता था, वही दूसरी ओर वह इन पर पूरी तरह आश्रित था। भू-धारण की उसे कोई गारंटी नही दी जाती थी और लगान की दरों में भी निश्चितता नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद "जोतने वाले को भूमि" के नारे को वास्तविकता में बदलने के लिए भूमि सुधार किए गयें। सबसे पहले उत्तर प्रदेश लिए कानून बनाया गया।

4.4.1. भूमि सुधार के उद्देश्य- भूमि व्यवस्था सम्बन्धी सुधार हेतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार द्वारा निर्णय लिया गया जिससे मूलतः निम्न उद्देश्यों की पूर्ति की आशा थी।

(1) कृषि क्षेत्र में विद्यमान संस्थागत विसंगतियों को दूर करना तथा इसे तर्क संगत और आधुनिक बनाना। जैसे- जोत का आकार, भूमि स्वामित्व, भूमि उत्तराधिकार ,काश्तकार की सुरक्षा, आधुनिक संस्थागत सहायता और आधुनिकीकरण आदि पर ध्यान दिया जाना था।

(2) आर्थिक असमानता को समाप्त करना था, जिससे सामाजिक समानता को प्राप्त कर लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके।

(3) कृषि उत्पादन में वृद्धि कर आत्म निर्भरता प्राप्त करना।

(4) गरीबी उन्मूलन एंव लोगो में सामान्य मान्यताएँ प्रदान करना।

4.4.2. भूमि सुधार की आवश्यकता

भारत में भूमि सुधारों की आवश्यकता निम्न कारणों से महसूस की गई थी।

(1) स्वतंत्रता के समय देश में कृषि पदार्थो की भारी कमी थी। अतः कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम आवश्यक है।

(2) सामाजिक न्याय और समानता के विकास हेतु सुधार कार्यक्रम द्वारा एकत्रित भूमि को भूमिहीनों में वितरित करना।

(3) औद्योगिक क्षेत्र में अनेक उद्योग के लिए कच्चा माल भूमि से ही प्राप्त होता है। भूमि सुधारों की आवश्यकता पर बल देते हुए डॉ0 राधाकमल मुखर्जी ने अपनी पुस्तक इकनॉमिक प्रॉबलम्स ऑफ इड़िया में लिखा था कि ***"वैज्ञानिक कृषि अथवा सहकारिता को हम कितना ही अपना ले, पूर्ण सफलता हमें तब तक नहीं***

मिलेगी जब तक कि हम भूमि व्यवस्था में वांछित सुधार नहीं कर देते।" प्रो0 सैग्युलसन के अनुसार- ***"सफल भूमि सुधार के कार्यक्रमों ने अनेक देशों में मिट्टी को सोने में बदल दिया है।'***

4.5 भूमि सुधारों का स्वरूप

हम सुविधा के अनुसार भूमि सुधारों को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत समीक्षा कर सकते है

(1) मध्यस्थों वर्गों का उन्मूलन

(2) जोतो की उच्चतम सीमा का निर्धारण

(3) काश्तकारी सुधार

I. लगान का नियमन

II. भू-धारण की सुरक्षा

III. काश्तकारों का पुनर्ग्रहण

IV. भूमिहीन कामकारों को भूमि प्रदान करना

(4) कृषि का पुनर्गठन

I. चकबंदी

II. भूमि के प्रबंधन में सुधार

III. सहकारी कृषि

4.5.1 जमीदारी तथा मध्यस्थों का उन्मूलन

भूमि सुधार व्यवस्था का सर्वप्रमुख कार्य जमीदारी या मध्यस्थों का उन्मूलन था। उत्तर प्रदेश जमीदारी उन्मूलन कानून का पालन करने में अग्रणी राज्य था जहाँ एक विधेयक 7 जूलाई 1949को प्रस्तुत किया गया जो 16 जनवरी 1951 को पास हो गया। क्रमश बम्बई व हैदराबाद में 1949-50, म0प्र0 व असम में 1951,पंजाब, राजस्थान व उडीसा में 1952 तथा हिमाचल कर्नाटक व पश्चिमी बंगाल में 1954-55 में अधिनियम पारित किए गए। देश के लगभग सभी राज्यों में जमीदार ,जागीरदार एंव नामणदार जैसे मध्यस्थों के भूमि अधिकारों को समाप्त किया गया। इन मध्यस्थों के पास देश की लगभग 40 प्रतिशत से अधिक कृषि भमि पर अधिकार था। इनकी समाप्ति से देश के लगभग दो करोड़ से अधिक किसानों को लाभ पहुँचा है और उन्हें भूमि में स्थाई तथा पैतृक अधिकार प्रदान किया गया।

4.5.2 जोतो की उच्चतम सीमा का निर्धारण

भूमि सुधार कार्यक्रमों का प्रमुख ध्येय में जोतो की उच्चतम सीमा का निर्धारण था। इस कार्य को करने की आवश्यक का कारण प्रथम रूप में भविष्य में जोतों के आकार में वृद्धि को रोकना था एंव दूसरा बड़ी जोतों के अतिरिक्त भू–भाग को लेकर उनको भूमिहीनों में वितरित कर समाजिक न्याय करना था।

तालिका 4.1 अधिकतम जोत का आकार हेक्टेयर में |

राज्य	द्धफसली सिंचित भूमि	एक फसली सिंचित भूमि	शुष्क भूमि क्षेत्र
आन्ध्र प्रदेश	4.05 से 7.28	6.07 से 10.93	14.16 से 21.85
आसाम	6.74	6.74	6.74
बिहार	6.07 से 7.28	10.12	12.14 से 18.21
गुजरात	4.05 से 7.29	10.12	8.09 से 21.85

हरियाणा	7.25	10.90	21.80
हिमाचल प्रदेश	4.05	6.07	12.14 से 28.33
जम्मू-कश्मीर	3.60 से 5.06	-	5.95 से 9.20
कर्नाटक	4.05 से 8.10	10.12 से 12.14	21.85
केरल	4.86 से 6.07	4.86 से 6.07	4.86 से 6.07
म०प्र०	7.28	10.93	21.85
महाराष्ट्र	7.28	10.93	21.85
मणिपुर	5.00	5.00	6.00
उडीसा	4.05	6.07	12.14 से 18.21
पंजाब	7.00	11.00	20.50
राजस्थान	7.28	10.93	21.85 से 70.82
तमिलनाडु	4.86	12.14	24.28
सिक्किम	5.06	-	20.23
त्रिपुरा	4.00	4.00	12.00
उ0प्र0	7.30	10.95	18.25
पं0बंगाल	5.00	5.00	7.00
केन्द्र के	4.05 से 7.28	10.93	21.85
निर्देशानुसार(1972में)।			

स्रोत्र :-Agricultural Statistics at a Glance , 2001,Directorate of Economics & Statistics Dept. Of Agril Cooperation Page 230

उच्चतम जोत सीमा का निर्धारण का आधार भिन्न-भिन्न राज्यों में अलग-अलग माना गया। उच्चतम जोतो की कृषि भूमि को सिंचित व असिंचित में बाँटा, पुन सिंचित क्षेत्र में एक फसली एवं द्विफसली में बाँटकर विभिन्न राज्यों में जोतो की अलग-अलग उच्चतम सीमाएँ निचित की गई जैसा तालिका 4.1 में दिया गया है। नागालैण्ड, मेद्यालय, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश में भूमि के सामुदायिक स्वामित्व के कारण जोतो की सीमा निर्धारित नहीं की गई

4.5.2.1. उच्चतम जोत सीमा निर्धारण के लाभ

उच्चतम जोत सीमा निर्धारण के निम्नवत लाभ इंगित है

1. उच्चतम जोत की सीमा निर्धारण से भूमि के असमान वितरण को एकत्रित कर वंचित लोगों में बांटा गया।
2. भूमि अधिकार की प्राप्ति से राजनीतिक जागृति एवं समाजवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण में सबलता प्राप्त हुई।
3. मध्य एवं छोटी जोतो की स्थापना से लोगों में समानता का वातावरण बनता है जो सहकारी कृषि का आधार बनता है।
4. मध्य एवं छोटे जोते श्रम प्रधान होते है जो मशीनीकरण पर अंकुश लगाकर रोजगार में वृद्वि की द्योतक है।

5. उच्चतम जोत की सीमा व्यक्ति के पास भूमि की उपलब्धता को कम करता है।

जिस कारण गहन कृषि को प्रोत्साहन मिलता है।

6. उच्चतम जोत की सीमा केन्द्रीयकरण की प्रवृति को हतोत्साहित करती है।
7. उच्चतम जोत सीमा का सबसे बड़ा लाभ कृषि भूमि के अपव्यय को रोकना है बड़ी जोत में कुछ न कुछ भूमि कृषि कार्य से विरत रह जाती है, जबकि छोटी जोत की सम्पूर्ण भूमि का उपयोग हो जाता है।

4.5.2.2 उच्चतम जोत सीमा निर्धारण से हानि

उच्चतम जोत सीमा निर्धारण के विपक्ष में जो तर्क दिए जाते है, वे ही इसके अवगुण या हानि है, जो निम्नवत है:

1. कृषि का वृहद रूप में उपयोग न हो पाना, जिस कारण मशीनीकरण और उच्च तकनीकी ज्ञान का लाभ नहीं मिल पाता है।
2. शहरी क्षेत्र में भूमि की उच्चतम सीमा नहीं होना और कृषि में भूमि की उच्चतम सीमा विषमता को पैदा करता है।
3. भूमि की उर्वरता एवं सिंचाई की भिन्नता के साथ उसकी कोटि भी कई प्रकार की है, इस कारण सभी क्षेत्रों में कृषि भूमि की एक सी उच्चतम सीमा निर्धारण व्यावहरिक रूप में सही नहीं है।
4. ऐसी आशा थी कि भूमिहीन लोगो के एकत्रित भूमि का वितरण कर सामाजिक न्याय की स्थापना की जाएगी, जबकि एकत्रित भूमि की मात्र कम एवं अपेक्षित लोगो की अधिक संख्या के कारण उनकी समस्या का उचित समाधान नहीं किया जा सका है। जैसा तलिका 4.2 में दिया है।
5. कृषि के आधुनिकीकरण छोटी जोत में नहीं किया जा सकता है।

तलिका 4.2 राज्य

राज्य	वर्तमान तथा भावी जोत की सीमायें (एकड़)	सीमा से अधिक भूमि जिस पर सरकार द्वारा नियंत्रण किया गया (हज़ार हेक्टेयर)	वितरित की गयी भूमि (हज़ार हेक्टेयर)
आसाम	24	27	0.4
बिहार	20 से 60	-	-
गुजरात	19 से 132	20	10
हरयाणा	27 से 100	73	22
जम्मूकश्मीर	22.75	180	180
केरल	12 से 15	2	2
मध्यप्रदेश	25 से 75	34	7
तमिल नाडू	12 से 60	11	9
महाराष्ट्र	18 से 126	152	47
उडीशा	20 से 80	-	-
पंजाब	27 से 100	71	25
राजस्थान	27 से 336	24	5
पश्चिम बंगाल	12.4 से 17.3	354	140

4.5.3 काश्तकारी व्यवस्था में सुधार:- काश्तकारी व्यवस्था में भूमि का स्वामी स्वंय कृषि न कर अन्य किसानों को पट्टे पर देता था। प्रतिफल में किराया या लगान लेता था। पट्टेदार किसान भी कहीं-कहीं आगे इसे अन्य किसानों को पट्टे पर दे देते थे। काश्तकारो का निम्न स्वरूप उस समय में दिखाई पड़ता था।

स्थायी काश्तकार- स्थायी काश्तकार वह थे जिन्हें भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकता था। परन्तु जमीदार लागन में वृद्वि कर सकता था।

ऐच्छिक काश्तकार- ये काश्तकार थे जिन्हें जमीदार कभी भी भूमि से बेदखल कर सकता था।

उपकाश्तकार- काश्तकार किसान जिन किसानों को पट्टे पर भूमि देते थे उन्हे उपकाश्तकार कहते थे। इनकी स्थित अत्यन्त दयनीय थी इन्हे तो कभी-कभी लगान उपज का दो तिहाई तक देना होता था। काश्तकारी व्यवस्था में सुधार का मुख्य उद्देश्यों काश्तकारों को भूमि पर कानूनी रूप में स्थायी अधिकार प्रदान करना था, साथ ही बीमार, अपंग, विधवा असर्मथ और सैनिक आदि जो स्वंय खेती नहीं कर सकते है पट्टे पर प्रदान करने की छूट देना था। शोषणात्मक कार्यो पर रोक हेतु जमीदारी अधिनियम में काश्तकारी व्यवस्था में निम्न सुधार किए गए

4.5.3.1. लगान का नियमन- लगान नियमन कानून लागू होने से पूर्व पट्टेदार कुल उपज का आधे से अधिक भाग भूमि स्वामी को लगान के रूप में देते थे। प्रथम योजना में ही इस सन्दर्भ में नियमन बनाया गया जो सामान्य तथा 20 से 25 प्रतिशत से अधिक न हो जैसाकि तलिका में विभिन्न राज्यों के सन्दर्भ में सिंचित और असिंचित एवं शुष्क भूमि के लिया इंगित है।

4.5.3.2. भू-धारण की सुरक्षा– काश्तकारी व्यवस्था में महत्वपूर्ण कार्य पटेदारों को पट्टे की सुरक्षा प्रदान करने के सन्दर्भ में उठाया गया। बड़े पैमाने पर पटेदारों की बेदखली पर रोक लगाई गयी। भूमि की एक न्यूनतम सीमा पट्टेदारों के पास अवश्य रहने दी गई। कुछ राज्यों में पट्टेदारों को अन्यत्र भूमि दिलाने का उत्तरदायित्व दिया गया।

4.5.3.3 काश्तकारों को भूमि का स्वामित्व तीन प्रकार से दिया गया

1. जो काश्तकार दूसरों की भूमि जोत रहे थे वे स्वंय को भूमि का स्वामी घोषित कर दिए गए। इनमें जमीन के मालिक को मआवने देने को कहा गया। न देने पर सरकार ने वसूली का दायित्व लिया। यह व्यवस्था- गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान में की गई।
2. सरकार ने स्वंय भूमि का मुआवजा मालिकों को प्रदान किया तथा काश्तकारों से बाद में किस्तों में लिया गया। यह व्यवस्था दिल्ली में की गई।
3. सरकार ने काश्तकारों से सीधा सम्पर्क बनाया गया और उन्हें दो विकल्प दिए गये प्रथम वह भूमि का पूरा मूल्य देकर स्वामित्व के अधिकार को प्राप्त करे द्वितीय सरकार को लगान देते रहें। इस प्रकार की व्यवस्था केरल एवं उ0प्र0 में की गई।

4.5.3.4 काश्तकारों का पुनर्ग्रहण- सभी राज्यों में काश्तकारों को भू-धारण अधिकार प्रदान करने के लिए कानून बनाए गए। इसके अन्तर्गत जो काश्तकार 8 से 10 वर्ष से खेती कर रहे थे उन्हें जमीन पर स्वामित्व का अधिकार दिया गया। लगभग 1करोड़ 14 लाख काश्तकारों को 1.5 करोड़ एकड़ भूमि पर स्वामित्व प्रदान किया गया।

4.5.3.5 भूमिहीन कामगारो को भूमि प्रदान करना- उच्चतम सीमा के कारण प्राप्त भूमि एवं ग्राम-दान आंदोलन के द्वारा बड़े भू-स्वामियों से प्राप्त भूमि को भूमिहीन श्रमिकों में वितरित किया गया ताकि भूमि संबन्धी असमानता को दूर किया जा सके।

4.5.4. कृषि का पुर्नगठन

भूमि सुधार कार्यक्रमों के अन्तर्गत कृषि का पुर्नगठन किया गया, इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए गये।

4.5.4.1 चकबन्दी– चकबन्दी वह प्रक्रिया है जिसमें किसान के इधर-उधर बिखरे हुए छोटी भूमि के बदले उसी किस्म भूमि के लिए एक स्थान पर प्रदान कर जारी करना है। चकबन्दी दो प्रकार की है

(1) ऐच्छिक चकबन्दी- यह लोगो की इच्छा पर है, बड़ौदा रियासत द्वारा 1921में आरम्भ की गई।
(2) अनिवार्य चकबन्दी– यह चकबन्दी कानूनी रूप में अनिवार्य रूप से लागू की जाती है, इसकी शुरूआत 1928 में आंशिक चकबन्दी के रूप में म0 प्र0 में हुई थी। नौ राज्य आन्ध्र प्रदेश, अरूणाचल, मिजोरम, मणिपुर, मेद्यालय, त्रिपुरा, नागालैण्ड़, तमिलनाडु, व केरल में चकबन्दी कानून नही है, बाकि सभी राज्यों में चकबन्दी कानूनों के अर्न्तगत चकबन्दी की जा रही है। पंजाब व हरियाणा में चकबन्दी कार्य पूर्ण है, उ0 प्र0 में भी 90 प्रतिशत कार्य पूरा किया जा चुका है।

4.5.4.2 भूमि के प्रबधन में सुधार- भूमि सुधार कार्यक्रम की सफलता भूमि रिकार्ड व दस्तावेजों के अद्यतन बनाने से ही है। इस सन्दर्भ में व्यवस्था हो रही है। समस्त भूमि सुधार कानूनों को नौंवी अनुसूची में शामिल किया जा चुका है। केन्द्रीय आयोजना के अर्न्तगत भूमि रिकार्डो का 12 वीं योजना के अन्त तक सभी जिलों में पूर्णतया कम्प्यूटरीकरण के लिए कार्य किया जा रहा है। बंजर भूमि का उपयोग, उन्नत पैदावार वाले बीजों का प्रयोग, कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग आदि के द्वारा भूमि का कुशल प्रबन्ध किया जा रहा है।

4.5.4.3 सहकारी कृषि– सहकारी कृषि का आशय किसानों के द्वारा सहकारिता के सिद्धान्तों के आधार पर संयुक्त रूप से कृषि करना, जो हमारे ग्राम स्वराज्य का अवलम्बन था। देश में भूमि सुधारों का अन्तिम लक्ष्य सहकारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थापना करना है। इसमें छोटे-छोटे किसान आपस में मिलकर बड़ी जोत के सभी लाभों को प्राप्त करते हुए नवीन तकनीकी ज्ञान के आधार पर गहन कृषि करते है। लाभ का वितरण भूमि की हिस्सेदारी एवं परिश्रम को मिलाकर किया जाता है। पंचवर्षीय योजना में भूमि के छोटे-छोटे टुकडो को देखते हुए सहकारी खेती पर काफी जोर दिया जा रहा है। सहकारी खेती के चार रूप हो सकते है

(क) काश्तकार सहकारी खेती
(ख) सामूहिक सहकारी खेती
(ग) उन्नत सहकारी खेती
(घ) संयुक्त सहकारी खेती

4.6 भूमि सुधार कार्यक्रमों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

आजादी मिलने के बाद से भूमि सुधार कार्यक्रम जिनके अर्न्तगत जंमीदारी उन्मूलन, जोतों की उच्चतम सीमा का निर्धारण, काश्तकारी उन्मूलन, लगान का नियमन, सहकारी कृषि, चकबन्दी एंव पटे की सुरक्षा जैसे कार्य किए गये, जिनके आधार पर भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रशंसा भी की जाती है। जैसाकि संयुक्त राष्ट्र संद्य की भूमि सम्बन्धी रिपोर्ट में उल्लेख है कि," भारत में भूमि सुधार के हाल के अधिनियम संख्यात्मक दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इतने अधिनियम कहीं भी नहीं बनाए गए हैं। अधिनियम लाखों, करोड़ों कृषको पर प्रभाव डालते हैं और भूमि के विशाल क्षेत्रों को अपने दायरे में सम्मिलित करते हैं। लेकिन ऐसा होने पर भी भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रगति धीमी रही है। **प्रो0 दान्तवाला** का मत है कि,**" *अब तक भारत में जो भूमि सुधार हुए है या निकट भविष्य में होने वाले हैं वे सभी सही दिशा में है, लेकिन क्रियान्वयन के अभाव में इसके परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहे हैं।* "**भूमि सुधार कार्यक्रमों की कुछ सफलता रही तो इसी धीमी गति के रूप में कुछ कमियां भी इंगित होती है।

4.6.1 भूमि सुधार कार्यक्रमों का प्रभाव- भूमि सुधार कार्यक्रमों का सकारात्मक पक्ष जिसे हम इन कार्यक्रमों का प्रभाव भी कह सकते है निम्नवत रहे। अब खेती करने वाले किसान और सरकार में सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। भूमि की मालगुजारी सीधे सरकार के पास जमा करता है। किसानों को भूमि पर स्थाई अधिकार प्राप्त हो गये परिणाम यह हुआ कि उपज वृद्विहेतु किसानों द्वारा भूमि पर स्थायी सुधार कार्यक्रम भी शुरू किए जाने लगे। जंमीदारी प्रथा के अन्त होने से बेगारा व नौकरी जैसी शोषण गतिविधियों से किसानों को मुक्ति मिल गई। किसानों

को भूमि का स्वामित्व मिला जिस कारण वह उसमें स्थाई सुधार लागू कर अधिक परिश्रम करने लगें फलस्वरूप कृषि उपज में वृद्वि हुई। काश्तकार एवं जमीदार एक ही स्तर पर आ गये इसे समाज में समता की भावना का विकास हआ। लोग आपस में मिलकर सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुरूपसहकारी कृषि को बढावा मिला। चकबन्दी के परिणाम स्वरूप बिखरे खेतों को एकत्रित किया गया जहां वह कृषि कार्यो हेतु एक साथ नवीन तकनीक से गहन कृषि कर सकते है। जोतो की उच्चतम सीमा निर्धारण के कारण भूमि का उचित एवं न्यायपूर्ण वितरण हो सका। ग्रामीण व्यवस्था में एक नवीन परिवर्तन आया समाज के उस वर्ग को भी जमीन उपलब्ध हुई जिसके पास केवल मजदूरी का ही कार्य था। लोगों को आवास हेतु जमीन प्रदान की गई। लगान के रूप में सरकारी राजस्व में भी वृद्धि हुई। बेकार पड़ी हुई भूमि का समाज के वंचित वर्ग में वितरण हुआ। समान्तवादी व्यवस्था का अन्त हुआ। किसानों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर में नूतम परिवर्तन आया।

4.6.2 भूमि सुधार कार्यक्रमों की कमियाँ- भूमि सुधार कार्यक्रम बड़ी ही तत्परता से लागू हुए परन्तु अवलोककन करने पर इनमें निम्नं कमियाँ इंगित होती है- भूमि सुधार कार्यक्रमों का प्रभावी क्रियान्वयन नहीं हो सका। प्रो0 गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक एशियन ड्रामा में लिखा है कि 'भूमि सुधार कानून जिस ढंग से क्रियान्वित किए गए है उनसे सामान्यत उन कानूनों की भावनाओं और अभिप्राय को हताश होना पड़ा है।"लोगो (जमीदारों) द्वारा काश्तकारों को बेदखल कर खुदकाश्त के लिए भूमि का पुर्नग्रहण किया गया। उच्चतम जोत की सीमा से बचाव हेतु जोतो का अनियमित एवं अवैधानिक हस्तान्तरण हुआ जमीदार, राजनेता एवं प्रशासनिक अधिकारी का गठजोड़ बना जो पूर्व में ही तथाकधित रूप में एक ही थे, इन्होनें कानून की अवहेलना के साथ ही साथ भूमि सम्बन्धी रिकार्डो में भी परिवर्तन किया। भूमि सम्बन्धी प्रलेख अपूर्ण थे जिससे स्वामित्व निर्धारण करने में कठिनाई आई। भूमि सुधार सम्बन्धी कानून का जंमीदारों द्वारा कानून की खामियों का लाभ उठाया गया। भूमि सुधार कार्यक्रमों में एकरूपता का अभाव था। कई कार्यक्रम जैसे चंकबन्दी, उच्चतम जोत सीमा कानून, सहकारी कृषि आदि को एक साथ लागू नहीं किया गया। भूमिहीन किसानों या छोटे काश्ताकारों को भूमि के स्वामित्व प्रदान करने के साथ ही साख या वित्त की उपलब्धता नहीं उपलब्ध कराई गई।

4.6.3 भूमि सुधार कार्यक्रमों की सफलता के लिए सुझाव- भूमि सुधार कार्यक्रमों के प्रभावी सफलता हेतु निम्न कार्य आवश्यक है- भूमि सम्बन्धी रिकार्डो का पूर्णतया नवीन करण किया जायें साथ ही सरल सुलभता हेतु पूर्णतया कम्प्यूटीकरण किया जाए। एक अच्छी प्रशासनिक तत्रं का निर्माण किया जाए। भूमि सुधार कार्यक्रमों से सन्दर्भित स्पेशल अदालत स्थापित की जाए जहाँ गरीबी लोगों को निःशुल्क न्याय प्रदान किया जाए साथ ही वह त्वरित निर्णय लिए जाए। किसानों को भूमि में स्थाई विकास हेतु साख एवं वित्त की सरलता से उपलब्धता सुनिचित किया जाना चाहिए। खेतिहर मजदूर व बटाई वालों की भी भूमि सुधार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में शामिल किया जाना चाहिए। भूमि सुधार कार्यक्रमों का समयाबद्ध रूप में क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। भूमि सुधार कार्यक्रमों का प्रचार–प्रसार के साथ इसकी प्रक्रिया को भी सरल बनाया जाना चाहिए।

4.7 अभ्यास प्रश्न

अभ्यास प्रश्न-1

संक्षिप्त शब्दो में उत्तर बताइए

1. स्वतंत्रता पूर्व भारत में भूमि व्यवस्था कितने प्रकार की थी।
2. प्राचीन भारत में भूमि पर अधिकार किसका था।
3. किस मुस्लिम शासक ने भूमि की क्रमबद्व विस्तृत पैमाइश कराई थी।
4. शाह आलम ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को दिवानी कब प्रदान की।

5. रैयतवाडी भूमि व्यवस्था में कृषि क्षेत्र का कितने प्रतिशत भाग था।
6. भूमि सुधार सबंधित कानून देश में किस प्रदेश ने सर्वप्रथम लागू किया।
7. भूमि सुधार क्यों आवश्यक थे।
8. भूमि सुधारों के प्रमुख उद्धेश्य लिखिए।

अभ्यास प्रश्न-2

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. भूमि सुधार का उद्देश्य वास्तविक ..... को सुरक्षा प्रदान करना है
2. मध्यस्थों की समाप्ति से कृषि उपज में .....हुई।
3. जोतो की सीमा निर्धारण से भूमि के .....वितरण में कमी हुई है।
4. भूमि का स्वेच्छा से दान करना .....कहलाता है।

बहुविकल्पी प्रश्न

1. भूमि सुधार का मतलब है
    (अ) भूमि का परीक्षण करना
    (ब) भूमि में खाद, सिंचाई, बीज आदि की व्यवस्था करना।
    (स) भूमि की बिक्री करना
    (द) भूमि के स्वामित्व सम्बन्धी कानूनों में सुधार करना।
2. भूमि सुधार कानूनों को संविधान की किस अनुसूची में शामिल किया गया।
    (अ) पहली
    (ब) पाँचवी
    (स) नौंवी
    (द) दंसवी
3. किस कार्य को भूमि सुधार में गिना जायेगा
    (अ) उर्वरकों का प्रयोग
    (ब) संकर बीजों का प्रयोग
    (स) चकबन्दी
    (द) सिंचाई में वृद्धि
4. भूमि सुधार कार्यक्रमों में निम्न में क्या शामिल है
    (अ) लगान का नियमन
    (ब) काश्त की सुरक्षा प्रदान करना
    (स) दोनों
    (द) दोनो नहीं
5. चकबन्दी कार्य से क्या आशय है?
    (अ) भूमि सुधार
    (ब) सामाजिक सुधार
    (स) ग्राम सुधार
    (द) नगर सुधार।

4.8 सांराश

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ गये होंगे कि प्राचीन काल में भूमि पर अधिकार ग्राम समुदाय का था। वह परिवर्तित होता रहा और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भूमि राजस्व प्रणाली को दृढ़ आधार पर रखने के लिए सन् 1793में लार्ड कार्नवालिस के समय में-(1) रैयतवाडी, (2) महालवारी और (3) जमींदारी के रुप में तीन वर्गों में विभक्त किया जो व्यवस्था स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तक लाग रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद "**जोतने वाले को भूमि'** के नारे को वास्तविकता में बदलने के लिए भूमि सुधार किए गयें। सबसे पहले उत्तर प्रदेश लिए कानून बनाया गया। भारत में भूमि सुधारों की आवश्यकता निम्न कारणों से महसूस की गई थी-स्वतंत्रता के समय देश में कृषि पदार्थो की भारी कमी थी। अतः कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम आवश्यक है।,सामाजिक न्याय और समानता के विकास हेतु सुधार कार्यक्रम द्वारा एकत्रित भूमि को भूमिहीनों में वितरित करना। , औद्योगिक क्षेत्र में अनेक उद्योग के लिए कच्चा माल भूमि से ही प्राप्त होता है। भूमि सुधारों के अंतर्गत निम्नलिखित कार्यक्रमों को लागू किया गया-मध्यस्थों वर्गों का उन्मूलन ,जोतो की उच्चतम सीमा का निर्धारण ,काश्तकारी सुधार -लगान का नियमन भू-धारण की सुरक्षा ,काश्तकारों का पुनर्ग्रहण , भूमिहीन कामकारों को भूमि प्रदान करना और कृषि का पुनर्गठन – चकबंदी भूमि के प्रबंधन में सुधार , सहकारी कृषि। भूमि सुधार कार्यक्रमों का सकारात्मक पक्ष जिसे हम इन कार्यक्रमों का प्रभाव भी कह सकते है वे है कि अब खेती करने वाले किसान और सरकार में सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। भूमि की मालगुजारी सीधे सरकार के पास जमा होने लगी , किसानों को भूमि पर स्थाई अधिकार प्राप्त हो गये ।परन्तु साथ भूमि सुधार कानून जिस ढंग से क्रियान्वित किए गए है उनसे सामान्यत उन कानूनों की भावनाओं और अभिप्राय को हताश होना पड़ा है। जमीदारों द्वारा काश्तकारों को बेदखल कर खुदकाश्त के लिए भूमि का पुर्नग्रहण किया गया। उच्चतम जोत की सीमा से बचाव हेतु जोतो का अनियमित एवं अवैधानिक हस्तान्तरण हुआ जमीदार, राजनेता एवं प्रशासनिक अधिकारी का गठजोड़ बना जो पूर्व में ही तथाकधित रूप में एक ही थे, इन्होनें कानून की अवहेलना के साथ ही साथ भूमि सम्बन्धी रिकार्डो में भी परिवर्तन किया। भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रभावी सफलता के लिए किसानों को भूमि में स्थाई विकास हेतु साख एवं वित्त की सरलता से उपलब्धता सुनिचित किया जाना चाहिए। खेतिहर मजदूर व बटाई वालों की भी भूमि सुधार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में शामिल किया जाना चाहिए। भूमि सुधार कार्यक्रमों का समयाबद्ध रूप में क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। भूमि सुधार कार्यक्रमों का प्रचार-प्रसार के साथ इसकी प्रक्रिया को भी सरल बनाया जाना चाहिए।

4.9 शब्दावली

- **काश्तकार** - जो लोग किसी दूसरे की भूमि पर ठेके पर कृषि करता है।
- **पारम्परिक खेती** -पुरानी विधियों पर आधारित कृषि करता है।
- **कृषि का व्यवसायिकरण** - लाभ प्राप्ती के उद्देश्यों से कृषि करना।

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारत में तीन प्रकार की प्रमुख भूमि व्यवस्थाएँ थी-
(1) रैयतवाडी, (2) महालवारी और (3) जमींदारी।
2. प्राचीन भारत में भूमि पर अधिकार ग्राम समुदाय का था।

3. अकबर के शासन काल में राजा टोडरमल ने भूमि की क्रमबद्ध विस्तृत पैमाइश की थी।
4. सन् 1765 में शाह आलम ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को दिवानी प्रदान की थी।
5. रैयतवाडी भूमि व्यवस्था में कृषि क्षेत्र का 40 प्रतिशत प्रतिशत भाग था।
6. सबसे पहले उत्तर प्रदेश लिए कानून बनाया गया।
7. भारत में भूमि सुधारों की आवश्यकता निम्न कारणों से महसूस की गई - कृषि उत्पादन बढ़ाने, सामाजिक न्याय और समानता के विकास हेतु और भूमिहीनों में भूमि वितरित करना।
8. कृषि क्षेत्र में विद्यमान संस्थागत विसंगतियों को दूर करना, आर्थिक असमानता को समाप्त करना एवं कृषि उत्पादन में वृद्धि कर आत्म निर्भरता प्राप्त करना और गरीबी उन्मूलन एंव लोगो में सामान्य मान्यताएँ प्रदान करना।

अभ्यास प्रश्न - 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. काश्तकार 2. वृद्धि 3. असमान 4. भूदान

बहुविकल्पी प्रश्न

1. (द) भूमि के स्वामित्व सम्बन्धी कानूनों में सुधार करना।
2. (स) नौंवी 3.(स) चकबन्दी
4. (स) दोनों 5.(अ) भूमि सुधार

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मुजम्मिल, प्रो0 मोहम्मद, कृषि अर्थशास्त्र (2001) उ0 प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ उ0प्र०।
- गुप्ता पी0के0, कृषि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रालि0, नई दिल्ली।
- सिंह, डॉ0 राजपाल, कृषि अर्थशास्त्र (2004) वी0 के प्रकाशन, बडौत, बागपत।
- पाण्डे, प्रो0 श्रीधर, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास,मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली।
- सोनी आर0 एन0; "कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय ' ; 2007; विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर।
- माथुर बी0 एल0; (2011) "कृषि अर्थशास्त्र'; अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- गुप्त डॉ0 शिव भूषण'; (2010) " कृषि अर्थशास्त्र "; साहित्य भवन आगरा।।

4.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

- राधा कमल मुखर्जीः इकानॉमिक प्रॉबलम्स आफ इड़िया।
- Taylor, H.C., (1949), 'Outlines of Agricultural Economic's, MacMillan, New Delhi.
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), 'Agriculture and Economic Development'; Select books, New Delhi.
- Sadhu, A.N. and Amarjit Singh(2009), Fundamentals Agricultural Economics', Himalaya Publishing House, New Delhi.

- Desai, R.G. (2009), 'Agricultural Economics', Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M.L. et al. (1991): 'Indian Agricultural Development since Independence', Oxford& IBH, New Delhi.
- Various Five Year Plan in Planning Commission of India.

4.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भूमि सुधार का क्या आशय है? अब तक भूमि सुधार कार्यक्रमों को कहाँ तक सफलता मिली।
2. भूमि सुधार कार्यक्रमों की उपलब्धियों एवं उनके ग्रामीण निर्धनों पर पड़ने वाले प्रभावों का विवरण दीजिए।
3. भूमि सुधार कार्यक्रमों का आलोनात्मक वर्णन कीजिए।
4. भारत वर्ष में भूमि सुधार के प्रमुख उद्धेश्यों का वर्णन कीजिए। अब तक विभिन्न भूमि सुधारों से कहाँ तक इन उद्देश्यों की पूर्ति हुई है?
5. भूमि सुधार का देश के आर्थिक विकास से क्या सम्बन्ध है। भूमि सुधार कार्यक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व की विवेचना कीजिए।
6. भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रभावी विवेचना कीजिए। इनकी सफलता के लिए उपाय सुझाइए।

इकाई 5- हरित क्रान्ति और तकनीकी परिवर्तन
(Green Revolution and Technical Change)

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 हरित क्रान्ति का अर्थ
5.4 हरित क्रान्ति की उपलब्धियाँ
5.5 हरित क्रान्ति के लाभ
5.6 हरित क्रान्ति की कमियाँ अथवा समस्यायें
5.7 हरित क्रान्ति की सफलता के लिए सुझाव
5.8 कृषि में तकनीकि परिवर्तन का अर्थ
5.8 1 कृषि तकनीकि के प्रकार
5.9 अभ्यास प्रश्न
5.10 सारांश
5.11 शब्दावली
5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.14 उपयोगी/सहायक ग्रंथ
5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

हम जानते हैं कि किसी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सबसे पहले इसकी कृषि का विकास आवश्यक है। एक प्रगतिशील कृषि ही एक देश को आर्थिक विकास के पथ पर चला सकती है। भारत में कृषि क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाने के लिए पहला कार्यक्रम (Intensive Agriculture District Programme) सात जिलों के लिए पायलट परियोजना के रुप में आरम्भ किया गया था। इस प्रयोग में मिली सफलता से उत्साहित होकर सरकार ने अक्टूबर 1965 में इस नीति को गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (Intensive Agriculture Area Programme) के अन्तर्गत चुने गए 117 जिलों में लागू किया। इन कार्यक्रमों के फलस्वरुप भारत में हरित क्रान्ति की नींव रखी जा सकी।

1960 के दशक में भारत में कृषि उत्पादन में, एक आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। यह वृद्धि मुख्य रुप से इन फसलों की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता की वृद्धि के कारण हुई थी। उत्पादकता में यह वृद्धि इतनी अधिक थी कि कई अर्थशास्त्रियों ने इसे हरित क्रान्ति का नाम दे दिया। 1965 में मैक्सिको में गेहूँ की प्रति हेक्टेयर पैदावार 5 से 6 हजार किलो ग्राम हो गयी थी, इस प्रकार ताईवान में प्रति हेक्टेयर उपज 5000 किलोग्राम तक पहुँच गई थी। यह उन देशों में कृषि में नई तकनीकी के प्रयोग के कारण हुआ था।

इस इकाई के अध्ययन से हरित क्रान्ति का अर्थ अथवा भारतीय कृषि में नवीन रणनीति को समझने में सहायता मिलेगी हम इस विषय से अवगत हो सकेंगे कि भारतीय कृषि में होने वाली हरित क्रान्ति का मुख्य कारण कृषि तकनीकी में परिवर्तन है। हरित क्रान्ति की उपलब्धियॉ, कमियाँ अथवा समस्याएं व इसकी सफलता के लिए सुझाव इसकी भी विस्तार से व्याख्या की गई है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ✓ यह जान सकेंगे कि हरित क्रान्ति का क्या अर्थ है।
- ✓ यह समझ सकेंगें कि हरित क्रान्ति की मुख्य उपलब्धियाँ क्या है।
- ✓ यह भी ज्ञात हो सकेगा कि हरित क्रान्ति के लाभ व कमियां अथवा समस्यायें क्या हैं।
- ✓ हरित क्रान्ति की सफलता के लिए सुझाव देने में सक्षम हो पायेंगे।
- ✓ यह समझ सकेंगें कि हरित क्रान्ति को बढ़ावा देने में तकनीकी परिवर्तन किस प्रकार महत्वपूर्ण है।

5.3 हरित क्रान्ति का अर्थ

हरित क्रान्ति, हरित एवं क्रान्ति शब्द के मिलने से बना है। क्रान्ति से तात्पर्य किसी घटना में तेजी से परिवर्तन होने तथा उन परिवर्तनों का प्रभाव आने वाले लम्बे समय तक रहने से है। हरित शब्द कृषि फसलों का सूचक है। अतः हरित क्रान्ति से तात्पर्य कृषि उत्पादन में अल्पकाल में विशेष गति से वृद्धि का होना तथा उत्पादन की वह वृद्धि दर आने वाले समय तक बनाये रखने से है।

भारतीय कृषि के संदर्भ में हरित क्रान्ति से आशय छठे दशक के मध्य कृषि उत्पादन में हुई उस भारी वृद्धि से है जो थोड़े से समय में उन्नतशील बीजो, रसायनिक खादों एवं नवीन तकनीकों के फलस्वरुप हुई। अन्य शब्दों में, हरित क्रान्ति भारतीय कृषि में लागू की गई उस विकास विधि का परिणाम है जो 1960 के दशक में पारम्परिक कृषि को आधुनिक तकनीकी द्वारा प्रतिस्थापित किये जाने के रुप में सामने आई। कृषि में तकनीकी ज्ञान का आविष्कार,

उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग, सिंचाई सुविधाओं का विकास, कृषि क्षेत्र में उन्नत औजारों एवं मशीनों का अधिकाधिक उपयोग, कृषि में विद्युतीकरण, कृषि क्षेत्र में ऋण का विस्तार, कृषि शिक्षा में विस्तार कार्यक्रमों के सम्मिलित प्रयासों के फलस्रुपय वर्ष 1966-67 के उपरान्त कृषि उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हुई। उत्पादन वृद्धि की इस असाधरण गति दर को कषि वैज्ञानिकों ने हरित क्रान्ति का नाम दे दिया। हरित क्रान्ति का जन्मदाता नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो0 नोरमन बॉरलोग है। भारत में हरित क्रान्ति को बढ़ावा देने का श्रेय मुख्यतः एस. स्वामीनायन को दिया जाता है। हरित क्रान्ति की संबा इसलिए भी दी गई कि क्योंकि इसके फलस्वरुप भारतीय कृषि निर्वाह स्तर से ऊपर उठकर आधिक्य स्तर पर आ चुकी है। इस प्रकार हरित क्रान्ति में मुख्य रुप से दो बाते आती हैं:

1. एक तो उत्पादन तकनीकि में सुधार
2. दूसरे कृषि उत्पादन में वृद्धि

हरित क्रान्ति को नवीन कृषि रणनीति के नाम से भी जाना जाता है। नई कृषि युक्ति (New Agricultural Strategy) को 1966 ई0 में एक पैकेज के रुप में शुरु किया गया और इसे अधिक उपज देने वाले किस्मों का कार्यक्रम (High Yielding Variety Programme) की संबा दी गई।

5.4 हरित क्रान्ति की उपलब्धियाँ

तृतीय योजना के प्रारम्भ से लेकर अब तक के वर्ष भारतीय कृषि के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं। हरित क्रान्ति सरकार द्वारा अपनाए गए कई उपयों का परिणाम थी। विभिन्न उपायों को सम्मिलित या पैकेज के रुप में अपनाने से ही कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई। हरित क्रान्ति की उपलब्धियों को कृषि में तकनीकी परिवर्तन से संस्थागत एवं उत्पादन में हुए सुधार के रुप में देखा जा सकता है।

1. **उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग में वृद्धि** - सबसे पहली किस्म 'नोरिन 10' थी जिसे डा0 एस0सी0 सैलमन 1948 में जापान से अमरीका लाए। नार्मन ई. बार लॉग, डा0 एम0 एस0 स्वामी नरथन और श्री सी0 सुब्रमण्यम (तत्कालीन कृषि मंत्री भारत सरकार) के प्रयासों के फलस्वरुप गेहूँ की लारोंही (लारोजों), सोनरा 63 व सोनरा 64 जैसी मैक्सीकन प्रजातियाँ शुरु में भारत में सीधे प्रयोग में लाई गई। बाद में मैक्सिको की प्रजातियों को भारतीय किस्मों के साथ मिलकर संकलन पर पर्याप्त ध्यान दिया गया। मैक्सिन प्रजातियसों में कुछ खास तरह की कमियाँ थीं जिनमें गेहूँ के दानों का रंग लाल होना प्रमुख थी। इन कमियों को दूर करने के लिए 'शरबती सोनोराः, 'पूसा लमीः, कल्याज सोना' और 'सोनालिका' जैसी नई किस्में विकसित की गईं। लेकिन जिन गेहूँ की किस्मों ने हरित क्रान्ति में योगदान दिया वे हैं- संगम (CPAN 3004) मोती (HD 1949), जनक (HD 1982), अर्जुन (HD 2009), कल्यान सोना, सोनालिका एवं HD 2329। अधिक उपज देने वाली किस्मों के बीजों का उपयोग बढ़ा है और नई नई किस्मों की खोज की गई है। चावल में छोटा बासमती, नयी जय, दमा, रत्ना आदि का प्रयाग किया गया। अभी तक अधिक उपज देने वाला कार्यक्रम धान बाजरा, मक्का व ज्वार में ही लागू किया गया है। लेकिन गेहूँ में सबसे अधिक सफलता मिली है। 1966-67 वर्ष में 19 लाख हेक्टेयर भूमि में उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग किया गया था। नई विकास विधि के अन्तर्गत वर्ष 2009-2010 में 257 लाख कुन्तल प्रमाणित बीज वितरित किये गए। भारत में 88 प्रतिशत गेहूं की फसल में उन्नत बीजो (HYV Seeds) का प्रयोग किया जाता है।
2. **रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में तेजी से वृद्धि** - भारत में हरित क्रान्ति के परिणामस्वरुप रासायनिक उर्वरकों के उपभोग की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई है। 1960-61 में रासायनिक खाद का उपभोग केवल 39 हजार टन था। वह 2009-10 मे बढ़ कर 264.86 लाख टन हो गया। रासायनिक खादों का उपभोग बढ़ाने के लिए सरकार ने कई उपय किए हैं, जैसे छोटे व सीमान्त किसानों को रासायनिक खाद खरीदने के लिए साख

उपलब्ध कराना, किसानों को इसके उचित उपयोगो के सम्बन्ध में मुफ्त सलाह व प्रशिक्षण दिया जाता है। सरकार ने 2009–2010 में रासायनिक खाद पर 57.056 करोड रुपयों की आर्थिक सहायता दी है।

3. **सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि** - हरित क्रान्ति को सुदृढ़ बानो में सिंचाई की सुविधाओं का योगदान भी कुछ कम नहीं है। ऊँची उत्पादक्ता वाले बीजों को रासायनिक खादों की आवश्यक्ता तो होती है, परन्तु इसके साथ ही रासायनिक खादों के प्रयोग में पानी की आवश्यक्ता भी बढ़ जाती है और सिंचाई मानसून की अनिश्चितताओं से बचाकर खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराती है। भारत में सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि निरन्तर होती गई है। भारत में 1965–1966 के पश्चात सिंचाई की लघु परियोजनाओं (Minor Irrigation Projects) ने हरित क्रान्ति को लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कूपों तथा नलकूपों द्वारा उपलब्ध करवाई गई सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि इतनी अधिक थी कि अर्थशास्त्रियों ने हरित क्रान्ति को Child of the pump set technology का नाम दे दिया। मार्च 2010 तक भारत की सिंचाई क्षमता 1082 लाख हेक्टेयर हो गई जो कि 1951 में 223 लाख हेक्टेयर थी।

4. **पौध संरक्षण** – भारत में लगभग 10 प्रतिशत फसल कीटाणुओं और रोगों द्वारा नष्ट हो जाती है। इनसे फसलों के बचाव करने की क्रिया को पौध संरक्षण कहते हैं। इसके अन्तर्गत खरपतवार एवं कीटों को नाश करने के लिए दवा छिड़कने का कार्य किया जाता है। वर्तमान में एकीकृत कीटनाशक नियंत्रण रणनीति को अपनाया गया है।

5. **बहुफसली कार्यक्रम** – बहुफसली कार्यक्रम का उद्देश्य एक ही भूमि पर वर्ष में एक से अधिक फसल उगाकर उत्पादन बढ़ाना है। यह कार्यक्रम 1967-68 में लागू किया गया है। इस कार्यक्रम से भूमिका अनुकूलतम प्रयोग हो सकता है। वर्तमान में भारत में यह कार्यक्रम कुल सिंचित भूमि के 65% भाग पर लागू है।
6. **आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग** – वर्तमान कृषि में हरित क्रान्ति में आधुनिक कृषि उपकरणों जैसे ट्रैक्टर, थ्रेशर, हारवेस्टर, डीजल व बिजली के पम्पसेटों आदि ने काफी योगदान दिया है। 1966 में भारत में 21 हजार ट्रैक्टर थे लेकिन आज इनकी संख्या 6 लाख से अधिक है।
7. **कृषि सेवा केन्द्रों की स्थापना** – कृषकों में व्यवसायिक साहस की क्षमता को विकसित करने के उद्देश्य से देश में कृषि सेवा केन्द्र स्थापित करने की योजना लागू की गई है। अब तक देश में कुल 146 कृषि सेवा केन्द्र स्थापित किए जा चुके हैं।
8. **कृषि उद्योग निगम** - सरकारी नीति के अन्तर्गत 17 राज्यों में कृषि उद्योग निगमों की स्थापना की गई है। इन निगमों का कार्य कृषि उपकरण व मशीनरी की पूर्ति तथा उपज के प्रसंस्करण एवं भण्डारण को प्रोत्साहन देना है।
9. **मृदा परीक्षण** - मृदा परीक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों की मिट्टी का परीक्षण प्रयोगशालाओं में किया जाता है। इसका उद्देश्य भूमि की उर्वराशक्ति का पता लगाकर कृषकों को उसी अनुसार रासायनिक खादों व उत्तम बीजों के प्रयोग की सलाह किसानों को दी जा सके। वर्तमान समय में 7 लाख नमूनों का परीक्षण इन सरकारी प्रयोगशालाओं में किया जाता है। चलती फिरती प्रयोगाशलाएं भी स्थापित की गई हैं, जो गांव गांव जाकर मौके पर मिट्टी का परीक्षण कर किसानों को सलाह देती हैं।
10. **कृषि विकास के लिए विभिन्न निगमों की स्थापना** – हरित क्रान्ति की प्रगति मुख्यताः अधिक उपज देने वाली किस्मों व उत्तम सुधरे हुए बीजों पर निर्भर करती है। इसके लिए देश में 400 कृषि फार्म स्थापित किये गए हैं। 1963 में राष्ट्रीय बीज निगम की स्थापना की गई थी। 1963 में ही राष्ट्रीय सहकारिता विपणन संघ (नेफेड) बनाया गया जो प्रबन्ध, वितरण एवं कृषि से सम्बन्धित चुनिंदा वस्तुओं के आयात निर्यात का कार्य

करता है। कृषि के लिए ही खाद्य निगम, उर्वरक साख गारण्टी निगम, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम आदि भी स्थापित किये गए हैं।

11. कृषकों को उचित मूल्य की गारण्टी – कृषि विकास नीति के अन्तर्गत सरकार द्वारा कृषकों को उनकी फसल का उचित मूल्य देने की गारण्टी दी जाती है। इस कार्य के लिए कृषि लागत एवं मूल्य आयोग हैं जिसका कार्य फसल की बुवाई के समय उन मूल्यों को सिफारिश करना है जिस पर फसल के आने पर सरकार क्रय करने लिए वचनबद्ध है। 1965 में कृषि मूल्य आयोग की स्थापना कर दी।

12. कमजोर किसान के लिए विशिष्ट कार्यक्रम – कमजोर, छोटे व सीमान्त कृषकों एवं खेतिहर कृषकों की सहायता के लिए तीन योजनाएं लागू की:

(क) लघु कृषि विकास एजेन्सी

(ख) सीमान्त कृषक एवं कृषि श्रमिक विकास एजेन्सी

(ग) एकीकृत शुष्क भूमि कृषि विकास और अब समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम लागू किया है।

5.5 हरित क्रान्ति के लाभ

हरित क्रान्ति के मुख्य लाभ निम्न प्रकार हैं

1. खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि – हरित क्रान्ति या नई कृषि राजनीति का पहला लाभ हुआ है कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है, विशेष रुप से गेहूँ, बाजरा, चावल, मक्का, व ज्वार दालों के उत्पादन में आशतीत वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरुप भारत खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर सा हो गया है। प्रति हेक्टेयर उत्पादन में आशतीत वृद्धि हुई है। देश में सभी खाद्यान्नों का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 1950-51 में 522 कि0ग्राम प्रति हेक्टेयर था जो बढ़कर 2011-2012 में 1996 किग्रा प्रति हेक्टेयर हो गया।

2. परम्परागत स्वरुप में परिवर्तन - हरित क्रान्ति द्वारा किसानों को परम्परागत खेती की सीमाएँ पता चल गई हैं। आज किसान आधुनिक तकनीकों को अपनाने के लिए तैयार है। आज खेती का व्यवसायिकरण हो चुका है। लैजिस्की के अनुसार, ***"जहाँ कहीं भी नई तकनीकें उपलब्ध हैं कोई किसान उनके महत्व को अस्वीकार नहीं करता। बेहतर कृषि विधियों तथा बेहतर जीवन स्तर की इच्छा न केवल नई उत्पादन तकनीकों का प्रयोग करने वाले एक छोटे से धनी वर्ग तक सीमित है बल्कि उन लाखों किसानों में भी फैल गई जिन्होंने अभी तक इन्हें अपनाया है और जिनके लिए बेहतर जीवन स्तर अभी तक सपना है।*** किसानों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। उत्पादकता में बढ़ोत्तरी से कृषि के स्तर में बदलाव आया और अब वह जीवकोपार्जन करने के निम्न स्तर से ऊपर उठकर आय बढ़ाने का साधन बन गई।

3. कृषि बचतों में वृद्धि - खाद्यान्न में उत्पादन में वृद्धि का एक परिणाम यह हुआ कि मण्डी में बिकने वाले खाद्यान्न की मात्रा में वृद्धि हा गइ। जिससे कृषक के पास बचतों की मात्रा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है जिसको देश के विकास के लिए काम में लाया जा रहा है। यह वृद्धि, विशेषकर औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए लाभकारी रही।

4. विश्वास - हरित क्रान्ति का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि कृषक, सरकार व जनता सभी में यह विश्वास जाग्रत हो गया है कि भारत में कृषि पदार्थों के क्षेत्र में केवल आत्मनिर्भर ही नहीं हो सकता है बल्कि आवश्यक्ता पड़ने पर निर्यात भी कर सकता है।

5. खाद्यानों के आयात में कमी – प्रो0 एस0 एल0 दान्तवाला के मत में 'हरित क्रान्ति ने सॉस लेने योग्य राहत का समय दिया है। इसके खाद्यान्नों की कमी की चिन्ता से छुटकारा मिलेगा और अर्थशास्त्रियों व नियोजकों का ध्यान पुनः भारतीय योजनाओं की ओर लगेगा। वास्तव में हरित क्रान्ति होने से खाद्यानों का आयात 1978 से 1980 तक पूर्णतः बन्द कर दिया गया था। 2009-10 में 85, 211 करोड़ रुपयो का कृषि पदार्थों का

निर्यात किया गया। कृषि पदार्थों का निर्यात कुल निर्यात का 9.9 प्रतिशत था। इस प्रकार विदेशी मुद्रा के खर्च में बहुत बचत हो गई है।

6 .कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र के सम्बन्धों में मजबूती - नवीन कृषि तकनीकी तथा कृषि के आधुनिकीकरण ने कृषि तथा उद्योग के परस्पर सम्बन्ध का और भी अधिक सुदृढ़ बना दिया है। पारम्परिक रुप में यद्यपि कृषि और उद्योग का अग्रगामी सम्बन्ध (forward linkage) पहले से ही मजबूत था क्योंकि कृषि क्षेत्र द्वारा उद्योगों के लिए आयात उपलब्ध कराये जाते हैं। जैसे चीनी मिल के लिए गन्ना, कपड़ा मिल के लिए कपास। कृषि के आधुनिकीकरण के फलस्वरुप अब कृषि में उद्योग निर्मित आयातों जैसे कृषि यंत्र व रासायनिक उर्वरक की मांग में भारी वृद्धि हुई है।

7 .कृषि एवं गैर कृषि क्षेत्रों में रोजगार के नये अवसर – कृषि की नई तकनीकि अथवा हरित क्रान्ति के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरुप फसलों की कटाई के लिए श्रम की मांग बढ़ गई। एक वर्ष में, एक की बजाए दो फसलों के उगाने के कारण भी श्रम की मांग में काफी वृद्धि हुई है। उदाहरणतया, पंजाब व हरियाणा में अक्टबर तथा नवम्बर धान को काटने तथा इसके पश्चात गेह के बोने के कारण श्रम की मांग बढ़ गई है। कृषि में उत्पादन में वृद्धि के कारण, कृषि पर आधारित उद्योग का विकास हुआ है। इन उद्योगों में भी श्रम का प्रयोग बढ़ गया है। सेवा क्षेत्र में भी हरित क्रान्ति के कारण रोजगार बढ़ा है। अधिक उत्पादों तथा अधिक कृषि साधनों के परिवहन तथा मण्डी सम्बन्धी सेवाओं के परिवाहन तथा मण्डी सम्बन्धी सेवाओं की आवश्यक्ता ने भी रोजगार में वृद्धि की है।

8. ग्रामीण विकास – हरित क्रान्ति के फलस्वरुप सार्वजनिक एवं निजी निर्माण कार्यों को प्रोत्साहन मिला है। ग्रामीण क्षेत्र में बैंकों की गतिविधिया बढ़ गई हैं।

5.6 हरित क्रान्ति की कमियाँ अथवा समस्यायें

हमें ज्ञात हो चुका है कि हरित क्रान्ति के परिणामस्वरुप कुछ फसलों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई है। देश को आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से लाभ हुआ है। नीचे हम इनमें से कुछ समस्याओं का वर्णन कर रहे हैं:

1. कृषि विकास में असन्तुलन – हरित क्रान्ति का क्षेत्र कुछ ही राज्यों तक सीमित है। विशेष रुप से उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र व तमिलनाडु में कृषि के विकास में एक आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। दूसरी ओर राजस्थान, हिमांचल प्रदेश, बिहार तथा असम जैसे राज्य कृषि में कोई विशेष प्रगति न ला सके। यहाँ हम यह भी बताना चाहते हैं कि हरित क्रान्ति ने न केवल देश के भिन्न-भिन्न भागों में, कृषि के विकास की दर में असमानता पैदा की, अपितु देश के एक ही क्षेत्र में कृषि के विकास में असामनता पैदा कर दी। जेसे कि पंजाब के रुपनगर तथा होशियारपुर के जिलों में, या हरियाणा के नारनौल जिले में, सिंचाई की पर्याप्त सुविधाओं के उपलब्ध न होने के कारण, कृषि में प्रगति न हुई जबकि इन राज्यों के बाकी हिस्सों में कृषि के विकास की गति बहुत बढ़ गई।

2. कुछ ही फसलों तक सीमित – अनाज के सम्बन्ध में हरित क्रान्ति गेहूं की फसल के साथ ही प्रमुख रुप से जुड़ी रही है। नए बीज सफल नहीं हुए। यह मानना पड़ेगा कि दालों, व्यापारिक फसलों जैसे कपास, तिलहन, पटसन आदि के सम्बन्ध में अधिक उपज वाले बीज तैयार करने के प्रयास बहुत सफल नही हो सके हैं। हम यह कहना चाहेंगे कि भारत में वे उपखण्ड जहॉ सिंचाई की सविधाएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थीं, उन क्षेत्रों के हरित क्रान्ति गेहूँ और चावल का उत्पादन बढ़ाने में सहायक हुई।

3. आय के वितरण में भारी असामनता – हरित क्रान्ति के परिणामस्वरुप धनी कृषक वर्ग पहले की अपेक्षा अधिक अमीर हो गए और गरीब किसानों की आय के स्तर में विशेष वृद्धि नहीं हो पाई और दूसरे किसानों की तुलना में गरीब होते गए। डा0 वी0 के0 आर0 वी0 राव के अनुसार, ***"यह बात सर्वविदित है कि तथा***

कथित हरित क्रान्ति जिसने देश में खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने में सहायता दी है, के साथ ग्रामीण आय में असमानता बढ़ी है, बहुत से छोटे किसानों को अपनी काश्तकारी अधिकार छोड़ने पड़े हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक तनाव बढ़े हैं।' कृषि की नई टैक्नोलोजी के अपनाए जाने के कारण, ग्रामीण समाज दो भागों में बंट गया। प्रत्येक गांव में, इन दोनों वर्गों की आर्थिक स्थिति में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है।

4. पूंजीवादी खेती को प्रोत्साहन - हरित क्रान्ति, बड़ी मशीनों, उर्वरक तथा सिंचाई सुविधाओं में एक भारी निवेश पर आधारित है। बड़े किसानों ने ही कृषि की नई तकनीकी का लाभ उठाया। इन सुविधाओं का लाभ छोटे किसानों कम पूंजी होने के कारण नहीं उठा पाये। All India Rural Credit Review Committee (1969) के अनुसार, 705 एकड़ तथा इससे अधिक भूमि वाले किसानों की संख्या कुल किसानों की संख्या की 38 प्रतिशत थी, जबकि इसके पास खेती अधीन भूमि का 70 प्रतिशत भाग था, इन्हीं किसानों ने बड़ी मशीनों के प्रयोग, कुछ श्रमिकों को काम से निकाल दिया तथा बचे हुए श्रमिकों को उचित वेतन न दिये।

5. बड़े खेतों पर रोजगार के अवसरों में कमी - जैसा हम जानते हैं कि कृषि की नई तकनीकि का प्रयोग करने के कारण मशीनों का अधिक प्रयोग पड़ा, जिससे कृषि उत्पादकता तो बढ़ी। हरित क्रान्ति में कृषि मशीनों के प्रयोग को बढ़ावा दिय जैसे फसलों को बोने तथा कटाई के लिए ट्रैक्टर तथा थ्रेशर का प्रयोग बढ़ा, जिससे खेतों पर काम कर रहे श्रमिक बेरोजगार हो गये।

6 .भूमि व मानव स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव - यह हम जानते हैं कि हरित क्रान्ति के कारण रसायनिक उर्वरकों तथा फसलों को कीट पतंगों से बचाने के लिए कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग अधिक बढ़ गया था। रासायनिक उर्वरकों के अधिक प्रयोग के कारण, भूमि की उपजाऊ शक्ति कम होती जा रही है, कीटनाशक दवाई का लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। गेहूँ और चावल की खेती के लिए भूमिगत जल, का प्रयोग (ट्यूबवैल द्वारा) अत्याधिक बढ़ गया है, जिसके कारण जलस्तर घट गया है और पर्यावरण को क्षति पहुंचने लगी है।

7. हरित क्रान्ति ने भूमि सुधार कार्यक्रमों की आवश्क्ता की अवहेलना की – देश में भूमि सुधार कार्यक्रम सफल नहीं रहे हैं और लाखों कृषकों को आज भी भू-धारण की निश्चितता नहीं प्रदान की जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव U. Thant ने कहा था कि हरित क्रान्ति एका औषधि कोष होने के बजाय बीमारियों का एक स्त्रोत बन सकती है। उन्होनें यह भी कहा था कि यदि विकासशील देश शीघ्र ही भूमि सुधारों को लागू नहीं करते तो हरित क्रान्ति के लाभ, मुख्य रुप से उन किसानों को होंगे जो कि वाणिज्यक स्तर पर खेती करते हैं, न कि छोटे किसानों को और वाणिज्यक स्तर पर खेती करने वाले किसानों में, बड़े किसान, दूसरों की तुलना में अधिक लाभ उठायेंगें।

8 .हरित क्रान्ति के लिए आवश्यक सुविधाओं की कमी – सिंचाई के साधन, कृषि साख, आर्थिक जोत तथा सस्ते कृषि आगतों का अभी भी देश में अभाव है। छोटे किसान इन सभी साधनों के अभाव में हरित क्रान्ति के लाभों से वंचित रह गये हैं। जिससेकृषि विकास में वांछित सफलता नहीं प्राप्त हो पा रही है। 8. उत्पादन लागत में वृद्धि - नया तकनीकि ज्ञान अर्थात् उन्नत बीज, उर्वरक,कीटनाशक दवाईयों, सिंचाई के लिए विद्युत, डीजल, तेल का उपयोग, उन्नत कृषि यंत्रों के क्रय करने आदि के अपनाने में फसलों की खेती करने पर प्रति हेक्टेयर लागत अधिक आती है। इसके लिए किसानों को पहले की अपेक्षा अधिक पूंजी की आवश्यक्ता होती है।

5.7 हरित क्रान्ति की सफलता के लिए सुझाव

हरित क्रान्ति की सफलता के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं:

1. भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रोत्साहन - हरित क्रान्ति को सफल व व्यापक बनाने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रभावी और विस्तृत रुप से लागू किया जाना चाहिए। सीमा निर्धारण से प्राप्त अतिरिक्त भमि को भमिहीन किसानों को वितरित किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त चकबन्दी को प्रभावी बनाकर जोतों के विभाजन पर रोक लगाए जाने की आवश्यक्ता है। जिससे कृषि की नई तकनीकी प्रभावी रुप से लागू हो पाए।

2. कृषि वित्त की सुविधाओं का विस्तार – हरित क्रान्ति का लाभ छोटे किसान भी उठा पाएं इसके लिए आवश्यक्ता है कि वित्तीय संस्थाएं प्रशासनिक व अन्य तरीकों से इन किसानों को ऋण आसान किश्तों में उपलब्ध करायें। कृषि की नई तकनीकी को अपनाने के लिए वित्तीय संस्थाओं को किसानों को प्रोत्साहन देना होगा।

3. सिंचाई सुविधाओं का विस्तार – कृषि के विकास के लिए विशेष तौर पर शुष्क व उपशुष्क उपखण्डों में कृषि की नई तकनीकी का लाभ उठाने के लिए सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया जाना आवश्यक है। इसके लिए लधु सिंचाई परियोजनाओं के विस्तार वर्षा के जल को इकट्ठा करके (Rain Water harvesting) खेतों की सिंचाई छिड़काव प्रणाली, (Sprinter System) द्वारा की जाए तो इससे पानी बिजली. श्रम सब में बचत होगी।

4. हरित क्रान्ति का अन्य फसलों पर फैलाव – हरित क्रान्ति के प्रभाव क्षेत्र में गेहूँ और चावल के अतिरिक्त दालों, कपास, पटसन, तिलहन, गन्ना आदि के नए बीजों का विकास करने की आवश्यकता है। यदि इन फसलों के लिए ऊँची उत्पादकता वाले बीजों का विकास किया जाए तो कृषि क्षेत्र में सम्पूर्ण क्रान्ति आ जाएगी और कृषि में असन्तुलन भी कम हो जाएगा।

5. सीमान्त व छोटे खेतों व छोटे किसानों को लाभ पहुंचाना – जैसा कि हम जानते हैं कि हरित क्रान्ति क अधिकतम लाभ बड़े किसान ही उठा पाये हैं इसलिए यह आवश्यक है कि:

(क) छोटे-छोटे किसानों को सहकारी खेती को अपनाने के लिए प्रेरित किया जाए।

(ख) भूमि सुधार कार्यक्रमों को जल्दी व प्रभावी ढंग से लागू किया जाए।

(ग) छोटे किसानों को उन्नतबीज, उर्वरक खरीदने व सिंचाई सुविधाओं के लिए सरलता से साख सुविधाएँ बैंकों द्वारा उपलब्ध करायी जाएं।

6. मूल्य नीति को प्रोत्साहनदायक बनाना - हमें ज्ञात है कि सरकार की कृषि मूल्य नीति कुछ ही फसलों तक सीमित रही है इसलिए अन्य फसलों के उत्पादन में असन्तलन देखने को मिलता है। सरकार की मूल्य नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि सभी फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन मिल पाए।

7. अन्य फसलों के लिए भी उन्नत किस्म के बीजों का विकास – हम एक बात बताना चाहेंगे कि हरति क्रान्ति के बाद मुख्यतः चावल और गेहूँ की उत्पादक्ता में बहुत वृद्धि हुई। परन्तु अन्य फसलों जैसे दाल, तिजहन, कपास और पटसन की उत्पादकता में वृद्धि नहीं हो पाई। इसका कारण यह है कि इनके लिए उन्नत किस्म के बीजों का विकास न हो पाना तथा इनकी उपज को बढ़ाने के लिए अन्य उपाय करना इसलिए आवश्यक्ता इस बात की है कि विशेष तौर पर छोटे व सीमान्त किसानों को ऐसे बीज उपलब्ध कराये जाएं। इससे न केवल किसान अपनी भूमि पर कुछ ही फसलें (गेहूँ व चावल) उत्पादित करेंगे वरन् फसलों में भी विविधता को प्रोत्साहन मिलेगा।

8.शष्क खेती को प्रोत्साहन की आवश्यक्ता - हमने पहले यह बताया है कि हरित क्रान्ति का लाभ मुख्यतः सिंचाई की सुविधा से युक्त भूमि को ही मिला है। परन्तु भारत के शुष्क उपखण्डों में फसलों की प्रति एकड़ उत्पादकता न केवल कम हैं बल्कि उसमें उतार – चढ़ाव भी है। ऐसे उपखण्डों में ऐसी फसलों को उगाए जाने की आवश्यकता है जो न केवल कम समय में तैयार हो जाए बल्कि सूखे से भी प्रभावित न हो।

9. फसलों की बीमा योजना – फसल बीमा योजना का लाभ लघु एवं सीमान्त कृषकों तक पहुंचाने के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा प्रयास किये जाने चाहिए। सरकार द्वारा व्यापक-फसल बीमा योजना अप्रैल 1985 में कृषकों को उनकी फसलों के सूखा, अति वृष्टि आदि कारणों से नष्ट होने की स्थिति में वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु प्रारम्भ की गई है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य किसानों को अनिश्चितता के समय विश्वास दिलाना है।

5.8 कृषि में तकनीकि परिवर्तन का अर्थ

उत्पादन में विभिन्न साधन जिस प्रक्रिया द्वारा आपस में मिलकर उत्पादन करते हैं उसे उत्पादन की तकनीकि कहते हैं। कृषि में आगतों (Inputs) की आवश्यक्ता होती है। उदाहरण के लिए हमें गेहूँ का उत्पादन करना है तो उसके लिए हमें भूमि (Land), बीज (Seeds), खाद (Manure), जल (Water), यंत्रो (Implement), शक्ति (Energy) की आवश्यक्ता होती है। अन्य शब्दों में **Pw=f(L, S, M, W, I, E)** इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यहाँ **Pw** (गेहूँ का उत्पादन), **L** भूमि, **S** बीज, **M** खाद, **W**(जल), **E** शक्ति का फलन है।

5.8.1 कृषि तकनीकि के प्रकार कृषि तकनीकि दो प्रकार की हो सकती है:

1. देशी तकनीकी (Indigenous technique) – इसे हम परम्परावादी या श्रम न तकनीकि भी कह सकते हैं भारत में सीमान्त व छोटे किसानों के द्वारा अभी भी इस तकनीकि का प्रयोग किया जाता है। इसकी मख्य विशेषताएं इस प्रकार है: फसल उत्पादन करने के लिए पिछली फसल के उत्पादन में से बीजों का प्रयोग किया जता है।

2. सिंचाई मानसून पर निर्भर करती है।

3. शक्ति के मुख्य साधन पशु थे।

4. यंत्रो के रुप में हल, बैल, छोटे हाथों से प्रयोग किये जाने वाले औजारों का प्रयोग होता है।

2.आधुनिक तकनीकी (Modern technique) - इस तकनीकि को पूंजी प्रधान तकनीकि भी कहा जाता है। इस तकनीकि की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:

1. उन्नत किस्मों के बीजों जो कषि वैज्ञानिक विधि द्वारा तैयार किये जाते हैं।

2. रासायनिक खादों का बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है।

3. रासायनिक खाद के प्रयोग के कारण पानी की आवश्यक्ता अधिक पड़ती है।

4. सिंचाई के लिए पानी नहरों या ट्यूबवैल से प्राप्त किया जाता है।

5. कृषि यंत्रों में आधुनिक किस्म के ट्रैक्टर, फसल काटने की मशीन (Harvestor) का प्रयोग किया जाता है।

6. प्रति हेक्टेयर उत्पादन अधिक होता है।

7. भारत में तीसरी पंचवर्षीय योजना के बाद से इस नई तकनीकि को अपनाया जा रहा है |

आधुनिक कृषि तकनीकि के अनेक साधन हैं जिनमें से प्रमुख हैं

1.सिंचाई,

2. उन्नत किस्म के बीज (High Yielding variety seeds)

3. उर्वरक (Fertilisers)

4. पौध संरक्षण

5. कृषि यंत्र एवं उपकरण

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कृषि में तकनीकि परिवर्तन से आशय है उक्त आगतों में परिवर्तन एवं सुधार भारत में कृषि तकनीकि में निम्नलिखित परिवर्तन हुए हैं।

1.सिंचाई – भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर करती है लेकिन पिछले 60 वर्षों में यह निर्भरता कम हुई है। 1950-51 में कुल सिंचित क्षेत्र 2.26 करोड़ हेक्टेयर था, लेकिन आज यह 2010-11 में 108.2 मिलियन हेक्टेयर हो गया है। यह कुल सिंचित क्षेत्रफल का 60.9 प्रतिशत है। कुँओं, ट्यूबवेल व लघु सिंचाई परियोजनाओं की इसमें मुख्य भूमिका है।

2. उर्वरक - कृषि में दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन उर्वरक हैं। पहले भारतीय कृषक गोबर की खाद का ही अधिक प्रयोग करते थे लेकिन अब रासायनिक खादों की खपत जो 1952-53 में 0.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी अब बढ़कर 144.14 किग्रा प्रति हेक्टेयर हो गई। इस प्रकार देश में रासायनिक खादों की खपत जो 1960-61 में 2.92 लाख टन थी, वह 20.10.11 में बढ़कर 281.22 लाख टन हो गई है।

3. पौध संरक्षण – कृषि आदानों में पौध संरक्षण – कृषि आदानों में पौध संरक्षण भी महत्वपूर्ण है क्योंकि फसलों का कीटाणुओं व रोगों से बचाव अतना ही आवश्यक हैं जितना कि उनकों उगाना। एक अनुमान के अनुसार भारत में कीडों-मकोड़ों व चूहों द्वारा फसल को 2000 करोड़ रुपये से लेकर 5,000 करोड़ रुपये तक की हानि होती है। अतः पौध संरक्षण के लिए कीटनाशक दवाओं को काम में लाया जाता है।

4. उन्नतशील बीज - उन्नतशील बीजों का प्रयोग करके कृषि उत्पादन को 10 से 20 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। अतः अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों के उत्पादन में वृद्धि, वितरण और उपलब्धता त्वरित फसल उत्पादन के लिए आवश्यक हैं। 1964-65 के बाद के भारतीय कृषि में अधिक उपज देने वाले बीज तैयार किये जा रहे हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (ICAR) तथा विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों ने बीजों की उत्तम श्रेणियों के विकास पर काफी अनुसंधान किया है। बीज प्रमाण का कार्य मुख्य रुप मंर राष्ट्रीय बीज निगम (National Seeds Corporations) तथा भारतीय राज्य फार्म निगम द्वारा किया जाता है। भारत में 2009-10 में लगभग 257 लाख क्विंटल प्रमाणित बीजों का वितरण किया गया। भारत में 88 प्रतिशत गेहूँ की फसल में उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग होता है।

5. कृषि यंत्र - कृषि यंत्रीकरण से अभिप्राय यह है कि कृषि की अधिकतर क्रियायें मनुष्य या पशुओं के स्थान पर यंत्रों जैसे ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, थ्रेशर आदि के द्वारा दी जाए। कृषि यंत्र समय व श्रम दोनों की बचत करते हैं। सम्पन्न किसान आधुनिक यंत्रों से खेती करते हैं और निर्धन किसान खेती के परम्परावादी तरीके अपनाते हैं।

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. गहन कृषि जिला कार्यक्रम कब प्रारम्भ हुआ?
   - अ) 1960-61
   - ब) 1965 66
   - स) 1970-71
   - द) 1975-76
2. हरित क्रान्ति का जन्मदाता किसे माना जाता है?
   - अ) प्रो0 अमर्त्य सेन
   - ब) प्रो0 नोरमेन बॉरलोग
   - स) डा0 मनमोहन सिंह
   - द) डा0 एस0 स्वामीनाथन
3. हरित क्रान्ति के कोई दो लाभ बताइये।
4. सोनारा 63 व सोनारा 64 की किस्में.....हैं।

5. सिंचाई की लघु परियोजनाओं ने हरित क्रान्ति को लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसलिए अर्थशास्त्रियों ने इसे ..... का नाम दे दिया।

5.10 सारांश

इस इकाई की पढ़ने को बाद आप जान चुके हैं कि भारत में कृषि विकास के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण कदम हरित क्रान्ति के रुप में उठाया गया था जिसके फलस्वरुप खाद्यान्न उत्पादन आश्चर्यजनक गति से बढ़ा और कृषि क्षेत्र में फैली खाद्यान्न की कमी की निराशा का अन्त हुआ। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हरित क्रान्ति से तात्पर्य कृषि उत्पादन में अल्पकाल में विशेष गति से वद्धि का होना तथा उत्पादन की वह वृद्धि दर आने वाले लम्बे समय तक बनाये रखने से है। हरित क्रान्ति की सफलता का श्रेय उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग, सिंचाई के साधनों का विस्तार, रासायनिक उर्वरकों का उत्पादन तथा उसका संतुलित मात्रा में प्रयोग, कीटनाशक दवाओं का प्रयोग व आधुनिक कृषि यन्त्रों के प्रयोग को जाता है। हरित क्रान्ति के कारण देश के सभी जोत एवं क्षेत्र के कृषकों को लाभ प्राप्त हुआ है। हरित क्रान्ति के आर्थिक, सामाजिक, संस्थागत प्रभाव पड़े हैं। हरित क्रान्ति के कारण केवल दो फसलों, अर्थात, चावल और गेहूँ की उत्पादकता बढ़ी थी। हरित क्रान्ति ने एक ओर प्रति हेक्टेयर उत्पादकता को बढाया वहीं किसानों की आय में भी वृद्धि हुई है। वहीं दूसरी ओर अमीर किसानों व कुछ राज्यों को ही हरित क्रान्ति का लाभ प्राप्त हुआ। अत्याधिक रासायनिक खादों व भूजल दोहन से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। परन्तु हरित क्रान्ति की सफलता के लिए अनेक कदम उठाये गये हैं। जिसमें भूमि सुधार कार्यक्रम, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, शुष्क खेती को प्रोत्साहन आदि सम्मिलित हैं। देश को दूसरी हरित क्रान्ति की आवश्यकता है। कृषि में तकनीकी परिवर्तनों के परिणामस्वरुप भारतीय कृषि की उत्पादकता में पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में काफी विकास हुआ है। तकनीकि परिवर्तनों के फलस्वरुप ही हरित क्रान्ति सम्भव हो सकी है।

5.11 शब्दावली

- **उन्नत किस्म के बीच (High Yielding Variety Seeds)** – वैज्ञानिक तरीके से
- तेयार बीज जो उन्नत किस्म के हों व फसलों के उत्पादन, वृद्धि में सहायक हैं।
- **पूंजीवादी खेती** – वह खेती जो कृषि आगतों पर अधिक पूंजी लगाकर अमीर किसानों द्वारा
- की जाती है।
- **Rain Water Harvesting** - वर्षा के जल को इकट्ठा करके कृषि सिंचाई के लिए प्रयोग में लाना।

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1960-61
2. प्रो०नोरमेन बॉलोग
3. अ) फसलों के उत्पादन में वृद्धि ब) पौध संरक्षण
4. गेहूँ
5. Child of pump set technology

5.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- पन्त, जे0सीए मिश्रा, जे0पी0 (2012), भारतीय आर्थिक समस्याएँ साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- मिश्रा, जे0पी0 (2011), कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- जैन, टी0 आरए त्रेहन, मुकेश त्रेहन, रंजू (2011), भारतीय आर्थिक समस्याएँ, ग्लोबल पब्लिकेशन्स, प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- सोनी, आर0 एन0 (2010), कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय, विशाल पब्लिशिंग कम्पनी जालन्धर।
- अग्रवाल एन०एल (2000), भारतीय कृषि का अर्थतन्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
- मिश्र, एस के0 पुरी, वी0के0 (2007), भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिकेशिंग हाउस , नई दिल्ली।

5.14 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Ehosh, M (1988), "Technological change and Employment Generation in Rice Based Agriculture, "Agricultural Situation in India Jan. 1988.
- Bergmann, T. (1978) Mechanisation of Indian Farming, Bombay, Popular Parkashan.
- Eicher, K and witt. L (ed.) (1964) Agriculture in Economic Development, Bombay, vora and Company (Pvt.) Ltd.
- Desai R.G. (2009), Agricultural Economic Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M.L. et al. (1991); Indian Agricultural Development Since Independence Oxford & 1BH, New Delhi.

5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि में हरित क्रान्ति से आप क्या समझते हैं? भारत के सन्दर्भ में इसके लाभ एवं हानियों की विवेचना कीजिए।

इकाई 6- भारतीय कृषि और मशीनीकरण
(Indian Agriculture and Mechanization)

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 कृषि यंत्रीकरण का अर्थ
6.3.1 भारत में कृषि यंत्रीकरण से लाभ
6.3.2 भारत में कृषि यंत्रीकरण के दोष
6.4 भारत में कृषि यंत्रीकरण की प्रगति
6.5 भारत में कृषि यंत्रीकरण की प्रासंगिकता
6.6 भारत में कृषि यन्त्रीकरण के प्रोत्साहन के लिए सरकारी उपाय
6.7 अभ्यास प्रश्न
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.12 उपयोगी/सहायक ग्रंथ
6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से कृषि में बहुत अधिक परिवर्तन हुए हैं। पहले भारतीय कृषि मानसून पर अधिक निर्भर थी। भारतीय किसानों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले कृषि औजार व उपकरण प्राचीन तथा आदिकालीन थे। वहीं पश्चिमी देशों में किसान उन्नत एवं आधुनिक फार्म मशीनरी का प्रयोग करते हैं। कृषि के यंत्रीकरण के फलस्वरुप इन देशों में कृषि क्रान्ति हुई है। पहले लकड़ी के हल व बैल से खेती होती थी, लेकिन आज कृषक ट्रैक्टरों का प्रयोग कर रहे हैं। पहले गेहूँ या धान की बालों से गेहूँ या चावल बैलों के पॉव या मनुष्य के द्वारा निकाला जाता था, लेकिन आज यह कार्य थ्रेसर द्वारा किया जाता है। यह सब कृषि में परिवर्तन ही है।

भारत में भी कृषि में नई तकनीकों के परिणाम स्वरुप हरित क्रान्ति सम्भव हो पाई है तथा भारतीय कृषि की उत्पादकता में कई गुणा वृद्धि हुई है। कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए चार तत्व अति महत्वपूर्ण हैं - उन्नत किस्म के बीज, सिंचाई, उर्वरक, कृषि यंत्रीकरण। कृषि यंत्रीकरण का प्रयोग आधुनिक कृषि व उत्पादकता बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। पश्चिमी देशों, विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत संघ में कृषि यंत्रीकरण का बहुत विस्तार किया और परिणामस्वरुप कृषि उत्पादन कई गुना बढ़ गया। उदाहरणार्थ, अमेरिका में 12 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है परन्तु कृषि उत्पादन इतना अधिक बढ़ चुका है कि यह देश अन्य देशों की कृषि वस्तुओं का निर्यात करता है। इस इकाई के अध्ययन से कृषि यंत्रीकरण (मशीनीकरण) के अर्थ को समझने में सहायता मिलेगी तथा यह भी जान पायेंगे कि भारतीय कृषि में कृषि यंत्रीकरण का प्रयोग कितना उचित व कितना अनुचित है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ✓ यह जान सकेंगे कि कृषि यंत्रीकरण का अर्थ क्या है।
- ✓ यह कि समझ सकेंगें कि कृषि यंत्रीकरण (मशीनीकरण) की आवश्यक्ता क्यों है।
- ✓ यह समझ पायेंगे कि कृषि यंत्रीकरण से क्या लाभ व हानियाँ हुई हैं।
- ✓ यह भी जान सकेंगे कि भारत में कृषि के मशीनीकरण की प्रगति किस प्रकार

6.3 कृषि यंत्रीकरण (मशीनीकरण) का अर्थ

साधारण अर्थों में कृषि के मशीनीकरण या यन्त्रीकरण का अर्थ कृषि की परम्परागत तकनीकों के स्थान पर यन्त्रों एवं कृषि उपकरणों का प्रयोग है। कृषि यन्त्र व उपकरणों से अर्थ उन यंत्रों से है जो कृषि में काम आते हैं। कृषि के यन्त्रीकरण (मशीनीकरण) से अर्थ भूमि पर जहाँ भी सम्भव हो सके यान्त्रिक शक्ति द्वारा उन क्रियाओं के सम्पन्न करने से है जो सामान्यतया बैलों, घोड़ों एवं पशुओं या मानवीय श्रम द्वारा सम्पन्न की जाती है। जैसे खेत में हल चलाने का कार्य ट्रैक्टरों द्वारा होना, बुवाई व उवरर्क डालने का काम ड्रिल (Drill) मशीन द्वारा किया जाना। इसी प्रकार फसल काटने का कार्य हार्वेस्टर व थ्रेसर से करना, सिंचाई कॅओं एवं बैलों से न करके पम्प सेटों से करना आदि ही कषि का मशीनीकरण है। दूसरे शब्दों में इसी पुराने ढंग से कृषि औजारों जैसे हलों, दरान्ती, खुरपी, फावड़ा आदि के स्थान पर आधुनिक मशीनों व उपकरणों का उपयोग करना ही कृषि यन्त्रीकरण है।

अतः कृषि यन्त्रीकरण के अन्तर्गत खेती की सभी क्रियाओं में हल चलाने से लेकर फसल काटने तथा बेचने तक का कार्य मशीनों द्वारा होता है। कृषि कार्यों में प्रायोगिक यांत्रिक शक्ति के आधार पर यंत्रीकरण दो प्रकार का होता है|

1. गतिशील यन्त्रीकरण (Mobile mechanisation) – गतिशील यन्त्रीकरण से तात्पर्य उस यंत्रीकरण से है जिसमें फार्म पर कृषि कार्य को करने में गतिशील यन्त्रों का उपयोग किया जाता है। जैसे- ट्रैक्टर एवं उसके साथ के यन्त्र हैरो, कल्टीवेटर, बीज बोने की मशीन, कटाई की मशीन आदि।

2. स्थायी यन्त्रीकरण (Stationary mechanization) – स्थायी यन्त्रीकरण से तात्पर्य उस यन्त्रीकरण से है जिसमें फार्म पर कृषि कार्यों को करने में ऐसे यंत्रों का उपयोग किया जाता है जो एक स्थान पर स्थिर रहते हुए शक्ति सम्पन्न करते हैं और उस शक्ति से विभिन्न कृषि कार्य सम्पन्न किये जाते हैं, जैसे - कुंओं से पानी निकालने के लिए मोटर एवं पम्प, कुट्टी काटने की मशीन, गन्ने पेरने का कोल्हू आदि यंत्रों का उपयोग।

6.3.1 भारत में कृषि यन्त्रीकरण से लाभ अथवा पक्ष में तर्क

कृषि यन्त्रीकरण (मशीनीकरण) कृषि तकनीक में परिवर्तन की आधारशिला है। भारत में कृषि यंत्रीकरण के पक्ष में मुख्यतः निम्न तर्क दिये जाते हैं।

1. **कृषि श्रम की कुशलता में वृद्धि** – फार्म पर यांत्रिक साधनों से कृषि करने पर श्रमिकों की कार्य कुशलता एवं क्षमता में वृद्धि होती है, जिससे प्रति श्रमिक उत्पादन में मात्रा में वृद्धि होती है।
2. **उत्पादन में वृद्धि** - जैसा कि आप जानते हैं कि कृषि में मशीनों के प्रयोग करने से कृषि कार्यों की गति बढ़ जाती है, मानवीय शक्ति का प्रयोग कम हो जाता है और खेतों का आकार बड़ा रखा जाने लगता है। मशीनीकरण के फलस्वरुप गहन व सधन जुलाई करना सम्भव हो पाता है। इसके कारण प्रति हेक्टेयर उत्पादन में वद्धि हो जाती है।
3. **उत्पादन लागत में कमी** – राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद के नमूना सर्वेक्षण के अनुसार ट्रैक्टर से खेती करने की प्रति एकड़ लागत 100 रुपये आती है जबकि वही कार्य यदि बैलों की सहायता से किया जाता है तो लागत 160 रुपये आती है। इस प्रकार यान्त्रिक कृषि उत्पादन लागत कम करने में सहायक है।
4. **समय की बचत** – कृषि यंत्रों का प्रयोग करने से किसान अपना कार्य शीघ्रता से कर लेते हैं और समय भी बच जाता है। जो कार्य एक जोड़ी हल व बैल से पूरे दिन भर किया जाता है उसे एक ट्रैक्टर द्वारा एक घण्टे से भी कम समय में कर लिया जाता है।
5. **व्यापारिक कृषि को प्रोत्साहन** - कृषि यन्त्रों के प्रयोग से व्यापारिक कृषि को प्रोत्साहन मिलता है। उद्योगों को कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में कृषि क्षेत्र द्वारा उपलब्ध कराया जा सकता है। भूमि के बहुत बड़े-बड़े खेत कम समय व कम लागत में जोते जा सकते हैं, जिसके फलस्वरुप बड़ी मात्रा में उत्पादन मण्डी तक पहुंचाया जा सकता है। खाद्यान्न फसलों, के साथ-साथ व्यापारिक फसलों को भी प्रोत्साहन मिलता है। कृषि उपज की बिक्री न केवल अपने देश के बाजारों में बल्कि विदेशी बाजारों तक भी होती है।
6. **भारी कार्यों को सुगम बनाना** - कृषि यंत्रों की सहायता से भारी कार्य जैसे ऊँची नीची व पथरीली भूमि, बंजर भूमि तथा टीलों को आसानी से साफ व समतल कर कृषि योग्य बनाया जा सकता है। इस तरह कृषि योग्य भूमि में वृद्धि कर कृषि उत्पादन कृषि में यंत्रों का प्रयोग कर किया जाता है।
7. **रोजगार के अवसरों में वृद्धि** - कृषि यंत्रीकरण के परिणामस्वरुप दीर्घकालीन रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। यंत्रीकरण के कारण कृषि यंत्रो से सम्बन्धित उद्योग धन्धों व सहायक यन्त्रों का विस्तार

होने लगता है। कृषि यंत्रीकरण से उद्योग एवं परिवाहन में रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं, जैसे ट्रैक्टर।

8. **किसानों की आय में वृद्धि** - जैसा कि आप जानते हैं कि कृषि यंत्रो की सहायता से किसान कम समय व कम लागत में अधिक कृषि उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं, इसके फलस्वरुप किसानों की आय में वृद्धि होती हैं।
9. **उपभोक्ताओं को लाभ** – कृषि में यन्त्रीकरण से उत्पादन लागत कम आती है जिसके परिणामस्वरुप उपभोक्ताओं को कृषि उपजों का मूल्य कम देना पड़ता है।
10. **परती भूमि का उपयोग** – गहरी जुताई करने, भू–संरक्षण, भूमि सुधार, गहरे पानी वाले क्षेत्रों से पानी उठाने के कार्य यंत्रों की सहायता से सरलतापूर्वक किये जा सकते है।
11. **बहु फसली खेती को प्रोत्साहन** - कृषि यन्त्रीकरण से बहुफसली खेती को प्रोत्साहन मिलता है और फसल चक्र में वांछित परिवर्तन करना सम्भव होता है। कृषक वर्ष में दो-तीन विभिन्न प्रकार की फसलें उत्पादित कर पाते हैं।
12. **ऊर्जा, बीज व उर्वरक की बचत** - तकनीकि विकास महानिदेशालय द्वारा गठित,तकनीकि विकास सलाहकार समूह ने यह अनुभव किया कि बीज सहित उर्वरक ड्रिल (Seed-Cum fertiliser drill) न केवल ऊर्जा की बचत रहती है बल्कि 20 प्रतिशत बीज को भी बचत करती है और 15 प्रतिशत तक उत्पादन बढ़ाने में सहायक होती है।इससे उर्वरक व बीज का प्रयोग अधिक प्रभावशाली ढंग से हो पाता है।

6.3.2 कृषि यन्त्रीकरण के दोष

कृषि यन्त्रीकरण के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं:

1. बेरोजगारी में वृद्धि - जैसा कि आप को ज्ञात हे कि भारत की जनसंख्या का आकार बहुत बड़ा है और प्रतिवर्ष इसमें वृद्धि होती जा रही है। इसीलिए यन्त्रीकरण के विरोध में तर्क देने वालों का मत है कि भारत में वैसे ही बेरोजगारी की समस्या विद्यमान है, कृषि में आधुनिक कृषि यंत्रों का प्रयोग करने से कृषि श्रमिकों की मांग घट जाएगी क्योंकि यंत्रो की सहायता से कम समय अधिक काम हो सकता है। इससे कृषि श्रमिकों और अधिक संख्या में काम नहीं मिल पाएगा। चूंकि देश में अभी भी 60 प्रतिशत जनसंख्या रोजगार के लिए प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से कृषि पर ही निर्भर करती है। अतः यदि कृषि में बड़े पैमाने पर यन्त्रीकरण करने से बेरोजगारी को बढ़ावा ही मिलेगा। भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कृषि यन्त्रीकरण बहुत अधिक उपयुक्त नहीं है। इसका सीमित मात्रा में ही प्रयोग होना चाहिए।

2. कृषि जोतों का छोटा आकार - हमें ज्ञात है कि भारत में लघ व सीमान्त जोतों का आकार बहुत ही छोटा है। यहाँ लगभग 61.58 प्रतिशत जोतें हैं एक हेक्टेयर से कम तथा 80.31 प्रतिशत जोते दो हेक्टेयर से कम है। भारत में जोत का औसत आकार 1.41 हेक्टेयर है जबकि अमेरिका में 60 हेक्टेयर और कनाडा में 188 हेक्टेयर है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर भूमि उपविभाजन के कारण जोते बिखरी हुई हैं। छोटी व बिखरी जोतों पर ट्रैक्टर का प्रयोग कृषकों के लिए लाभकारी नहीं हो सकता। भारत में अनार्थिक जोतों यंत्रीकरण के मार्ग में एक बड़ी बाधा है।

3. **पूंजी की कमी** - यांत्रिक साधनों को जुटाने के लिए कृषकों को अधिक पूंजी की आवश्यक्ता होती है। जिसे जुटा पाना अधिकांश कृषकों के लिए सम्भव नहीं है क्योंकि भारत में सामान्य कृषक निर्धन हैं। भारत में सम्पन्न किसान ही यंत्रीकरण का लाभ उठा सकते हैं।
4. **तकनीकी ज्ञान का अभाव** - यान्त्रिक साधनों के उपयोग के लिए आवश्यक तकनीकों ज्ञान का कृषकों में अभाव होने के कारण, उन्हें छोटी-छोटी कमियों को दूर कराने के लिए मिस्त्रियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिससे दूसरों पर निर्भरता बढ़ती है और कार्य समय पर पूरा नहीं हो पाता है। कृषि यंत्रों की कार्य प्रणाली अनपढ़ कृषकों को समझाना भी कठिन होता है।
5. **भूमिहीन श्रमिकों की संख्या में वृद्धि** - यान्त्रिक कृषि अपनाने से बड़े किसान, लघु कृषकों की भूमि क्रय कर लेते हैं जिससे इससे बड़े किसानों की जोतों का आकार बड़ा हो जाता है इसलिए भमिहीन श्रमिकों की संख्या में निरन्तर वद्धि हो रही हैं।
6. **ईंधन की समस्या** - कृषि यंत्रों जैसे ट्रैक्टर, ट्यूबवेल, थ्रेशर आदि चलाने के लिए पैट्रोल, डीजल व बिजली की आवश्यक्ता होती है। इसकी आपूर्ति कम होने तथा कीमतें अधिक होने से सामान्य कृषक की क्रय शक्ति के बाहर हो जाती है। इसके अतिरिक्त अधिकांश राज्यों में बिजली की आपूर्ति 24 घण्टे नहीं है, किसानों को कृषि यंत्रों के प्रयोग में बाधा आने लगती है और मशीनें बेकार पड़ी रहती है।
7. **गाँवों में वर्कशॉप का अभाव** - ग्रामीण क्षेत्रों में यन्त्रों एवं उपकरणों की मरम्मत की सुविधा तथा स्पेयर पार्टस की उपलब्धता का अभाव पाया जाता है, ऐसी स्थिति में कृषि यंत्रो का प्रयोग करने में बाधा आने लगती है। उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण देश में यान्त्रिक कृषि के विकास की गति बहुत धीमी रही है।

6.4 भारत में कृषि यंत्रीकरण (मशीनीकरण) की प्रगति

भारतीय कृषि में मंशीनीकरण का आरम्भ केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन (Central Tractor Organisation - C.T.O.) की स्थापना के बाद हुआ। सिंचाई पम्पों व डीजल इंजन का उत्पादन 1930 में आरम्भ हो गया था। ट्रैक्टर व पावर टिलर का उत्पादन 1960 में आरम्भ हुआ। आयशर ट्रैक्टर पहली ट्रैक्टर कम्पनी थी, जिसने फरीदाबाद में पहली उत्पादन इकाई खोली। कृषि यन्त्रीकरण के क्षेत्र में हुई प्रगति का मूल्यांकन देश में ट्रैक्टर, विद्युत चालित कृषि उपकरणों, पावर टिलर, थ्रेशर व सिंचाई के लिए पम्पिंग सेटों के उपयोग, हार्वेस्टिंग और थ्रेशिंग उपकरणों आदि के ऑकड़ों के आधार पर किया जा सकता है। देश में आधुनिक यंत्रों की मांग बढ़ती जा रही है। कृषि के नये संयत्रों की मेलों तथा प्रदर्शनियों में किसानों को दिखाया जाता है। कृषि यंत्रीकरण की बढ़ती हुई आवश्यक्ता को देखते हुए देश में ट्रैक्टरों की उपलब्धता का स्तर बहुत कम है। भारत विभिन्न राज्यों में ट्रैक्टर उपलब्धि में बहुत विभिन्नता है। सर्वाधिक ट्रैक्टर पंजाब व हरियाणा राज्य में उपलब्ध है। पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हरित क्रान्ति का विस्तार होने के कारण, मशीनीकरण को बहुत प्रोत्साहन मिला, इन राज्यों में अमीर किसानों ने बड़े पैमाने पर कृषि उपकरणों का प्रयोग आरम्भ किया।

तालिका : 1 भारतीय कृषि में विभिन्न कृषि उपकरणों का हिस्सा (प्रतिशत)

Year	Agricultural workers	Draught animals	Tractors	Power tillers	Diesel engines	Electric motors	Power, kW/ha
1971-72	10.64	52.86	8.45	0.11	17.16	10.79	0.424
1981-82	9.20	33.55	18.46	0.11	22.85	15.82	0.592
1991-92	7.22	20.50	26.14	0.16	21.14	24.84	0.907

2001-02	5.70	11.76	36.77	0.36	19.10	26.31	1.352
2005-06	5.39	9.97	38.45	0.44	20.09	25.66	1.498
2009-10	5.12	8.55	41.67	0.52	19.01	25.13	1.658

Source: Singh et.al

विभिन्न कृषि कार्यों के संचालत हेतु विद्युत की उपलब्धता में निरन्तर वृद्धि हुई है। वर्ष 1971-72 में 0.295 किलोवाट प्रति हेक्टेयर से बढकर वर्तमान में 1.502 किलोवाट प्रति हेक्टेयर हो गई है। यह वृद्धि ट्रैक्टर, पॉवर टिलर्स, हारवेस्टरों, सिंचाई पम्पों और अन्य विद्युत चालित मशीनों के बढ़ते उपयोग के कारण हुई हैं। कृषि क्षेत्र में प्रचालन की लागत को कम करने और उत्पादकता तथा सिंचाई की क्षमता को बढ़ाने के लिए नए उपकरणों जैसे जीरों टिलर बीज सह उर्वरक ड्रिल, रोटावेटर, रीपर, पोटेटो प्लांटर, लैजर, लैण्ड लेवलर, न्यूमैटिक प्लांटर और ड्रिप सिंचाई उपकरणों की कृषकों को उपलब्ध कराये जा रहे हैं। सरकार और निजी क्षेत्र द्वारा किये गए संयुक्त प्रयासों के फलस्वरुप कृषि यन्त्रीकरण का स्तर निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यह तथ्य तालिका 1 व तालिका 2 से स्पष्ट हो जाता है।

तालिका 1 से स्पष्ट है कि जहाँ 1971-72 में 10.64 कृषि श्रमिक, पशुधन 52.86 प्रतिशत, ट्रैक्टर 8.45 प्रतिशत, पावर टिलर 0.11 प्रतिशत, डीजल इंजन 17.16 प्रतिशत, बिजली से चलने वाली 10.79 प्रतिशत मोटर व उर्जा की खपत 0.424 प्रतिशत थी, वहीं 2009-10 के आंकड़ें बताते हैं कि कृषि श्रमिकों का प्रतिशत घटकर 5.12 प्रतिशत रह गया, पशुधन का प्रयोग घटकर 8.55 प्रतिशत रह गया, ट्रैक्टर हिस्सेदारी बढ़कर 41.67 प्रतिशत ही गई, पॉवर टिलर का प्रतिशत हो गई, पॉवर टिलर का प्रतिशत बढ़कर 0.52 हो गया, डीजन इंजन का हिस्सा भी 19.01 प्रतिशत बढ़ गया, विद्युत चालित मोटर का प्रतिशत बढ़कर 25. 13 हो गया तथा कृषि क्षेत्र में उर्जा की खपत बढ़कर 1.658 प्रतिशत हो गई। इससे स्पष्ट है कि हरित क्रान्ति के पश्चात् भारतीय कृषि में मशीनीकरण की रफ्तार तीव्र गति से बढ़ी है और कृषि श्रमिकों की भागीदारी कम हुई है।

तालिका 2 भारत में विभिन्न वर्षों में ट्रैक्टर व पावर टिलर की बिक्री

Year	Tractors Sales (Nos.)	Power Tillers Sales (Nos.)
2004-05	2,47,531	17,481
2005-06	2,96,080	22,303
2006-07	3,52,835	24,791
2007-08	3,46,501	26,135
2008-09	3,42,836	35,294
2009-10	3,93,836	38,794
2010-11	5,45,109	55,000
2011-12 (Upto December 2011)	4,19,270	39,900

Source: Department of Agriculture and Cooperation

तालिका 2 से स्पष्ट है कि 2004-05 में ट्रैक्टर की बिक्री 2,47,531 व पॉवर टिलर की बिक्री 17,481 थी। यह बढ़कर 2011-12 में क्रमशः 4,19, 270 व 39,900 हो गई। फार्म ऊर्जा (Farm Power) कृषि में एक अति आवश्यक आदान है जो फार्म में प्रयुक्त होने वाली मशीनों व सिंचाई उपकरणों, थ्रेशर, हार्वेस्टर आदि के संचालन में सहायक है। यद्यपि पिछले 50 वर्षों में भारत में फार्म ऊर्जा उपलब्धता (Farm Power Availability) में 1951 से 0.25 किलोवाट प्रतिहेक्टेयर से 2009-10 में बढ़कर 1.68 किलोवाट प्रतिहेक्टेयर हो गयी है। पंजाब में 2001 में फार्म ऊर्जा उपलब्धता 3.5 किलोवाट प्रतिहेक्टेयर थी, जबकि अन्य राज्यों में जैसे उड़ीसा, राजस्थान, हिमांचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, गुजरात, आसाम, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में यह 0.9 किलोवाट प्रतिहेक्टेयर से भी कम थी। पंजाब में खाद्य उत्पादन 4032 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर था, हरियाणा में फार्म ऊर्जा उपलब्धता 2.25 किलोवाट प्रति हेक्टेयर थी और खाद्य उत्पादन 3088 किलोग्राम प्रतिहेक्टेयर था जिन राज्यों में फार्म ऊर्जा उपलब्धता अधिक होगी वहाँ कृषि उत्पादक्ता में भी वृद्धि हुई है। पंजाब में कृषि यन्त्रीकरण अधिक है और यह राज्य 30 प्रतिशत बिजली ऊर्जा का व 48 प्रतिशत डीजल इंजन पावर का प्रयोग करता है। यद्यपि देश में प्रति हजार हेक्टेयर के दृष्टिकोण से ट्रक्टरों की संख्या अभी भी कम है। भारत न केवल विकसित देशों बल्कि कुछ विकासशील देशों से भी कृषि यन्त्रीकरण के मामले में पीछे है।

6.5 भारत में कृषि यंत्रीकरण की प्रासंगिकता

कृषि क्षेत्र में यंत्रीकरण देश की जनसंख्या के आकार व कृषि जोतों के आकार पर निर्भर करता है। यदि हम विकसित देशों की बात करते हैं तो वहॉ जोतों का आकार बड़ा है जैसे कनाडा में जोत का औसत आकार 188 हेक्टेयर है। वहीं भारत में 61.58 प्रतिशत जोतों का औसत आकार 1 हेक्टेयर से भी कम है। भारत में वर्तमान में कृषि कार्य में लगी जनसंख्या का आकार बहुत बड़ा है इस दृष्टि से कृषि में अन्धाधुन्ध यंत्रीकरण की नीति अपनाना उचित नहीं होगा।

भारत में जनसंख्या की तुलना में कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल बहुत कम है। दूसरे शब्दों में कृषि श्रमिकों की प्रचुरता है। अतः भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में जनशक्ति का भरपूर प्रयोग करना होगा। जिससे श्रम विस्थापन प्रभाव (labour displacement effect) को कम किया जा सके।

एक अध्ययन की रिपोर्ट के अनुसार एक रोचक तथ्य सामने आया कि हरित क्रान्ति वाले क्षेत्रों में छोटे किसानों ने भी बड़ी मशीनों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। दूसरी ओर हम यह भी कह सकते हैं कि मशीनीकरण के प्रयोग से कृषि संयत्र बनाने वाले कारखानों में मरम्मत करने के लिए मिस्त्रियों के लिए रोजगार के नए अवसर सृजित हुए हैं। लेकिन कृषि श्रमिकों को रोजगार देने में कृषि यन्त्रीकरण बहुत सहायक नहीं है। यन्त्रीकरण की वद्धि देश में कषि क्षेत्र में व्याप्त प्रच्छन्न बेरोजगारी को कम करने के बजाय बढाने में सहायक होगा।

अतः भारत जैसे देश में चयनात्मक यंत्रीकरण योजना को अपनाना उचित होगा। इसी कारण पाँचवीं योजना के प्रारुप में उल्लेख किया गया है कि "पाँचवी योजना में चयनात्मक यन्त्रीकरण की नीति अपनाई जाएगी। इसका उद्देश्य होगा फसल गहनता और फसल उत्पादकता को बढ़ाना। वर्तमान समय में देश में प्रति हेक्टेयर 0.4 हार्स पावर शक्ति उपलब्ध है जो बहुत कम है अतः इसे बढ़ाना होगा। हमें इस बात पर ध्यान देना होगा कि कृषि की नवीन तकनीकि में कृषि के काम तेजी से उचित ढंग और समय पर करने होने हैं। इसके अतिरिक्त बैल खरीदने और इन्हें रखने का खर्चा भी बढ़ता जा रहा है। इन सबको देखते हुए कृषि का यन्त्रीकरण आवश्यक प्रतीत होता है परन्तु यन्त्रीकरण किस दर से और किस रुप में हो, यह बात जोतों के आकार और श्रमिकों के रोजगार पर यन्त्रीकरण के प्रभाव आदि बातों को ध्यान में रखकर निश्चित करनी होगी। अन्तिम बात खासतौर पर फसल की कटाई एवं सफाई की मशीन का प्रयोग करने के बारे में आवश्यक सोचना होगा। मशीनों का प्रयोग उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रखना होगा जहाँ फसल की कटाई के दौरान श्रमिकों की कमी रहती है। इसी सम्बन्ध में छठी योजना में इस तरह उल्लेख

किया गया है- **"फिर भी कृषि कार्यों का अनियन्त्रित यन्त्रीकरण हमारे देश के हित में नहीं होगा, इससे ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या विकट हो जाएगी। अत: देश में चयनात्मक यन्त्रीकरण की नीति को अपनाया जाए।"**

6.6 कृषि यंत्रीकरण को प्रोत्साहन हेतु सरकारी उपाय

भारत में कृषि यंत्रीकरण (मशीनीकरण) के प्रोत्साहन के लिए सरकार ने निम्न कदम उठाएं हैं:

1. कृषि में वृहत् प्रबन्धक कार्य योजनाओं के माध्यम से राज्यों के प्रयासों से 'सम्पूरण/अनुपूरणः नामक केन्द्रीय प्रयोजित योजना के अन्तर्गत विभिन्न कृषि उपकरणों की खरीद के लिए किसानों को राज्य सहायता उपलब्ध कराई जाती है। इसके अन्तर्गत हाथ के औजार, उर्जा चालित उपकरण, स्प्रिकेलर और ड्रिप सिंचाई उपस्कर रोपज और थेसिंग उपकरण, पावर टिलर, और अन्य विशेष कृषि मशीनें सम्मिलित हैं।
2. सरकार ने देश के विभिन्न राज्यों में ट्रैक्टर प्रशिक्षण केन्द्र खोले हैं। इन केन्द्रों पर 500 कृषकों को प्रतिवर्ष प्रशिक्षण देने की सुविधा उपलब्ध है। अब तक 80 हजार लोगों को फार्म मशीनी प्रबन्धन में प्रशिक्षण दिया जा चुका है।
3. गाँव के कारीगरों को यन्त्रों के सुधार की प्रशिक्षण सुविधा प्रदान के लिए सरकार ने ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्रों के साथ-साथ वर्कशॉप भी खोले हैं जहाँ पर कारीगरों को प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध है।
4. सरकार ने विभिन्न राज्यों में कृषि औद्योगिक निगमों (State Agro Industries Corporations - S.A.I.C.) की स्थापना की है। ये निगम आयात किए हुए ट्रैक्टर, पावर टिलर. पम्पसेट और अन्य कषि यन्त्रों को नकद मूल्यों या किश्तों पर कषकों को उपलब्ध कराने की व्यवस्था करते हैं। 5. कृषि यंत्रीकरण में मानव संसाधन के विकास को दृष्टिगत रखते हुए एवं फार्म मशीनों की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए भारत सरकार ने चार फार्म मशीन प्रशिक्षण व परीक्षण संस्थान (Farm Machinery Training and Testing Institutes - F.M.T.T.Is) स्थापित किये हैं। यह मध्य प्रदेश के बुदनी शहर (F.M.T.T.I), हरियाणी के हिसार (NRFMTTI), आन्ध्र प्रदेश (SRFMTTI) के अनन्तपुर में तथा आसाम के विश्वनाथ चौराली (NERFMTTI) शहर में स्थित है। यह मानव संसाधन विकास के साथ-साथ कषि उपकरणों जैसे टैक्टर पावर टिलर, हार्वेस्टर आदि में गुणवत्ता व विशेषता बनाये रखने व उसमें सुधार करने के लिए परीक्षण भी करते हैं।

6.7 अभ्यास प्रश्न

अभ्यास प्रश्न 1

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.कृषि यंत्रीकरण का अर्थ है

क. श्रमिकों द्वारा खेती करना

ख. कृषि की परम्परागत तकनीकों के स्थान पर कृषि यंत्रों का प्रयोग

ग. पशुओं द्वारा कृषि कार्य करवाया जाना

घ. इनमें से कोई नहीं।

2.कृषि यंत्रीकरण के निम्नलिखित लाभ हैं।

क. कृषि श्रम की कुशलता में कमी

ख. उत्पादन में कमी

ग. उत्पादन लागत में वृद्धि

घ. व्यापारिक कृषि को प्रोत्साहन

सत्य असत्य बताईये

1.गतिशील यंत्रीकरण से तात्पर्य उस यंत्रीकरण से है जिसमें फार्म पर कृषि कार्य को ___ करने में स्थिर यंत्रों का उपयोग किया जाता है। (सत्य/असत्य)

2. कषि यंत्रीकरण बह फसली खेती को बढावा देने में सहायक है (सत्य/असत्य) रिक्त स्थान की पूति कीजिए - भारत में औसत जोत का आकार .....हेक्टेयर से अधिक है।

एक शब्द में उत्तर दीजिए -

अमेरिका में जोत का औसत आकार कितना है।

अभ्यास प्रश्न 2

1.सत्य/असत्य

वर्तमान समय में देश में बिजली से चलने वाले पम्पसेटों की संख्या 1 करोड़ दस लाख से अधिक है (सत्य/असत्य)

2 रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

कृषि कार्यों के लिए विद्युत उपलब्धता 1970-72 में 0.295 किलोवाट/हेक्टेयर से बढ़कर वर्तमान में ..... किलोवाट/हेक्टेयर हो गई है।

6.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके होंगे कि कृषि यंत्रीकरण कृषि की परम्परागत तकनीकों के स्थान पर यन्त्रों एवं कृषि उपकरणों के प्रयोग से है। विकसित देशों की तुलना में भारत में कृषि यन्त्रीकरण अब भी बहुत कम है। भारत जैसे देश में जहाँ कृषि क्षेत्रफल कम है और जनसंख्या का आधिक्य है। भारत में कृषि क्षेत्र में मशीननों द्वारा खेती करने के पक्ष व विपक्ष में तर्क दिये जाते हैं। एक और कृषि यंत्रीकरण से कृषि श्रम की कुशलता में वृद्धि होती है, कृषि उत्पादन बढ़ता है, उत्पादन लागत में कमी होती है, किसानों की आय में वृद्धि होती है व व्यापारिक कृषि को बढ़ावा मिलता है। लेकिन दूसरी ओर भारत में कृषि यंत्रीकरण के विपक्ष में दिया जाता है, कि भारत में जातों का आकार न केवल छोटी बल्कि विखण्डित भी हैं तो ऐसे में कृषि यन्त्रीकरण सम्भव नहीं है। कृषि श्रमिकों की बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो जाती है। भारत में कृषि में यंत्रीकरण (मशीनों) के प्रयोग के सम्बन्ध में मध्य का रास्ता अपनाना होगा जिसमें आवश्यक्ता है चयनात्मक कृषि यंत्रीकरण की। जिन स्थानों में श्रमिक अधिक हैं वहाँ कम कृषि यंत्रों का प्रयोग किया जाए जिन कृषि कार्यों में यंत्रों का प्रयोग किया जाना आवश्यक हो वहीं पर किया जाए। परन्तु भारतीय कृषि में हम यन्त्रीकरण के लाभ को नकार नहीं सकते हैं क्योंकि हरित क्रान्ति को प्रोत्साहन देने में कृषि यन्त्रीकरण की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

6.9 शब्दावली

- **कृषि यन्त्रीकरण -** कृषि परम्परागत तकनीकों के स्थान पर आधुनिक यन्त्रों व उपकरणों की सहायता से किया जाना ही कृषि यंत्रीकरण है।
- **चयनात्मक यन्त्रीकरण -** श्रम आपूर्ति व खेतों के आकार के अनुसार कृषि क्षेत्र में यंत्रों का सोच समझकर प्रयोग करना इस बात का चयन करना कि खेती श्रमिकों से कराई जाए अथवा मशीनों से।
- **व्यापारिक कृषि -** जब कृषि उत्पादन जीवन निर्वाह के लिए ही नही बल्कि लाभ के उद्देश्य से बाजार में विक्रय हेतु किया जाता है।

- **कृषि जोतों का विखण्डन -** उपविभाजन के कारण किसानों की जोतों का विभिन्न स्थानों में बिखरा हुआ होना। इससे कृषि उत्पादकता में कमी आती है और किसान सही तरीके से कृषि यन्त्रों का प्रयोग नहीं कर पाता है।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

बहुविकल्पीय प्रश्न :-(1) ख , (2) घ,

सत्य असत्य बताईये (1) असत्य (2) सत्य

रिक्त स्थान की पूति कीजिए :- 1.41 हेक्टेयर एक शब्द में उत्तर दीजिए :- 60 हेक्टेयर

अभ्यास प्रश्न 2

(1) सत्य

(2) 1.502 किलोवाट/हेक्टेयर

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची व ई-लिंक्स

- मिश्र, एस0पी0 (2012), कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, पब्लिकेशन्स, आगरा।
- अग्रवाल, एन0 एल (2000), भारतीय कृषि का अर्थतन्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- मिश्रा, एस0के0, पुरी वी0के0 (2007), भारतीय अर्थव्यवस्था, खेती में मशीनीकरण,हिमालय पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।
- सोनी, आर0एन (2010), भारतीय कृषि का मशीनीकरण, विशाल पब्लिशिंग कं0 जालंधर।
- आर्थिक सर्वेक्षण 2010-11
- Agri.crop.nic.in
- योजना आयोग, पंचम पंचवर्षीय योजना का प्रारुप (1974-79)
- Singh, S.P., R.S. Singh and S. Singh (2011). Sale Trend of Tractors & Farm Power Availability in India, Agricultural Engineering Today, 35(2), April-June, 31-44.

6.12 उपयोगी सहायक ग्रंथ

- Bergmann T. (1978) Mechanisation of Indian Farming, Popular Prakashan, Bombay.
- Misawa T (1974), "Agricultural Developement and Employment Expansion A case study of Japan Nurul Islam, Agricultural Policy in Developing Countries London. Mac- Millan Press Ltd.

- Rath, R.K. Dagil V.L. (1968), "Scope for Mechanisation in Indian Agriculture Foundation of Indian Agriculture, Bombay Vora & Co.
- Ghosh, M. (1988), "Technological Change and Employment Generation in Rice Based Agriculture", Agricultural Situation in India, Jan 1988

6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1 भारत में कृषि के यन्त्रीकरण के लाभ व हानियों की विवेचना कीजिए। 2 भारत में कृषि यन्त्रीकरण की प्रगति पर प्रकाश डालिए।

इकाई 7- बायो तकनीक एवं आर्गेनिक कृषि
(Bio-Tech and Organic Farming)

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 बायो तकनीक का अर्थ
7.3.1 जैविक खेती/ऑर्गेनिक कृषि के लक्ष्य
7.3.2 जैविक खेती/ऑर्गेनिक कृषि के सिद्धान्त
7.4 विभिन्न जैविक तकनीकें
7.4.1 जैविक/आर्गेनिक खादों का प्रयोग
7.4.2 जैविक /आर्गेनिक कीटनाशकों का प्रयोग और जैव रोग नियंत्रक
7.5 जैविक/आर्गेनिक कृषि की आवश्यक्ता
7.6 जैविक / आर्गेनिक कृषि के प्रभाव
7.7 जैविक खेती की समस्याएं/ बाधाएं
7.8 भारत में जैविक उत्पादो/कृषि की सम्भावनाएं
7.9 अभ्यास प्रश्न
7.10 सारांश
7.11 शब्दावली
7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
7.14 उपयोगी/सहायक ग्रंथ
7.15 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या एक महत्वपूर्ण तथा शोचनीय समस्या बन गई है। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की आपूर्ति करना तथा खाद्य पदार्थों के उत्पादन को तेजी से बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों आदि का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। जहरीले कीटनाशकों व रासायनिक खादों का प्रयोग प्रकृति के पारिस्थिकी तन्त्र (Ecological System) को प्रभावित करता है। जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति का क्षय होने लगता है। यहीं नहीं इससे वातावरण प्रदूषित होता है। इसके फलस्वरुप मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है और इसका प्रभाव समस्त जैवमण्डल पर पड़ता है। प्राचीन काल में मानव स्वास्थ के अनुकूल तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुरुप खेती की जाती थी। जिसमें जैविक व अजैविक (Organic and Inorganic)पदार्थों के बीच विनिमय आसानी से होता रहता था। जिसके परिणामस्वरुप जल, भूमि, वायु तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होते थे। भारतीय कृषि में जैविक खाद का प्रयोग वैदिक युग से होता आ रहा है। सर अल्बर्ट हावर्ड ब्रिटिश कृषि विशेषज्ञ ने जैविक कृषि की शुरुवात 1900 ई0 में की थी। हरित क्रान्ति के बाद से ही भारत में प्राचीन काल से चली आ रही जैविक कृषि की परम्परा में बाधा डाली। रासायनिक कृषि से हमारे संसाधनों की गुणवत्ता में कमी आई है। जैविक कृषि से हमारे संसाधनों का संरक्षण होता है। कृषि में बायोतकनीकी व जैविक खेती का प्रयोग एक क्रान्तिकारी कदम है। भारत के मध्य प्रदेश में सर्वप्रथम 2001-02 में जैविक खेती का आन्दोलन चलाकर प्रत्येक जिले के प्रत्येक विकास खण्ड के एक गांव में जैविक खेती (Organic Farming) की शुरुआत की गई। इसी आधार पर उस गाँव का नाम "जैविक गॉव (Organic Village) रखा गया। इस प्रकार भारत में प्रथम वर्ष में कुल 313 ग्रामों में जैविक खेती का आरम्भ हुआ। इस इकाई से अध्ययन से जैव प्रौद्योगिकी (Bio technique) व जैविक खेती (Organic Agriculture) को समझने में सहायता मिलेगी तथा यह भी जान पायेंगे कि भारत के कृषि क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी व जैविक पदार्थों के प्रयोग का क्या महत्व है, इसकी विस्तार से व्याख्या की गई है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- ✓ यह जान सकेंगे कि कृषि में बायो-तकनीकी व जैविक खेती का क्या अर्थ है।
- ✓ यह कि समझ सकेंगें कि बायो तकनीकि व जैविक खेती का कृषि क्षेत्र में क्या महत्व है।
- ✓ यह अवलोकन कर सकेंगे कि जैविक खेती के लिए कौन-कौन सी विधियों का प्रयोग किया जाता है।
- ✓ यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि किसी प्रकार जैविक कृषि पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हो।

7.3 जैव तकनीकी (Biotechnology) का अर्थ

जीवाणुओं, छोटे जन्तुओं तथा पादपों की सहायता से वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रियसा जैव तकनीकि अथवा जैव प्रौद्योगिकी कहलाती है। इसके अन्तर्गत मुख्य रुप से डी एन ए तकनीक, कोशिका एवं ऊतक तंत्र, रोग प्रतिक्षण टीका उत्पादन, जैव उर्वरक, जैविक गैस व कुछ अन्य क्षेत्र व विधाएं सम्मिलित हैं। कृषि सम्बन्धी तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में जैव प्रौद्योगिकी के समुचित उपयोग हेतु मिशन मोड कार्यक्रम चलाये गए हैं। मिशन मोड कार्यक्रम के अन्तर्गत संस्थाओं और एजेंसियों के बीच बेहतर समन्वय स्थापित किया जाता है तथा समयबद्ध आधार पर बड़े पैमाने पर विज्ञान एवं तकनीकि के उपयोग का प्रयास किया जाता है। कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र जिनके विकास पर महत्वपूर्ण अनुसंधान किये गए और उपलब्धियाँ अर्जित की गई। जैव प्रौद्योगिकी पौध उत्पादों के लिए

एक अस्त्र का काम करती हैं जिसमें एक ही जीन (gene) का चुनाव करके इच्छित गुणों को प्राप्त कर एक पौधे से दूसरें पौधे में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

7.3.1 जैविक खेती के लक्ष्य

जैविक खेती के दो लक्ष्य हैं।

1. प्रणाली को टिकाऊ बनाना
2. जैविक खेती को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाना

इन दोनों लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए ऐसे मानक तैयार करने की जरुरत है जिनका अनुसरण हो। जैसे कि आप जानते हैं कि भारतीय कृषि में शुद्ध जैविक खेती को अपनाकर रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग की सम्भावना विद्यमान है। जैविक खेती को अपनाने के लिए समन्वित (Integrated Nutient Management) पोषण प्रबन्धन और जैविक नियंत्रण विधियों को सशक्त करने की आवश्यक्ता है ताकि रसायनों की जरुरतों में कमी हो सके।

7.3.2 जैविक खेती के सिद्धान्त

जैविक खेती की सफलता तीन आधार भूत सिद्धान्तों पर आधारित है:

1. अन्तर्निर्भरता (Interdependency) – इनमें से सबसे महत्वपूर्ण है अन्तनिर्भरता, जैविक (ऑर्गेनिक) खेती में एक खेत को पारिस्थिकीयतंत्र (Ecosystem) के रुप में देखा जाता है और यह माना जाता है कि एक खेत पर किया गया परिवर्तन दूसरे खेत में प्रभाव अवश्य डालेगा। उदाहरण के लिए मृदा में अधिक नाइट्रोजन के होने से खरपतवार (Weeds) की वृद्धि तेजी से होगी। इस समस्या को दूर करने के लिए किसान ऐसी फसल को उगाने का प्रयास करेगा जो मृदा से नाइट्रोजन की अधिक मात्रा को अवशोषित कर लेगा और इस प्रकार मृदा में पोषक तत्वों के बीच सन्तुलन बना लेगा।

2. विविधता (Divorsity) – ऑर्गेनिक खेती का दूसरा सिद्धान्त विविधता का है। जैविक खेती मृदा में पोषक तत्वों में सन्तुलन बनाये रखने के लिए किया जाता है। किसानों का फसलों व पशुधन के मध्य सन्तुलन बनाये रखने के लिए किसानों को खेतों के साथ-साथ पशुधन भी पालने चाहिए। फसलों व पशुधन में विविधता किसानों की आय में भी विविधता व लचीलापन लाती है। दूसरी ओर पारिस्थितिकी तन्त्र में किसी कीट या खरपतवार या बीमारी को समस्या बनने से रोकता है।

3. पुनः चक्र (Recycling) - जैविक खेती का तीसरा सिद्धान्त पुनः चक्र (Recycling) है, अर्थात् दोबारा से प्रयोग करना। इसमें पौधों व पशुओं के अवशेष पुनः प्रयोग में आ जाने के कारण खेतों के पोषक तत्वों को बनाये रखने में सहायक होते हैं।

7.4 विभिन्न जैविक तकनीकें

7.4.1 जैविक खादों का प्रयोग

जैव उर्वरक से तात्पर्य ऐसे सूक्ष्म सजीव जीव व जीवाणु से है जो पौधों के उपयोग के लिए पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं। आर्गेनिक खेती के अन्तर्गत आर्गेनिक खादों का प्रयोग किया जाता। ये खादें पौधों के लिए पोषक तत्वों का स्त्रोत हैं। मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गणों पर भी इनका प्रभाव पड़ता है। राइजोबियम और नील हरित शैवाल, इसके अतिरिक्त नाडेम खाद, बायोगैस स्लरी (Slurry), वर्मी कम्पोस्ट, पिट कम्पोस्ट, मुर्गी की खाद। आर्गेनिक खादों में मुख्य रुप से प्रक्षेत्र खाद (गोबर की खाद), कम्पोस्ट, शहरी, कम्पोस्ट, अवमल (स्लज), हरी खाद, खादों की खलियां, मछली की खाद, रुधिर चूर्ण सींग व खुरों का चूर्ण, भूसा या लकड़ी का बुरादा, शीरा आदि सम्मिलित हैं। जैब उर्वरक सूक्ष्म जीवाणुओं युक्त टीका है जिसके उपयोग से फसल उत्पादन में वृद्धि होती है। जैविक खेती में मुख्य जैविक खादे हैं -

1. **राइजोवियम** – इसका प्रयोग मुख्य रुप से अरहर, मूंग/उड़द, लोबिया मसूर, मटर, मूंगफली, सोयाबीन, बरसीम में होता है। जैव उर्वरकों में राईजोबियम नाइट्रोजन यौगिकीकरण (Nitrogen Fixation) करने वाला एक महत्वपूर्ण जीव है। यह दलहनी पौधों की जड़ ग्रन्थियों में रहकर सहजीवी जीवन यापन करता है और पौधों को नाइट्रोजन प्रदान करता है। राइजोबियम की अनेक प्रभावकारी और उन्नतशील जातियाँ विकसित की गयी हैं। राइजोबियम जीवाणु खाद से भूमि के भौतिक और रासायनिक गुणों में सुधार होता है जिससे मृदा उर्वरता बढ़ती है और आगामी फसल की पैदावार भी अच्छी होती है।
2. **नील हरित काई (Blue Green Algae)** – इसका प्रयोग मुख्य रुप से धान की फसल में होता है। इनकी वृद्धि धान के खेत में जहाँ पानी भरा रहता है, अच्छी प्रकार होती है। परीक्षणों से पता चला है कि धान में नीलहरित शैवाल का टीका लगाने (Inoculation) से धान की विभिन्न जातियों की उपज में वृद्धि होती है। नाइट्रोजन यौगिकीकरण के अतिरिक्त यह विटामिन वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाले पदार्थों का स्त्राव करते हैं जो धान के पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए लाभप्रद हैं। ये मुख्यतः उन क्षेत्रों में अधिक संख्या में पाए जाते है जहाँ पानी का जमाव अधिक होता है। नील हरित शैवाल के प्रयोग से धान की पैदावार में 450 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर वृद्धि होती है। यह वृद्धि 14 प्रतिशत के बराबर है।
3. **एजैटोबैक्टर** – इसका प्रयोग मुख्य रुप से गेहूं, सरसों, कपास, तरकारियों उगाने में किया जाता है। यह कृषि में अपने योगदान के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सर्वाधिक उपयोगी जीवाणु है। यह स्वतन्त्र रुप से जीवन यापन करते हुए वायमण्डलीय नाईट्रोजन का यौगीकरण करता है। इसके प्रयोग से मदा के भौतिक गुणों में सुधार होता है। ये जीवाणु भूमि और जड़ की सलह पर स्वतन्त्र रुप से रहकर आक्सीजन की उपस्थिति में वायुमण्डल नाइट्रोजन को स्थिरीकरण करते हैं। ये जीवाणु पौधों की जड़ों के द्वारा निकाले गए पदार्थों (शर्करा, अमीनों अम्ल, कार्बनिक अम्ल और विटामिन) को ऊर्जा के स्त्रोत के रुप में उपयोग करते हैं। एजोटोबैक्टर जीवाणु किसी भी गैर दलहनी फसलों में उपयोग किया जा सकता है। एजेटोबैक्टर के सक्रिय जीवाणु कल्चर के उपयोग से शाक-भाजी वाली फसलों में 15-20 प्रतिशत और धान्य फसलों जैसे गेहूँ, बाजरा इत्यादि में 10-15 प्रतिशत तक वृद्धि पायी जाती है। इसके प्रयोग से फसलों में अंकुरण अधिक होता है जैसे कपास में 35-50 प्रतिशत धान में 72-82 प्रतिशत व गेहूँ में 50 प्रतिशत अधिक होता है। इसके प्रयोग से आलू में स्टार्च की मात्रा 7-8 प्रतिशत, चुकन्दर में शर्करा, सूरजमुखी में तेल और मक्का में प्रोटीन की मात्रा बढ़ती है।
4. **एजोस्पिरिलम** – इसका प्रयोग बाजरा, ज्वार, धान में किया जाता है। फसलों में इस जीवाणु का उपयोग अभी हाल में ही प्रारम्भ हुआ है। इसका प्रयोग जौ, जई, ज्वार, मोटे अनाज वाली फसलों में नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग कम मात्रा में होने पर इस जीवाणु का विशेष महत्व है।

ऐसीटोबैक्टर -एसीटोबैक्टर नामक सूक्ष्म जीवाणु की खोज तथा अनुभव ब्राजील तथा क्यूबा के गन्ने के क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। यह जीवाणु सिरके में भी देखे जा सकते हैं। इनकी मौजूदगी एक विशेष गंध से अनुभव की जा सकती है। गन्ने की फसल में इसके प्रयोग से 20 प्रतिशत अधिक उत्पादन मिलता है। इसके प्रयोग से 1-2 प्रतिशत शर्करा भी अधिक हो जाती है।

इसके अतिरिक्त जैव उर्वरक के अन्तर्गत मुख्य तीन प्रकार की खादों का उल्लेख विस्तार से किया जा रहा है। यह हैं –

1. **गोबर की खाद-** कम्पोस्ट और हरी खादें :गोबर की खाद - गोबर की खाद फार्म पशुओं, गाय, घोड़ा कभी-कभी सुअरों के ठोस एवं द्रव मल-मूत्र का एक सड़ा हुआ मिश्रण है। जिसमें साधारणतया भूसा, बुरादा, छीलन अथवा अन्य कोई शोषक पदार्थ जो पशुओं के बाँधने के स्थान पर प्रयोग किया गया हो,

आते हैं। गोबर की खाद पोषक तत्वों को पौधों के लिए धीरे-धीरे प्रदान करता है और इस खाद का प्रभाव कई वर्षों तक बना रहता है। गोबर की खाद में नाईट्रोजन, पोटाश व फॉस्फोरस के साथ-साथ अन्य आवश्यक तत्व भी पाए जाते हैं। यह खाद मृदा में कैल्शियम की मात्रा बढ़ाती है और इस प्रकार भौतिक गुणों को सुधारने में सहायक होती है।

2. **कम्पोस्ट** - पौधों के अवशेष पदार्थों, पशुओं का बचा हुआ चारा, कूड़ा करकट आदि पदार्थों के बैक्टीरिया तथा फफूंद (Fungi) द्वारा विशेष विच्छेदन से बना हुआ पदार्थ कम्पोस्ट कहलाता है। सड़ी हुई यह खाद प्रायः गहरे भूरे रंग की होती है कम्पोस्ट को प्रयोग करने से भूमि की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। मृदा संरचना सुधरती है, मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ती है यह मृदा की ऊष्मा शोषण क्षमता भी बढ़ाती है। पौधों के पोषक तत्वों की पूर्ति करती है। कम्पोस्ट में असंख्य फंजाई तथा बैक्टिरिया होते हैं, अतः खेतों में इसके प्रयोग से इनकी संख्या बढ़ जाती है। सूक्ष्म जीवों (Micro Organism) की सक्रियता में वृद्धि होती है, फलतः नाइट्रीकरण, अमोनीकरण तथा नाइट्रोजन स्थरीकरण में वृद्धि होती है। कम्पोस्ट में मुख्य रुप से वर्मीकम्पोस्ट प्रमुख हैं।

   वर्गीकम्पोस्ट (Vermi Compost) को वर्मीकल्चर (Vermi Culture) भी कहा जाता है। यह मुख्यतः केचुओं द्वारा तैयार होती है। केचुए कार्बनिक निरर्थक पदार्थ को अपने शरीर के भार के दो से पाँच गुना तक ग्रहण करते हैं तथा उसमें से केवल 5-10 प्रतिशत अपनी शरीर की आवश्यक्ता के लिए प्रयोग करके शेष पदार्थ को अपचाहित पदार्थ के रुप में बाहर (Excrete) कर देते हैं जिसे वर्म कास्ट कहते हैं। अतः गोबर, सूखे हरे पत्ते, घास-फूस, धान का पुआल, डेयरी पदार्थ, कुक्कुट निरर्थक पदार्थ खाकर केचुओं द्वारा प्राप्त मल से तैयार खाद ही वर्मीकम्पोस्ट कहलाती है यह भूमि की उर्वरता, भौतिक दशा जैविक पदार्थों, लाभदायक जीवाणुओं में वृद्धि एवं सुधार करती है। भूमि की जल सोखने की क्षमता में वृद्धि करता है तथा मृदा संरचना में सुधार करता है। इससे खरपतवार की कमी होती है। जहाँ केंचुएं पाले जाते हैं वहाँ मटर व जई में 70 प्रतिशत, घासों में 28-112 प्रतिशत, सेब में 25 प्रतिशत, बीन्स में 291 प्रतिशत गेहूँ में 300 प्रतिशत की उत्पादन वृद्धि मिली केंचुओं के कारण वातावरण स्वस्थ रहता है और खेती लाभकारी बनी रहती है।

3. **हरी खाद (Green Manusing)** - मृदा उर्वरता को बढ़ाने के लिए समुचित हरे पौधों को उसी खेत में उगाकर या कहीं से लाकर खेत में मिला देने की प्रक्रिया को हरी खाद कहते हैं। हरी खाद के प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ तथा नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होती है। यह मृदा जल के वाष्पीकरण को रोकती है। इसके प्रयोग से पौधों में वायु का आवागमन अच्छा होने लगता है। हरी खाद रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उत्पन्न दोष कम कर देती है। हरी खाद के लिए प्रयोग होने वाली मुख्य फसलें हैं उर्द, मूंग, ग्वार, लोबिया, नील और रबी फसलें, बरसीम, मसूर, मटर आदि हैं।

7.4.2 जैव कीटनाशक और जैव रोग नियंत्रकों का प्रयोग

भारत की भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु के कारण यहाँ फसल कीटों तथा बीमारियों का खतरा हमेशा बना रहता है। जैव कीटनाशकों तथा जैव रोग नियंत्रकों में प्राकृतिक कीटों तथा जैव प्रौद्योगिकी में विकसित सूक्ष्म जीवों का उपयोग करते हैं जो कीटों को नष्ट कर सकते हैं। जैव कीटनाशकों से पर्यावरण को भी कोई हानि नहीं होती है, क्योंकि इनके अवशेष बायोडिग्रेडेबल होते हैं। जैविक रोग नियंत्रण का उपयोग मुख्यतः कपास, तिलहन, गन्ना, दलहन तथा फलों एवं सब्जियों के पौधों में होने वाले रोगों एवं उन पर कीटों के आक्रमण से बचाव के लिए किया जा रहा है जिसके पास कीटों या रोगों से लड़ने की पूर्ण प्राकृतिक क्षमता हो आर्थिक रुप से महत्वपूर्ण फसलों के लिए जैव नियंत्रकों - बैक्यूलोवाइरस, पैरासाइट, प्रीडेटर्स, एंटागोनिस्टिकस, फफूंदी

तथा बैक्टिरिया के बड़े स्तर पर उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकी को उद्योगों को स्थानांतरित किया गया है। जैविक पद्धति में गौमूत्र, नीम पत्ती का घोल, निबोरी व खली का प्रयोग किया
जाता है।

7.5 जैविक खेती की आवश्यकता

भारत में कृषि उत्पादन, विशेषकर खाद्य पदार्थों का उत्पादन पिछले कई दशकों में तेजी से बढ़ा है। यह उपलब्धि खेतों में उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग व कृषि में मशीनीकरण के प्रयोग से हुई है। एक लम्बे समय तक रासायनिक खादों के प्रयोग से मृदा की उत्पादकता कम हो जाती है और दसरी ओर पर्यावरण प्रदषण में वृद्धि होती है। इन समस्याओं ने खेती में वैकल्पिक तरीकों को तलाशने का प्रयास किया है। इस दिशा में आजकल आधुनिक खेती से जैविक खेती पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। जैविक खेती मृदा, खनिज, जल, पौधों, कीटों, पशुओं व मानव जाति के समन्वित संबंधों पर आधारित है। यह मृदा को संरक्षण प्रदान करता है वहीं पर्यावरण को भी सरंक्षण प्रदान करता है। जैविक प्रबन्धन आसपास पाये जाने वाले मानव संसाधन, ज्ञान व प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग पर बल देता है। जैविक कृषि खाद्य सुरक्षा में वृद्धि करने व अतिरिक्त आय सृजित करने में भी सहायक है। जैविक खेती सतत कृषि विकास व ग्रामीण विकास के उद्देश्य को पूरा करने में धनात्मक भूमिका निभाता है तथा मृदा की उर्वरता को बढ़ाने के साथ-साथ किसानों की सामाजिक आर्थिक स्थितियों में भी बदलाव लाता है। जैविक खाद्य पदार्थों की 20-25 प्रतिशत दर से मांग विकसित व विकासशील देशों में लगातार बढ़ती जा रही है। सम्पूर्ण विश्व में 130 देश प्रमाणित जैविक पदार्थों का उत्पादन व्यापारिक स्तर पर करते हैं। केवल परम्परागत फसलों को उगाकर ही किसान समृद्ध नहीं हो सकते, बदलती मांग व कीमतों के अनुरुप फसल प्रतिरुप में परिवर्तन भी आवश्यक है। प्राकृतिक विधि व जैविक खाद के उपयोग से उगाए गए खाद्य पदार्थों की मांग यूरोप, अमेरिका, जापान में तेजी से बढ़ रही है। इस बढ़ती मांग के अनुरुप उत्पादन करके किसानों को लाभ उठाने के लिए प्रेरित किया जाना आवश्यक है।

7.6 आर्गेनिक खेती के प्रभाव

1. कृषक के दृष्टिकोण से

क) मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। फसलों की उत्पादकता बढ़ जाती है और कृषक अधिक आय अर्जित हो पाती है।

ख) रासायनिक उर्वरक में निर्भरता कम होने से लागत कम हो जाती है।

ग) यह कृषकों के खेती करने के पुरातन व देशी ज्ञान को संरक्षित रखता है।

घ) अन्तराष्ट्रीय बाजार में आर्गेनिक पदार्थों की मांग बढ़ने से किसानों की आय में वृद्धि होती है।

2. मृदा के दृष्टिकोण से

क) यह मृदा में पोषक तत्वों को पौधों के लिए धीरे-धीरे प्रदान करता है और इसप्रकार इस खाद का प्रभाव कई साल तक बना रहता है।

ख) यह मृदा में नाइट्रोजन, पोटाश फॉसफोरस व कैल्शियम जैसे आवश्यक तत्व बढ़ाता है और इस प्रकार भौतिक गुणों को सुधारने में सहायक होता है।

ग) जैविक खाद के प्रयोग से काफी समय तक मृदा में नमी बनी रहती है।

घ) आर्गेनिक खादों में कुछ नाइट्रोजनयुक्त लाभप्रद पदार्थ पाये जाते हैं जो कि पौधों की वृद्धि शीघ्र करने में सहायक होता है।

ड).यह मृदा संरक्षण व जल संरक्षण में सहायक है।

3 पर्यावरण के दृष्टिकोण से

क) कचरे का प्रयोग खाद बनाने में किया जाता है जिससे वातावरण स्वच्छ रहता है और बीमारियाँ कम करने में सहायता मिलती है।

ख) यह स्वास्थ्यवर्धक, पौष्टिक व गुणवत्ता खाद्य पदार्थों के उत्पादन में सहायक है। यह पर्यावरण मित्र होते हैं।

ग) यह जैविक चक्र को प्रोत्साहित करता है जिसमें सूक्ष्म कीटाणुओं, मृदा पौधों व पशुओं व मानव के बीच अन्तनिर्भरता को बढ़ाता है व पारिस्थिकी तंत्र में सन्तुलन बनाये रखता है।

घ) रासायनिक कृषि से जहाँ हमारे संसाधनों की गुणवत्ता घटती है, वही जैविक कृषि से हमारे संसाधनों का संरक्षण होता है।

ड).कषि जैव विविधता का सरंक्षण होता है।

7.7 आर्गेनिक (जैविक) खेती समस्यायें/ बाधायें

भारत में कम्पोस्ट की कमी, जैविक सामग्री में पोषक तत्वों का अंतर, कचरे से संग्रह करने और प्रसंस्करण करने में जटिलता, विभिन्न फसलों के लागत लाभ अनुपात के साथ जैविक कृषि के व्यवहारों को शामिल करने में पैकेज का अभाव और वित्तीय सहायता के बिना किसानों द्वारा इसे अपनाने में कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त जैविक खेती की प्रगति में कई बाधाएं हैं :

1. **जागरुकता की कमी** - किसानों के पास कम्पोस्ट तैयार करने के लिए आधुनिक तकनीकों के प्रयोग की जानकारी का भी अभाव है। किसान अधिकांशतः यह करते है कि गड्ढा खोदकर उसे कचरे को कम मात्रा में भर देते हैं। अक्सर गड्ढा वर्षा के जल से भर जाता है और इसका परिणाम यह होता है कि कचरे का ऊपरी हिस्सा पूरी तरह कम्पोस्ट नही बन पाता ओश्र नीचे का हिस्सा कड़ी खली की तरह बन जाता है। जैविक कम्पोस्ट तैयार करने के बारे में किसानों को समुचित प्रशिक्षण देने की जरुरत है।
2. **विपणन की समस्या** - ऐसा पाया जाता है कि जैविक फसलों की खेती शुरु करने के पहले उनका विपणन योग्य होना और पारंपरिक उत्पादों की तुलना में लाभ सुनिश्चित करना। ऐसा प्रमाण मिला है कि राजस्थान में जैविक गेहूँ के किसानों को गेहूँ के पारम्परिक किसानों की तलना में कम कीमतें मिली। दोनों प्रकार के उत्पादों के विपणन की लागत भी सामान थी और गेहूँ के खरीददार जैविक किस्म के लिए अधिक कीमत देने को तैयार नहीं थे।
3. **अधिक लागत होना** – भारत के छोटे और सीमान्त किसान पारम्परिक कृषि प्रणाली के रुप में एक प्रकार की जैविक खेती करते रहे हैं। वे खेतों को पुनर्जीवित करने के लिए स्थानीय अथवा अपने संसाधनों को इस प्रकार प्रयोग करते हैं कि परिस्थितिकी के अनुकूल वातावरण कायम रहे। जैविक खादों की लागत रासायनिक उर्वरकों से अधिक है। मूंगफली की खली, नीम के बीज और उसकी खली जैविक कम्पोस्ट, खाद, गोबर और अन्य खादों का प्रयोग जैविक खादों के रुप में होता रहा है। इनकी कीमतों में वृद्धि होने से ये छोटे किसानों की पहुंच से बाहर होते जा रहे हैं।
4. **वित्तीय सहायता का अभाव** - जैविक उत्पादों के विपणन के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जाती। यहां तक कि जैविक खेती को बढ़ावा देने के उद्देश्य से वित्तीय प्रक्रिया का भी सर्वथा अभाव है।
5. **निर्यात की मांग पूरा करने में अक्षमता** – अमेरिका, यूरोपीय संघ और जापान जैसे उन्नतशील देशों में जैविक उत्पादों की बहुत मांग है। अमरीकी उपभोक्ता जैविक उत्पादों के लिए 60 से 100 प्रतिशत का

लाभकारी मूल्य के भुगतान के लिए तैयार है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केन्द्र (आई. टी. सी.) द्वारा वर्ष 2000 में कराए बए बाजार सर्वेक्षण से यह संकेत मिला है कि विश्व बाजारों के कई हिस्सों में जैविक उत्पादों की मांग बढ़ी है, जबकि उसकी आपूर्ति नही की जा सकती। भारत में जैविक पदार्थों के निर्यात को प्रोत्साहन का अभाव पाया जाता है।

7.8 भारत में जैविक उत्पादों की सम्भावनाएं

भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन को कायम रखने व उसे बढ़ाने के प्रयास करने होंगे। जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण अनुकूल हैं। भारतीय किसान हरित क्रान्ति के प्रारम्भ से पहले परम्परागत तरीकों से ही खेती करता था जो पर्यावरण के अनुकूल थे। अभी भी हमारे देश के छोटे व सीमान्त, किसान पर्यावरण हितैषी पारम्परिक प्रणाली का अनुसरण कर रहे हैं। वे स्थानीय अथवा अपने खेतों से प्राप्त पुनर्जीवन संसाधनों का इस्तेमाल करते हैं और स्वनिर्मित परिस्थितिकीय और जैविकीय प्रक्रियाओं का प्रबन्धन करते हैं। भारत जैसा देश आर्गेनिक खेती को अपनाकर कई प्रकार से लाभान्वित हो सकता है। इसके माध्यम से ग्रामीण रोजगार के सृजन, प्रवास में कमी, स्थानीय खाद्य सुरक्षा तथा बाहरी चीजों पर निर्भरता में कमी जैसे आर्थिक तथा सामाजिक लाभ भी प्राप्त होंगें। घरेलू बाजारों में जैविक उत्पादों की अच्छी मांग हैं परन्तु उतनी मात्रा में आपूर्ति नहीं हो पाती है। जैविक उत्पादों के लिए महानगर प्रमुख घरेलू बाजार है। भारत के वर्गों पर आधारित क्षेत्रों, जनजातीय क्षेत्रों, पूर्वोत्तर ओर पहाड़ी क्षेत्रों के बारे में विचार किया जा सकता है जहाँ आर्गेनिक खेती की सम्भावनाएं तलाशी जा सकती है। भारत में ऑर्गेनिक खेती उद्योग का अनुमान लगभग 20 मिलियन डॉलर है। भारत में जैविक खादों की सम्भावनाओं को निम्न तालिका से समझा जा सकता है।

तालिका 1जैविक खादों की वार्षिक सम्भावित मांग (टन में) |

जैविक खाद	सम्भावित मांग (टन में)
रायज़ोबियम (Rhizobium)	125.9 हजार टन
एजेटोबैक्टर (Azotobactor)	22.2 हजार टन
एजजोस्प्रिलियम (Azospirilluim)	21.9 हजार टन |
पी. घुलनशील सूक्ष्म जीवाणु	65.4 हजार टन |
नीली हरी काई (Blue Green Algae)	112.4 हजार टन
कुल	347.8 हजार टन

Source: Arora et.al (2007)

चूंकि आर्गेनिक खादों का प्रयोग सभी फसलों में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इन खादों की मांग उत्पादन की तुलना में बहुत अधिक है। तालिका से स्पष्ट है। कि इनकी सम्भावित मांग 348 हजार टन है जिसमें यह माना गया हैं कि जैविक खाद के प्रयोग 50 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि में हो रहा है। भारत में लगभग 45 जैविक खाद उत्पादन इकाईयां हैं। इनमें से प्रमुख हैं, किसान एग्रो कैम नदान (Nadad) महाराष्ट्र, मौली बायोटेक, पुने महाराष्ट्र, बायो एग्रो फर्टीलाइजर पुणे महाराष्ट्र, गुजरात स्टेट फर्टीलाइजर्स एण्ड कैमिकल लि0 वडोदरा, गुजरात, सेन्ट्रल लैबोरेट्री शिमला, कर्नाटक कम्पोस्ड डेवलेप्मेन्ट कार्पोरेशन लिमिटेड, बैंगलूर, नेशनल बायो फर्टीलाईजर्स डेवलेपमेन्ट फर्टीलाइजर्स, गाजियाबाद।

तालिका 2 राष्ट्रीय व क्षेत्रीय जैविक खाद उत्पादन एवं विकास केन्द्र (NBDC/RBDC)

1	National Biofertilizer Development Centre, Gaziabad, U.P.,
2	Regional Biofertilizer Development Centre (North), Hisar, Harayana.
3	Regional Biofertilizer Development Centre (Central),
4	JNKVV, Jabalpur, M.P.
5	Regional Biofertilizer Development Centre (West), MPKV, Pune, Maharashtra.
6	Regional Biofertilizer Development Centre (South), UAS, Banglore, Karnataka.
7	Regional Biofertilizer Development Centre (East), OUAT, Bhubaneshwar, Orissa. Regional Biofertilizer Development Centre (North-East), ICAR Research Complex for North Eastern Hill Region, Shillong, Meghalaya.

Source: Arora et.al (2007)

भारत में जैविक खाद का व्यापारिक उत्पादन 1956 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (Indian Agriculture Research Institute) नई दिल्ली तथा एग्रीकल्चर कालेज (जो अब तमिलनाडू कृषि विश्वविद्यालय), कोयमबटूर ने जैविक खादों का आरम्भ किया। जैविक खादों की महत्ता को रासायनिक खादों से अधिक समझने के बाद भारत सरकार में 1983 में एक राष्ट्रीय कार्यक्रम की शुरुआत की जिसे नेशनल प्रोजेक्ट आन डेवलेपमेन्ट एण्ड यूज़ आफ फर्टीलाईजर कहा गया। इस कार्यक्रम के अधीन भारत में विभिन्न स्थानों पर एक राष्ट्रीय व छः क्षेत्रीय स्तर पर जैविक खाद उत्पादन व विकास केन्द्र स्थापित किये गये, जिन्हें तालिका 2 में दिखाया गया है।

7.9 अभ्यास प्रश्न

1. कृषि क्षेत्र में मुख्यतः जैविक खेती के लिए कौनसी तकनीक अपनाई जाती है।

2. सत्य/ असत्य बताईये

गोबर की खाद रासायनिक खाद है।

(सत्य/असत्य)

3. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

(क) गोबर की खाद में नाइट्रोजन,..... पोषक पाएं जाते है जो मृदा उर्वरता के लिए आवश्यक हैं।

(ख) वर्मीकम्पोस्ट बनाने में मुख्यतः ..... प्रयोग होता है।

.....का प्रयोग मुख्य रुप से धान की फसल में होता है।

4. एक शब्द में उत्तर दीजिए

किसी एक अच्छा जैविक कीटनाशक का नाम बताईये।

5. जैविक खेती के प्रमुख सिद्धान्त क्या हैं।?

7.10 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके होंगे कि जैविक व आर्गेनिक खेती में कृषि तंत्र के उन सभी अव्ययों को सम्मिलित किया जाता है जो पर्यावरणीय सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से खाद्यान उत्पादन में सहायक है। जैविक खेती करने का वह एकीकृत तरीका है जिसमें पारिस्थितीतंत्र में सन्तुलन बनाए रखने के साथ-साथ सतत

कृषि उत्पादकता को बिना रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के प्रयोग द्वारा किया जाता है। जैविक खेती भारत में वैदिक युग से चली आ रही है। परन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान्न मांग को पूरा करने के लिए हरित क्रान्ति को अपनाया गया। जिससे पर्यावरण व मृदा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यद्यपि हमारे देश में अभी भी जैविक खेती को पूरी तरीके से प्रयोग में लाना एक समस्या है, क्योंकि कृषक गरीब और अनपढ़ है और किसानों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। जैविक कृषि से न केवल किसानों को बल्कि मृदा उर्वरता को संरक्षित रखने में व पर्यावरण को सुरक्षित रखने व सतत विकास में सहायता मिलती है। भारत में जैविक खेती की अपार सम्भावनाएं हैं। बायोतकनीकि या आर्गेनिक खेती को बढ़ावा देने के लिए सरकार के द्वारा विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की गई है। बायोतकनीक एक शक्तिशाली शस्त्र के रुप में खेती के उत्पादन को बढ़ाने में प्रयोग की जा रही है। बायोतकनीकि एक शक्तिशाली शस्त्र के रुप में प्रयोग किया जाता है |

7.11 शब्दावली

- **जीन (Gene)** – किसी भी जीव में अनुवांशिक गुणों के वाहक कुछ खास पदार्थ होतें हैं जिन्हें जीन कहा जाता है। ये जीन गुणसूत्रों (क्रोमोसोम) पर स्थित होते हैं और गुणसूत्र प्रत्येक कोशिका के केन्द्र में पाये जाते हैं। गुणसूत्रों के माध्यम से जीवों के गुण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित होते हैं।
- **बैक्टीरिया तथा फफूंद (Bacteria and Fungi)** – यह वह अतिसूक्ष्म जीवाणु होते हैं जो आँखों से नहीं दिखाई देते हैं केवल सूक्ष्मदर्शी यंत्र (Micro Scope) से दिखते हैं। कुछ मानव जाति व पौधों के लिए लाभ दायक व हानिकारक दोनों हो सकते हैं। यह ऑर्गेनिक खेती में सहायक होते हैं।
- **वर्मी कम्पोस्ट (Vermi Compost)** - वर्मी कम्पोस्ट केंचुओं द्वारा उत्पादित कार्बनिक खाद है। यह केंचुओं के मल, कार्बनिक पदार्थ (हयूमस), केचुओं के कोकोन्स का एक मिश्रण है। यह मृदा को पोषण प्रदान करते हैं।

7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क जैव उर्वरकों का प्रयोग ख जैव कीटनाशक और जैव रोग नियंत्रण की विधियों को प्रयोग में लाना।
2. असत्य
3. क.पोटाश, फॉस्फोरस, ख. केंचुए, ग.नीली हरी काईBlue Green Algae)
4. नीम पत्ती का घोल
5. क.अन्तनिर्भरता, ख. विविधता, ग.पुनः चक्र (Recycling)

7.13 संदर्भ ग्रंथ सूची/ई-लिंक्स

- Murugan C.S., Anubumani, V. (2007), "Organic Farming: Its Relevance to the Indian context " Kurukshetra, Publishing Division, Ministry of Information and Broadcasting, GOI, New Delhi.

- Arora, Naveen Kumar et.al (2007), Biofertilizer Technology for Economical and Environmentally viable Agricultural Production; Kurukshetra, Publishing Division, Ministry of Information and Broadcasting, GOI, New Delhi.
- सिंह डी0पी0 (1996), "एजेटोबेक्टर – खेती हेतु एक उपयोगी जैविक खाद", प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा
- सिंह, विनय, (2006), "मृदा उर्वरता, उर्वरक एवं पोषक प्रबन्ध", वी0के0 प्रकाशन, बड़ौत
- शर्मा कुलदीप, प्रधान सुधीर (2011), "जैविक खेतीः समस्याएं और संभावनाएं", योजना, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- http://hi.wikipedia.org 7. www.argitech.tnau.ac.in

7.14 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- मिश्र, आर0सी0, कुमार एस0 (2005), "हैण्डबुक ऑफ एग्रीकल्चर", कान्ती प्रकाशन,इटावा (उ0प्र0)
- Wable K.J. et.al (Sept. 2006), "Plant Bioteachnolgy", Yojna, Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Govt. of India, New Delhi. S. Chand and
- Dubey, R.C. (2007), "Biotechnology Scope and Importance", Company Ltd. New Delhi.
- Soule, Judith D. and Piper, Jon K., (1992) "Farming in Nature's Image: An Ecological Approach to Agriculture", Island Press, Washington, D.C.
- Ed. Janet Wallace, (2001) "Organic Field Crop Handbook", Canadian Organic Growers, Ottawa.

7.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बायोतकनीकि व ऑर्गेनिक खेती के लाभों पर प्रकाश डालिए।
2. कृषि में विभिन्न जैविक तकनीकों की विवेचना कीजिए।

इकाई 8- खाद्य सुरक्षा
(Food Security)

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 खाद्य सुरक्षा का आशय
8.4 खाद्य समस्या का स्वरूप
8.5 खाद्य समस्या के कारण
8.6 सरकार की खाद्य नीति
8.7 खाद्य सुरक्षा के उपाय
8.8 अभ्यास प्रश्न
8.9 सांराश
8.10 शब्दावली
8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
8.14 निबन्धात्मकप्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से सम्बन्धित यह आठवीं इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित आर्थिक समस्याओं की चर्चा चलती है और कुछ समस्याओं को अंगुली पर गिना जाता है तो उनमें सबसे प्रमुख समस्या जो सभी सामान्य व्यक्ति को छू जाती है, वह समस्या मुद्रा स्फीति एवं खाद्य सुरक्षा है, मूल्य स्तर में वृद्धि या स्फीति की वृद्धि दर क्या है और इसे हम कैसे नापते है, क्या कारण जिनके कारण स्फीति होती है और स्फीति का क्या प्रभाव अर्थव्यवस्था पर पड़ता है, इससे सबसे अधिक प्रभावित 'कौन होता है और क्यों आदि। खाद्य सुरक्षा का आशय, स्वरूप एवं सरकार की खाद्य नीति और खाद्य सुरक्षा के उपाय के सम्बन्ध में कुछ धारणात्मक तथा महत्वपूर्ण तथ्यों से हम आपको इस इकाई में परिचित करा रहे हैं।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- ✓ खाद्य सुरक्षा का आशय, स्वरूप एवं कारणों को जान सकेंगें।
- ✓ सरकार की खाद्य नीति का वर्णन कर सकेंगे।
- ✓ खाद्य सुरक्षा के उपाय बता सकेंगें।

8.3 खाद्य सुरक्षा का आशय

कृषि क्षेत्र से जुड़ा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है खाद्य सुरक्षा जिसे खाद्य एवं कृषि संस्था) थाव् (ने परिभाषित किया कि ***"सभी व्यक्तियों को सभी समय पर उनके लिए आवश्यक बुनियादी भोजन के लिए भौतिक एवं आर्थिक दोनों रूप में उपलब्धि के आश्वासन के रूप में की है।"*** इस परिभाषा से कुछ बातें उभर कर आती हैं, किसी देश की समग्र जनसंख्या को खाद्य की भौतिक उपलब्धि आवश्यक है। पर्याप्त खाद्य उपलब्धता के लिए पर्याप्त क्रय शक्ति होना चाहिए जिससे खाद्य पदार्थ हासिल कर सकें। स्वस्थ जीवन के लिए उपलब्ध खाद्य, गुणवत्ता और मात्रा दोनों दृष्टिकोण से पोषण सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए। खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य को मजबूत करने के लिए खाद्य उत्पादन में स्वावलम्बिता दीर्घकालीन होनी चाहिए। किसी भी राष्ट्र को खाद्य संभरण की इतनी वृद्धि दर आश्वस्त करनी होगी जिससे न केवल जनसंख्या की वृद्धि का ध्यान रखा जा सके अपितु साथ-साथ लोगों की आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप खाद्य की मांग में वृद्धि की भी पूर्ति की जा सके। विश्व विकास रिपोर्ट 1986 में खाद्य सुरक्षा की परिभाषा इस प्रकार व्यक्त कि, **"सभी व्यक्तियों के लिए सभी समय पर एक सक्रिय, स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त भोजन की उपलब्धि के रूप में है"** किन्तु खाद्य एवं कृषि संस्था ने 1983 में खाद्य सुरक्षा की परिभाषा इस प्रकार व्यक्त कि सभी व्यक्तियों को सभी समय पर उनके लिए आवश्यक बुनियादी भोजन के लिए भौतिक एवं दोनों रूप में उपलब्धि के आश्वासन के रूप में की है।

8.4 खाद्य समस्या का स्वरूप

अध्ययन की सुविधा के लिए खाद्य समस्या के तीन पक्ष माने जाते है -परिमाणात्मक, प्रशासनिक और आर्थिक। इन्हें निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

परिणात्मक पक्ष -इसका सम्बन्ध खाद्यान्नों की मांग व पूर्ति से होता है सामान्यतः खाद्य सामाग्री का उपलब्ध परिमाण प्रायः मांग से कम रहा है, अतः खाद्या समस्या एक अल्पकालीन संकट नहीं अपितु दीर्घकालीन समस्या मानी जाती है। मात्रात्मक पहलू की दृष्टि से पहले की तुलना में स्थिति बेहतर अवश्य हुई है। दीर्घकाल तक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए इनका उत्पादन बढ़ाने के साथ जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण करना होगा।

प्रशासनिक पक्ष -इसका सम्बन्ध वितरण पक्ष से हाता है न कि उत्पादन पक्ष से। सामान्यतः यह संभव है कि खाद्यान्नों का उत्पादन तो बढ़ जाये लेकिन वितरण व्यवस्था के दोषपूर्ण होने से खाद्य समस्या निरन्तर बनी रहती है।

आर्थिक पक्ष-भारत में कई बार यह देखा जाता है कि महंगे अनाज को क्रय करेन के लिए लोगों के पास आवश्यक क्रय शक्ति का अभाव रहता है अर्थात इस पहलू का सम्बन्ध जनता की गरीबी तथा खाद्यान्नों के ऊँचे भावों से होता है।

8.5 खाद्य समस्या के कारण

दीर्घकालीन दृष्टि से, इस समस्या के निम्न कारण उत्तरदायी माने जा सकते है। भारत में वस्तुओं की मांग-सामान्यतः वस्तुओं की माँग बड़े पैमाने पर बढ़ती रही है। मांग में यह वृद्धि मुख्यतः निम्न कारणों से हुई है-:

(1) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि - भारत में जनसंख्या 1951 से 2011 के बीच 36 करोड़ से बढ़कर लगभग 121 करोड़ हो गई तथा इस अवधि के दौरान खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़कर 5 करोड़ टन से लगभग 24 करोड़ टन पहुँच गया लेकिन जनसंख्या वृद्धि व आय से खाद्यान्नों की मांग बड़ रही है। अकाल व सुखे के दौरान देश में खाद्यान्नों की कमी महसूस की जाती है अतः स्पष्ट है कि जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि खाद्य समस्या का प्रमुख कारण मानी जा सकती है।

(2) मांग की ऊँची आय लोच- आमतौर पर कम आय वाले लोगों की आय का अधिकांश भाग आवश्यक वस्तुओं पर खर्च होता है परिणामस्वरूप आय में वृद्धि होने पर अनाज की मांग तेजी से बढ़ती है अतः कम आय वर्ग अनाज के लिए मांग की आय बहुत अधिक रहती है।

आपूर्ति विषयक कारक

सामान्यतः अनाज व खाद्य पदार्थो की आपूर्ति की तुलना से मार्ग तेजी से बढ़ती है। अल्पकालीन हल आयात के द्वारा समय समय पर किये जाते है। लेकिन दीर्घकालीन दृष्टि से आपूर्ति सदैव कम ही रही है। इसके मुख्य कारण निम्न प्रकार से है-:

(1). उत्पादन में धीमी और अनिश्चित वृद्धि- भारत में भोजन का महत्वपूर्ण अश अनाज है -लेकिन उपज की वृद्धि धीमी होने के कारण आपूर्ति सदैव कम बनी रहती है। इस दिशा में हरित क्रांन्ति एक कदम था लेकिन उसका लाभ केवल कुछ क्षेत्रों तक तथा कुछ फसलों तक सीमित हो गया। परिणामस्वरूप के पाँच राज्य अतिरेक उत्पादन कर रहे है, सुखा व बाढ़ आदि ने भी अनाज की कमी को बढ़ाया है। अनाज की आपूर्ति कम व अनिश्चित बनी रहती है। जिसमें खाद्य समस्या और अधिक उलझ जाती है।

(2). कम और घटती बढ़ती आपूर्ति- भंडारण व विपणन की अपर्याप्त सुविधा के कारण खेतिहर अपनी उपज को कीट पतंगों व चूहों आदि से नही बचा पाते है इससे फसल का एक तिहाई भाग नष्ट हो जाता है और शहरी आबादी के संदर्भ में समस्या गम्भीर रूप धारण कर लेती है। कभी कभी लाभ कमाने की चेष्टा से किसान भंडारण कर बाजार में आपूर्ति कर देते है। जिससे खाद्य समस्या उत्पन्न हो जाती है। भारत में गरीबी एक अभिशाप है खाद्य समस्या गरीबों के सन्दर्भ में और बुरी होती है इसके निम्न कारण है-1) अपर्याप्त क्रयशक्ति

सामान्यत: गरीबों के पास पर्याप्त क्रय शक्ति नहीं होने के कारण वे अपेक्षित मात्रा में वस्तुएँ खरीदने में असमर्थ रहते है और जब फसल की स्थिति खराब होती है तो यह स्थिति और अधिक दयनीय हो जाती है।

(3). काम काज का अभाव व बड़े परिवार :- हमारे समाज का एक वर्ग ऐसा है जिसके पास कोई परिसम्पत्ति नहीं है। परिवार में सदस्यों की अधिक है और एसे काम भी नहीं मिलता है तो समस्या और कठिन हो जाती है। अन्य खाद्यान्नों की बढ़ती जमाखोरी, भ्रष्टप्रशासनिक व्यवस्था दीर्घकालीन नीति का अभाव आदि।

8.6 भारत सरकार की खाद्य नीति

आयोजनकाल में खाद्य समस्या के समाधान के लिए सराकार ने चार प्रकार से उपाय किए है। क.खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि की दिशा में प्रयास-खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से सरकार ने तीन प्रकार के उपाय किए है।

1. तकनीकी उपाय - आयोजकाल में खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने के लिए यद्यपि तकनीकी उपायों के महत्व को प्रारम्भ से ही स्वीकार किया गया है लेकिन 1966 के बाद से कृषि विकास की नई युक्ति नीति के अन्तर्गत सिचाई की सुविधाओं के विस्तार पर अधिक बल दिया गया था, लेकिन उसके बाद उन्नत किस्म के बीजों, उर्वरकों, कीटनाशक दवाओं, आधुनिक कृषि मशीनरी इत्यादि के उपयोग को बढ़ाने की ओर ध्यान दिया गया है। खेती में मशीनीकरण भी तेज गति से हो रहा है। टैक्टरों, हार्वेस्टर मशरनों, पम्पसेटों, नलकूपों आदि का प्रयोग बढ़ रहा है। इन तकनीकी उपायों से खाद्यान्नों के उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाने में काफी सहायता मिली है।

2. भूमि सुधार - भारत में कृषि विकास के लिए भूमि सुधारों की आवश्यकता को सैद्धान्तिक रूप से सरकार ने बहुत पहले स्वीकार कर लिया था। परन्तु ये भूमि सुधार दोषपूर्ण थे और इन्हें लागू करने में भी शिथिलता दिखाई गई। अतः उत्पादन पर इनका विशेष अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा।

3. प्रेरक मूल्य नीति - किसानों को उनकी फसलों का अच्छा मूल्य देने से खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी अर्थात् प्रेरक मूल्य नीति का अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए सरकार ने 1965 में कृषि कीमत आयोग गठित किया कृषि लागत व कीमत आयोग यह आयोग विभिन्न कृषि फसलों के लिए वसूली कीमतों व न्यूनतम समर्थन कीमतों की घोषणा करता है।

क. भारत में खाद्य समस्या-भारत में खाद्य समस्या के समाधान के अन्तर्गत सरकार ने अथक प्रयास किये है, लेकिन वे कहां तक सफल रहें हैं इस सम्बन्ध में निष्कर्ष उन्हीं तीन बातों के आधार पर निकाले जा सकते है जो कि खाद्य समस्या के स्वरूप के अर्न्तगत स्पष्ट की गयी है। ये है, उपलब्ध अनाज की मात्रा, लोगों के आहार की कोटि और गरीबों को अनाज की प्राप्यता। इन कसौटियों पर नीति की परख की जाकर कोई उचित व संतुलित निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

ख. खाद्यान्नों के वितरण व्यवस्था के सुधार- पिछले वर्षों में सरकार ने खाद्यान्नों के वसूली मूल्य निर्धारित किये है और निर्धारित कीमतों पर क्रय कर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आम जन को अनाज के उचित वितरण का प्रयास किया ऐसा करने का प्रमुख उद्देश्य यह था कि सभी लोगों के बीच विशेषतः समाज के पिछडे व कमजोर वर्गो के अनाज का उचित वितरण हो सके। ऐसे समय जब देश में खाद्य स्थिति उच्छी नही थी देश ऐसे क्षेत्रों में विभक्त किया गया जो यथा सम्भव आत्म निर्भर रखे जा सकें अर्थात इसके लिए प्रत्येक क्षेत्र में अधिक व कम उपज वाले क्षेत्रों को शामिल किया गया, तथा यह नियंत्रण किया गया कि अनाज का व्यापार क्षेत्र विषेष के भीतर ही किया जा सकता था। साथ ही गेहूँ तथा चावल के व्यापार का सरकारीकरण एवं थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण समाप्त कर दिया गया।

ग. माँग एवं कीमत में नियत्रण- इस हेतु सरकार ने तीन तरह के उपाय किये है ये है राशन व्यवस्था,थोक एवं खुदरा व्यापारियों और उपभोक्ता के स्टाकों से सम्बन्धित मागों को न्यूनतम स्तर पर बनाए रखा जाए, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण हेतु परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रचार आदि। ये सभी उपाय खाद्य पदार्थों की कीमत एवं मांग में नियत्रण रखेंगें।

घ. गरीबी को कम करने की कोशिश- विभिन्न माध्यमों से इस समस्या का समाधान परोक्ष रूप से खाद्य समस्या के निवारण में सहायता करता है इनमें प्रमुख रूप से श्रम प्रधान तकनीक का उपयोग अधिक किया जाए। जिससे रोजगार अधिक मिल सके, भूमि की सीमा बन्दी नीति से प्राप्त अतिरिक्त भूमि का वितरण, उत्पादक कार्यो के लिए रियायती दरों पर ऋण की व्यवस्था आदि एवं इसके अतिरिक्त अनेक गरीबी उन्मूलन व रोजगार योजना, अन्त्योदय योजना प्रमुख रही है। परिणाम स्वरूप अनेक निर्धन परिवारों को अपेक्षाकृत मात्रा में नीची कीमत पर अनाज प्राप्त कराया जाता रहा है। इस सन्दर्भ में कुछ अन्य उपलब्धियों का भी उल्लेख किया जा सकता है। उदाहरण के लिए घरेलू उत्पादन और आयात के सहारे अनाज की कुल आपूर्ति जो देश में उपलब्ध होती है। विभिन्न प्रदेशों और वर्गो के बीच उसके समुचित वितरण के सिलसिले में आवश्यक कदम उठाए गए है। इसी प्रकार कीमत नीति द्वारा निम्न वर्ग को सस्ते दाम पर अनाज सुलभ हो और उत्पादकों को अपने माल की उचित कीमत मिले इसका निदान करने की कोशिश की गयी है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह नजर आता है कि सरकारी नीति के खाद्य आपूर्ति पर अनुकूल प्रभाव पड़े है किन्तु यह परिमाणात्मक कमियों से मुक्त नहीं है। अतः विफलताओं पर भी नजर डालना आवश्यक है। सरकार को खाद्यान्नों की खरीद संग्रह व वितरण की एक ऐसी व्यवस्था अपनानी चाहिए जो अभाव व आधिक्य दोनों प्रकार के वर्षों की कठिनाइयों को दूर करके उत्पादकों व उपभोक्ताओं के हितों की भली भाँति रक्षा कर सके। इसके लिए प्रों मिन्हास दारा बतलाई गई कमी को दूर करके एक सुदृढ़ व दीर्घकालीन खाद्य नीति तैयार की जानी चाहिए। खाद्य समस्या के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि किसी भी अर्थव्यवस्था के खाद्य सुरक्षा प्रणाली के निम्नलिखित अंगो का उचित समाधान किया जाए तो खाद्य समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। ये प्रमुख अंग है देशीय उत्पादन को बढ़ावा देना ताकि बढ़ती हुई जनसंख्या की मांग पूरी की जा सके। और इसके साथ-साथ जनसंख्या के काफी बडे भाग में अल्प पोषण कम किया जा सके। खाद्य पदार्थो की वसली और संग्रहण के लिए न्यूनतम आलम्बन कीमतें (Minimum Suppoty Price) उपलब्ध कराना। सार्वजनिक वितरण की प्रणाली को चलाना और बफर स्टाँक कम करना ताकि प्राकृतिक विपत्तियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हाने वाली अस्थायी दुर्लभता का मुकाबला किया जा सके। और खाद्य कीमतों के ऊपर धकेलने का प्रयास करने की समस्या प्रतिशक्ति का कार्य कर सके। पहली योजना में कृषि को प्राथमिकता क्रम में पहला स्थान दिया गया। इस योजना के आखिरी वर्ष में खाद्यान्नों का उत्पादन योजना में निर्धारित लक्ष्य से ऊचां था। अतः खाद्यान्नों की घरेलू पूर्ति में सुधार होने से आयातों में भारी कमी हुई। इनका प्रभाव खाद्यानों की कीमतों पर पड़ा और उनमें भारी कमी हुई। इस अनुकूल स्थिति से संतुष्ट होकर सरकार और योजना आयोग को विश्वास से चला था कि देश को खाद्य संकट से मुक्ति मिल गई। परन्तु यह विश्वास आकरण था क्योंकि खाद्य स्थिति में सुधार अनुकूल मौसम के कारण था, जो अस्थाई था दूसरी योजना की अवधि में, विशेष रूप से 1959 और 1960 में, खद्यान्नों के भारी अभाव की स्थिति थी। अतः इन वर्षो में खाद्यान्नों का काफी आयात किया गया। 1963-64 के वर्ष को छोड़कर तीसरी योजना के अन्य सभी वर्षो में खाद्यान्नों का उत्पादन 1960-61 के स्तर पर अथवा उससे नीचा था। योजना की अवधि में खाद्य संकट के कारण जिस बड़े पैमाने पर खाद्यान्नों का आयात किया गया, उससे भुगतान शेष की स्थिति काफी बिगड़ गई। तीसरी योजना के बाद) विशेषतया हरित क्रांन्ति के काल में (खाद्यान्नों के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। सरकार ने भारतीय

खाद्य निगम के माध्यम में खाद्यान्नों की काफी वसूली की है और बफर भंडारों का निर्माण किया है। परिमाणात्मक स्तर पर खाद्य समस्या का निदान हो चुका है तथापि गुणात्मक स्तर पर अभी बहुत कुछ करना बाकी है। अभी भी करोड़ो लोग भुखमरी और कुपोषण का शिकार है, इस संदर्भ में निम्नलिखित तथ्यों की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है,

1) जनसंख्या का एक बहुत बड़ा वर्ग गरीबी रेखा से नीचे रहने को मजबूर है।

2) प्रति व्यक्ति अनाज का उपभोग न केवल कम है बल्कि उसमें समय के साथ गिरावट आई है।

3) ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रति दिन और शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रति दिन को न्यूनतम आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया है। देश के 70-80 परिवार न्यूनतम कैलोरी आवश्यकताओं को पूरा कर पाने में असमर्थ थे

4) बहुत से लोग सूक्ष्म पोषण तत्वों जैसे विटामीन ।, विटामीन ब्, आयरन, नियासिन, रिबोफ्लेबिन, थियामिन इत्यादि की कमी से पीड़ित है; तथा

5) मानवमितीय मापदंडों के आधार पर, पोषाहार अवस्था अनुसार, देश के 50 प्रतिशत व्यस्क और 55 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार है। वस्तुतः भुखमरी और कुपोषण का व्यापक स्तर पर होना ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली को बनाए रखने का औचित्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

खाद्य पदार्थो की ऊंची कीमतें-भारत में खाद्यान्नों की निरन्तर बढ़ती कीमतों ने खाद्य संकट को बहुत अधिक गम्भीर बना दिया है। इस देश में श्रमजीवी वर्ग जीवन निर्वाह के लिए केवल खाद्यान्नों पर निर्भर है। इस वर्ग के लोगों की खाद्यान्नों की मांग बेलोच है। अतः व्यापारी और बड़े किसान अभाव की स्थिति में अपने मुनाफे बढाने के उद्देश्य से खाद्यान्नों की बड़े पैमाने पर जमाखोरी करते है। खाद्य नीति की विफलताएँ-सरकार की खाद्य नीति की विफलता का सम्बन्ध अकुशल प्रबंधन से जुड़ा हुआ है क्योंकि देश में अनाज के सम्बन्ध में भारी क्षेत्रीय असमानताएं विद्यमान है जो कि गंभीर समस्या है। अनाज का उत्पादन बढ़ा तो है लेकिन संतोषजनक नहीं है। इस सन्दर्भ में एक बात का स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि हमारी खेती अभी भी मौसम की दासता से मुक्त नहीं है तथा दालों की उपज में वृद्धि की दर बहुत कम है।

अनाज वसूली की नीति का विफलता और सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए अनाज सुलभ कराने के लिए आयात पर निर्भरता के परिणामस्वरूप अनाज की उपज बढ़ाने के प्रयत्नों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है जिससे कीमतों में वृद्धि हुई है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अनाज की कीमतें तेजी से बढ़ा दे इस वस्तु स्थिति में मजदूरी बढ़ाकर और गरीब वर्ग के जीवन निर्वाह व्यय में वृद्धि करके मुद्रास्फीति रूपी आग को भड़काया हैं। दूसरी और दालों की मूल्य वृद्धि का गरीब पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा है क्योंकि दाले ही प्रोटीन का प्रमुख स्रोत को पूरा करना भले ही मुश्किल न हो।

8.7 खाद्य सुरक्षा के उपाय

खाद्य सुरक्षा का आधारभूत अर्थ होता है लोगों को आर्थिक और भौतिक रूप से खाद्यान्न सुलभ होना। जहाँ तक भौतिक सुलभता का प्रश्न है, वह उत्पादन में बढ़ोतरी करके प्राप्त की जा सकती है, या खाद्यान्नों के आयात के द्वारा भी। किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। खाद्य सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि लोग खाद्य क्रय के लिए आर्थिक रूप से समर्थ हों यानि, उनके पास पर्याप्त क्रय शक्ति हो ताकि वे आवश्यक मात्रा में खाद्य खरीद सके। हालाकि गत वर्षों में भारत खाद्य के मामलों में सुरक्षित हो गया है, फिर विश्व खाद्य संगठन का अनुभव है करोड़ों भारतवासी अभी भी चिरंतन खाद्य असुरक्षा के दुष्चक्र में फंसे है। इनमें सीमांत किसान, जन जातियां, दलित, भूमिहीन मजदूर और अस्थायी मजदूर शामिल है। दूसरे, राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता का आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं है कि राज्य या प्रदेशिक स्तर पर भी आत्मनिर्भरता है। भारत में केवल 5 राज्यों में ही अतिरिक्त खाद्य उत्पादन होता है जबकि

अन्य राज्य खाद्य की कमी वाले राज्य है। खाद्य सुरक्षा बनाये रखने के लिए अतिरिक्त बचे हुए अन्न वाले राज्यों से कमी वाले राज्यों में निर्बाध प्रवाह होना चाहिये। तीसरे, उच्चतर खाद्यान्न उत्पादन से खाद्य सुरक्षा की समस्या स्वतः हल नहीं होता। इससे यह गारंटी नही होती कि जरूरतमंद को खाद्यान्न उपलबध है। ऐसी स्थिति तब पैदा होती है जब निर्धन लोग आय या क्रय क्षमता के अभाव के कारण, पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न नहीं खरीद पाते। इस दशा में खाद्य अधिक्य की बहुत ही भ्रामक स्थिति का निर्माण हो जाता है। कुल खाद्यान्न का लगभग 85 प्रतिशत मनुष्यों के उपभोग के लिए उपलब्ध है जबकि 15 प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादन का प्रयोग बीज या चारे के लिए होता है, या व्यर्थ हो जाता है। खाद्यान्नों की उपलब्धता उत्पादन से भिन्न भी हो सकती है। उत्पादन से अधिक उपलब्धता दो माध्यमों से होती है पहला विदेशों से अन्न आयात करके उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है। दूसरी और निर्यात से उपलब्धता घट सकती है। एक खास वर्ष में विद्यमान भंडार से खाद्यान्न निकालकर उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है। अतः भंडार में परिर्वतन से भी उपलब्धता पर प्रभाव पड़ता है। पूर्व दशक की अपेक्षा 1990 के दशक में कृषि उत्पादन में काफी मंदी आई है। 1980 के दशक में प्रति वर्ष 3.2 प्रतिशत की तुलना में 1990 के वर्षों में केवल 1.5 प्रतिशत की दर से खाद्य उत्पादन बढ़ा और 2000 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर से भी कम है।

खाद्य उत्पादन वृद्धि की धीमी गति और बढ़ते खाद्यान्न भंडार के परिणामस्वरूप जनता को उपलब्ध खाद्यान्नों की मात्रा 1991 के प्रति दिन प्रति व्यक्ति क औसत 510 ग्राम से गिर कर 2010 में 451 ग्राम पहुँच गई। नवम पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज के अनुसार अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में लोग औसतन कुल खर्च का 63 प्रतिशत भोजन पर व्यय करते हैं और नगरों में लगभग 55 प्रतिशत भोजन पर खर्च करते हैं। खाद्यान्नों पर होने वाला व्यय ग्रामीण क्षेत्रों में 45 प्रतिशत और नगरीय क्षेत्रों में 32 प्रतिशत के लगभग बैठता है। जनसंख्या का निम्नतम आय वाला 30-40 प्रतिशत वर्ग अपने कुल व्यय का 70 प्रतिशत से अधिक भोजन पर खर्च करता है। इस वर्ग में ग्रामीण लोग खाद्यान्न पर 50 प्रतिशत आय तथा शहरी 40 प्रतिशत आय से अधिक खर्च करते है।

दालों व अनाजों की कुल उपलब्धता

(प्रति व्यक्ति निवल उपलब्धता प्रतिदिन ग्राम में)|

वर्ष	अनाज	दालें	कुलयोग
1961	399.7	69.0	468.7
1971	417.6	51.2	468.8
1981	417.3	37.5	454.8
1991	468.5	41.6	510.1
2000	426.0	32.0	458.0
2009 - 10	421.0	30	451.0

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण

खाद्य समस्या के स्वरूप, प्रस्तावित समाधानों और सरकारी नीति के उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि समस्या बड़ी भी है और गम्भीर भी है। सरकारी नीति अभी भी इस चुनौती का सामना करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त नही कर पाई अतः एक उचित खाद्य नीति क्या हो यह एक यक्ष प्रश्न बना हुआ है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक उचित खाद्य नीति

सरकार ने खाद्य-समस्या को हल करने के कई प्रयत्न किये है, लेकिन उसको खाद्य-समस्या के सभी पहलुओं के उचित हल निकालने में अभी तक पूरी सफलता नहीं मिलि है। खाद्य-समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है-:

(1) आधुनिक व गहन खेती की आवश्यकता - भारत में नई भूमि पर विस्तृत खेती की सम्भावनाएँ बहुत कम हैं। अतः वर्तमान कृषत भूमि पर गहन खेती के उपाय अपनाकर प्रति हेक्टेयर उपज में वृद्धि की जनी चाहिए इसके लिए सुधरे हुए बीजों, उत्तम खाद और रासायनिक उर्वराकों, उत्तम हल तथा अन्य औजारों और खेती के सुधरे तरीकों का प्रयोग करना चाहिए।

(2) वर्षा पर आश्रित तथा सूखी खेती के विस्तार की आवश्यकता - भारत में वर्षा पर आश्रित क्षेत्र से लगभग 45 प्रतिशत खाद्यान्न प्राप्त होते है। विभन्न श्रोतों से कुल कृषिगत क्षेत्र फल के लगभग 1/3 भाग में सिचाई की जाती है और शेष 2/3 क्षेत्र आज भी वर्षा पर आश्रित रहता है। लगभग समस्त मोटे अनाज, दालें, अधिकांश कपास व तिलहन वर्षा पर आश्रित क्षेत्रों में बोये जाते है। अतः स्पष्ट है कि भारत में बहुचर्चित दूसरी हरित क्रान्ति सूखी-कृषि की ही क्रान्ति होगी।

(3) प्रति व्यक्ति अनाज व दालों क उपभोग में स्थिरता या गिरावट की समस्या को हल किया जाना चाहिए।

(4) फसलों की रक्षा- भारत में प्रति फसल का एक बड़ा हिस्सा टिड्डियों, चूहों, कीड़ों, फसलों क रोगों से नष्ट हो जाते है। कीड़े मारने की दवाओं के प्रयेग से भी फसलों को रोग नहीं लगता। फसलों को बाढ़, अनावृष्टि व अन्य खतरों से बचाने के लिए इनका बीमा कराया जाना चाहिए। इनका सुरक्षित भण्डार किया जाए।

(5) संस्थागत परिर्वतन- इनके अन्तर्गत भूमि-सुधार व बिक्री-सम्बन्धी नये संगठनों आदि का समावेश किया जाता है। सहकारी संयुक्त खेती करनी चाहिए।

(6) विस्तार कार्यो के लिए प्रभावशाली संगठन-केवल संस्थागत परिर्वतन से ही काम नही चलेगा, बल्कि सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं जैसे ग्राम पंचायतों, सहकारी संगठनों, जिला ग्रामीण-विकास-ऐजेन्सियों ;क्त्क्ाद्ध आदि को अधिक सक्रिय व सफल बनाया जाना चाहिए। कृषिकों को कृषिगत साधन खाद, बीज, कीटनाशक दवाएँ आदि उचित समय पर उचित मूल्यों पर उचित मात्रा में उपलब्ध की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में प्रशासनिक कार्य कुशलता बढ़नी चाहिए।

(7) देश व्यापी सार्वजनिक वितरण की प्रणाली का महत्व प्रदान किया जाए।

(8) उपयोग में सुधार एवं परिर्वतन किया जाना चाहिए।

(9) जनसंख्या का नियन्त्रण- जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण स्थापित किये बिना खाद्यान्नों में स्थायी आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में कठिनाई होगी।

(10) खाद्यान्नों के लिए आर्थिक सहायता कम करने की आवश्यकता।

(11) खाद्यान्नों के सम्बन्ध में उचित मूल्य नीति की आवश्यकता एवं निजी संस्थान क्रय को बढ़ावा देना।

(12) अधिक स्थिर व अपेक्षाकृत अधिक स्थायी व दीर्घकालीन खाद्य नीति - की आवश्यकता खाद्य नीति के सम्बन्ध में योजना आयोग के पूर्व सदस्य तथा भारत के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रो.बी .एस .मिन्हास** का यह मत था कि ***"एक स्थिर खाद्य-नीति के अभाव में खाद्यान्नों के उत्पादन के क्षेत्र में हमारी कमियाँ और भी तीव्र हो जाती है"।***

हमारी खाद्य नीति काफी अस्थिर भी रही है। एक वर्ष खुले बाजार में खरीद, दूसरे वर्ष एकाधिकार खरीद, तीसरे वर्ष व्यापारियों व मिलर्स पर लेवी और चौथे वर्ष में इनमें से कुछ का मिश्रण तथा पाँचवें वर्ष में पुनः इनमें से किसी भी एक पर वापस चले जाने की स्थिति आदि। इस प्रकार पिछली शताब्दी में एक स्थाई व स्थिर खाद्य-नीति की कमी ने हमें बहुत हानि पहुँचाई है। इसी के फलस्वरूप हमें खाद्यान्नों के आयात की शरण लेनी पड़ी है, जिसमें दीर्घकाल तथा रियायती शर्तो पर पी .एल .480 के आयात व आजकल व्यावसायिक आयात भी शामिल होते है

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन - इसका प्रारम्भ रबी मौसम 2007-08 से केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में हुआ। इसका उद्देश्य 11वीं योजना) 2007-12) के अन्त तक चावल, गेहूँ और दलहनों का उत्पादन क्रमशः 10, 8 और 2 मिलियन टन करना, रोजगार सृजन तथा किसानों के विश्वास की बहाली।

- यह योजना कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय द्वारा संचालित होती है।
- वर्तमान में यह देश के 17 राज्यों के 476 चिन्हित जिलों में कार्यान्वित की जा रही है।
- इस मिशन के तीन प्रमुख संघटक हैं एन.एफ.एस.एम-.चावल, एन.एफ.एस.एम-.गेहूँ तथा एन.एफ.एस.एम-दलहन।
- इसके तहत क्षेत्र विस्तार और उत्पादकता संवर्द्धन, मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता की वापसी, रोजगार अवसरों के सृजन, किसानों में आत्मविश्वास की वापसी तथा कृषि स्तर की मितव्ययिता के संवर्धन के जरिए उत्पादन वृद्धि के प्रयास किये जा रहे हैं।
- 2010-11 से नई पहल के रूप में ए3पी एन.एफ.एस.एम-दालों के भाग के रूप में शुरू हुआ। इसके तहत तूर, उड़द, मूंग, चना और मसूर सहित सम्भावित दलहन क्षेत्र का 1 मिलियन हेक्टेयर सघन खण्डों में तकनीकी के बड़े स्तर पर प्रदर्शन के लिए लिया गया है।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन देश के 17 राज्यों के 476 चिन्हित जिलों में कार्यान्वित की जा रही है।

8.8 अभ्यास प्रश्न

1. खाद्य सुरक्षा से क्या आशय है?
2. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन को संक्षेप में बताइए?

8.9 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या मुद्रा स्फीति है। अर्थव्यवस्था को मुद्रा स्फीति के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए इसलिए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना गया। मुद्रा स्फीति की माप के लिए दो प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है। तथापि इन समस्याओं को दर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या मुद्रा स्फीति के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगें ।खाद्य समस्या का स्वरूप क्या है ।खाद्य समस्या के कारणों एवं भारत सरकार की खाद्य नीति और भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक उचित खाद्य नीति का विवेचन इस इकाई में किया गया है।

8.10 शब्दावली

- **खाद्य सुरक्षा**-खाद्य सुरक्षा से तात्पर्य है कि लोगो को व्यावहारिक और आर्थिक तौर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना।
- **खाद्य सहायता**-यह उपभोक्ता सहायता और सुरक्षित भंडार के वहन मूल्य का कुल योग होता हैं।

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 2

1-देखिए 8.8,

2- देखिए 8.7।

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
- Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, HimalayaPublishing House.
- Rao, Hanumantha C.H. (2006) Agriculture, Food Security Poverty and Environment, Oxford University Press.
- दत्त, रूद्र एवं केएम.पी सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एसचन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।
- लाल एस .के.एवं एस .एन.लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण -, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

8.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture.
- business.gov.in/indian economy/agriculture • आर्थिक सर्वेक्षण (विभिन्न अंक, वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना योजना आयोग (विभिन्न अंक), नई दिल्ली।

8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. खाद्य सुरक्षा से क्या आशय है? इस समस्या से निवारण हेतु सरकार ने क्या कदम उठायें स्पष्ट कीजिए

इकाई 9-कृषि उत्पादन फलन और आगत-निर्गत सम्बन्ध
(Agricultural Production Function and Input-Output Relationship)

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 उत्पादन फलन
9.4 उत्पादन फलन की मान्यताएँ
9.5 उत्पादन फलन की विशेषताएँ
9.6 उत्पादन फलन के प्रकार
9.6.1 बढ़ता हुआ उत्पादन फलन
9.6.2 घटता हुआ उत्पादन फलन
9.7 आगत-निर्गत सम्बन्ध या साधन उत्पाद सम्बन्ध
9.8 अभ्यास प्रश्न
9.9 सारांश
9.10 शब्दावली
9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.13 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.14 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

उत्पादन फलन, सम्बन्ध एवं नियम से सम्बन्धित यह नवाँ इकाई है। इससे पहले की इकाई में आप खादय सुरक्षा एवं इसके विभिन्न पहलुओं की प्रकृति तथा उद्देश्य के बारे में ज्ञान प्राप्त किये।

प्रस्तुत इकाई में उत्पादन फलन एवं आगत-निर्गत सम्बन्ध के बारे में विस्तार से लिखा गया है। किसान को अधिकतम लाभ कैसे प्राप्त हो। इसको उदाहरण के द्वारा समझाया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उत्पादन फलन को समझा सकेंगे तथा कुल उत्पादन एवं सीमान्त उत्पाद में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे। इसके अलावा आप आगत-निर्गत के उद्देश्य एवं सम्बन्ध का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि

- ✓ उत्पादन फलन क्या है?
- ✓ आगत-निर्गत सम्बन्ध किस प्रकार से किसान को अधिकतम लाभ प्राप्त करने में मदद करता है।
- ✓ बढ़ता हुआ उत्पादन फलन एवं घटता हुआ उत्पादन में क्या अन्तर है?

9.3 उत्पादन फलन

उत्पादन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत उत्पादन कार्य उत्पादन के अनेक साधनों (भूमि, श्रम, पूँजी, साहस तथा संगठन) के सामूहिक सहयोग एवं साधनों के एक विशेष सम्मिश्रण (combination) से सम्पन्न किया जाता है। उत्पादन के साधनों को अर्थशास्त्र की भाषा में आगत अथवा आदा (Input) कहा जाता है तथा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं को निर्गत अथवा प्रदा (Output) कहते है। किसी फर्म के उत्पादों तथा आगतों के बीच के सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है। उत्पादन फलन यह बताता है कि एक दिये हुए तकनीकी ज्ञान और प्रबन्ध योग्यता की सहायता से आगतों के विभिन्न संयोजन से उत्पादन की अधिकतम मात्रा किस प्रकार प्राप्त कर सकता है। संक्षेप में, उत्पादन फलन आगत और इसके परिणामस्वरूप उत्पादित निर्गत के बीच का भौतिक सम्बन्ध है। स्पष्टतया उत्पादन फलन उत्पादन संभावनाओं की वह अनुसूची या सारणी है जो यह बताती है कि आगतों के विभिन्न संयोगों से निर्गत की कितनी मात्रा प्राप्त होती है जबकि प्रौद्योगिकी दी गई हो। उत्पादन फलन शुद्ध रूप से निर्गत-आगत के तकनीकी सम्बन्ध को दर्शाता है। यह अनुपात के नियम की चर्चा करता है, जिसमें आगत को एक निश्चित अवधि में निर्गत में परिवर्तन या रूपान्तरण करने का कार्य करता है। इस तकनीकी सम्बन्ध को फलन के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$\mathbf{O= f (I)}$$

जहाँ,

O = वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन है; अथवा निर्गत है,

I = उत्पादन के साधन अथवा आगत है जिसके द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाता है।

F = फलन है, जिसका अर्थ है आश्रित (depends upon) इस प्रकार स्पष्ट है कि निर्गत, आगतों का फलन (Output is a function of input) है। यदि उदाहरण के लिए मान लें के आगत केवल 'श्रम एवं पूँजी' है, तब हम लिख सकते है:

$$\mathbf{O= f (L, C)}$$

जहाँ,

L = श्रम, C = पूँजी' है

साधारण भाषा में यह समीकरण यह बताता है कि उत्पादन की मात्रा श्रम तथा पूँजी पर निर्भर है। इस समीकरण में यह माना गया है कि उत्पादन के लिए दो साधनों का प्रयोग किया गया है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता है। उदाहरणतया, एक किसान अपने फसल के उत्पादन के लिए श्रम एवं पूँजी के अतिरिक्त वह अन्य कई साधनों जैसे कि बीज, उर्वरक, सिंचाई, भूमि के उपजाऊपन इत्यादि पर निर्भर करता है। इस प्रकार के उत्पादन फलन को नीचे दिये हुए ढ़ग से लिखा जा सकता है :

O= f (X1, X2, X.3.....Xn) +U

इस उत्पादन फलन का अर्थ है कि उत्पादन (O) की मात्रा कई साधनों जैसे (X1, X2, X.....) आदि पर निर्भर करती है। उत्पादन फलन में लिखे गये अक्षर (U) का अर्थ है, कुछ 'अन्य अनियन्त्रित कारण' जो कि उत्पाद की मात्रा को प्रभावित करते है। यह समीकरण केवल यह दर्शाता है कि साधनों की मात्रा में परिवर्तन करने से उत्पादन में भी परिवर्तन आता है। परन्तु प्रश्न यह है कि साधनों की मात्रा के परिवर्तन से, वास्तव में, उत्पादन में कितना परिवर्तन होगा। उदाहरणस्वरूप, एक किसान इस बात को जान लेने से संतुष्ट नहीं होगा कि किसी फसल का उत्पादन बीजों, उर्वरक, सिंचाई आदि के प्रयोग पर निर्भर करता है। वह तो उत्पादन (निर्गत) तथा उत्पादन के साधन (आगत) के बीच के मात्रिक सम्बन्ध को जानना चाहेगा। इसलिए अन्त में, इस उत्पादन फलन को एक मात्रिक सम्बन्ध दर्शाने वाले समीकरण (algebric expression) के रूप में दिखाना आवश्यक हो जाता है। उदाहरणस्वरूप,

O= a+bx1

यह बताता है कि उत्पादन (O) की मात्रा, साधन X1 की मात्रा बढ़ने पर कितनी बढ़ेगी। इस उत्पादन फलन में अचल (fixed) साधनों को नहीं दिखाया गया है।

तालिका 9.1 में उत्पादन फलन का एक संख्यात्मक उदाहरण दिया गया है। बायाँ कालम कारक 1 की मात्रा जिसमें श्रमिक की मात्रा को दिखाया गया है तथा उपर की पंक्ति कारक/आगत 2 जिसमें पूँजी की मात्रा को दिखाया गया है। जैसे-जैसे हम किसी भी पंक्ति में दायीं तरफ जाते हैं, कारक 2 में वृद्धि होती है तथा जैसे-जैसे हम किसी भी कॉलम में नीचे की तरफ जाते है तो कारक 1 में वृद्धि होती है। दोनों कारकों के विभिन्न मानों के लिए, तालिका तद्रुरूप निर्गत स्तर दर्शाती है। उदाहरण के तौर पर, कारक 1 की एक इकाई तथा कारक 2 की 1 इकाई के साथ अधिक निर्गत की 2 इकाई श्रमिक की

तालिका 9.1 : उत्पादन फलन

कारक /आगत	**कारक/आगत 2**					
	पूंजी/मशीनों की संख्या श्रमिकों की 10 संख्या					
श्रमिकों की संख्या	0	1	2	3	4	5
0	0	0	0	0	0	0
1	0	2	4	6	8	10
2	0	4	6	8	10	12
3	0	6	8	10	12	14
4	0	8	10	12	14	16
5	0	10	12	14	16	18

पूँजी की 5 इकाई के साथ निर्गत की 10 इकाई, कारक 2 या पूँजी की 4 इकाई तथा श्रमिक की 3 इकाई के साथ निर्गत की 12 इकाई, पूँजी की 4 इकाई तथा श्रमिक की 4 इकाई के साथ निर्गत की 14 इकाई का उत्पादन करता है। इसी तरह आगतों के विभिन्न संयोग से आगे भी उत्पादन किया जाता है। इस तालिका से अब आप समझ गये होगें कि उत्पादन कलन क्या है और आगतों के विभिन्न संयोग से किस तरह निर्गत प्राप्त होता है।

9.4 उत्पादन फलन की मान्यताएँ

उत्पादन फलन की धारणा निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

1. उत्पादन के साधनों की एक विशेष मात्रा, उत्पाद की केवल एक ही मात्रा को निर्मित कर सकती है, किसी अन्य को नहीं;
2. उत्पादन की भिन्न-भिन्न मात्रा को निर्मित करते समय उत्पादन की टैक्नॉलोजी (technology) में कोई परिवर्तन नहीं होता है;
3. उत्पादन फलन एक निश्चित समय से सम्बन्धित होता है,
4. फर्म उपलब्ध कुशलतम तकनीक प्रयोग करती है।

9.5 उत्पादन फलन की विशेषताएँ

उत्पादन फलन की विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1. एक उत्पादन फलन, एक दी हुई प्रौद्योगिकों के लिए परिभाषित किया जाता है। यह प्रौद्योगिकीय ज्ञान है जो निर्गत के अधिकतम स्तरों को निर्धारित करता है जिसका उत्पादन आगतों के विभिन्न संयोगों को उपयोग में लाकर किया जाता है ,
2. यदि प्रौद्योगिकी में सुधार होता है, तो विभिन्न आगत संयोगों में वृद्धि से प्राप्त होने वाले निर्गत के अधिकतम स्तरों को प्राप्त की जा सकती है। तब हमें एक नवीन उत्पादन फलन प्राप्त होता है;
3. अल्पकालीन उत्पादन फलन में फर्म सभी आगतों में परिवर्तन नहीं कर सकता है। निर्गत स्तर में परिवर्तन लाने के लिए फर्म केवल परिवर्ती आगत में परिवर्तन करता है जबकि स्थिर आगत स्थिर रहती है;
4. दीर्घकालीन उत्पादन फलन में फर्म उत्पादन के सभी साधनों (कारकों) में परिवर्तन ला सकता है; एक फर्म निर्गत के विभिन्न स्तरों का उत्पादन करने के लिए, दीर्घकाल में दोनों कारकों 'स्थिर एवं परिवर्ती' में साथ-साथ परिवर्तन ला सकती है। अतः दीर्घकाल में कोई भी स्थिर आगत नहीं होती है;
5. उत्पादन फलन का कार्य उत्पादन की भौतिक मात्रा (physical quantities of outputs) तथा साधनों की भौतिक मात्रा (physical quantities of inputs) के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या करना है;
6. उत्पादन का सिद्धान्त उत्पादन के नियम की चर्चा करता है। कुशलतम तकनीक में से किसी एक विशेष तकनीक का चुनाव, कीमत पर निर्भर करता है न कि तकनीक पर। यहाँ पर आप को बता दें कि एक कुशलतम तकनीक विधि जरूरी नहीं है कि आर्थिक दृष्टि से भी कुशलतम हो;
7. उत्पादन फलन स्थैतिक अर्थशास्त्र का विषय है क्योंकि यह (उत्पादन फलन) तकनीकी ज्ञान का स्तर, साधनों की कीमतों तथा समयावधि को निश्चित मानकर कार्य करता है।

9.6 उत्पादन फलन के प्रकार:

अभी तक आप समझ गये होगें कि उत्पादन फलन, उत्पाद की मात्रा तथा साधन की मात्रा के बीच एक विशेष सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। साधरणतया, उत्पादन फलन दो प्रकार के होते हैं

1. बढ़ता हुआ उत्पादन फलन, तथा
2. घटता हुआ उत्पादन फलन

9.6.1 बढ़ता हुआ उत्पादन फलन

साधनों की मात्रा के बढ़ने पर जब उत्पाद की की कुल मात्रा में भी वृद्धि होती है तो ऐसे उत्पादन फलन को एक बढ़ता हुआ उत्पादन फलन कहा जाता है। बढ़ता हुआ उत्पादन फलन को तीन श्रेणीयों में बाँट सकते है - **(अ)** बढ़ता हुआ उत्पादन फलन जिसमें एक चल साधन का सीमान्त प्रतिफल बढ़ता जाता है- ऐसे उत्पादन फलन में चल साधन या परिवर्ती आगत में प्रत्येक इकाई के लगाने से कुल उत्पादन में वृद्धि होती है तथा सीमान्त उत्पाद में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। आगत की मात्रा तथा निर्गत की मात्रा में यह सम्बन्ध तब प्रकट होता है जब चल साधन के साथ प्रयोग किये जा रहे अचल या स्थिर साधन का पूर्ण क्षमता तक प्रयोग नहीं हुआ होता है इसलिए चल साधन में वृद्धि करने से स्थिर साधन की अप्रयुक्त क्षमता का प्रयोग होने लगता है फलस्वरूप बढ़ते हुए उत्पादन के साथ-साथ सीमान्त उत्पाद या सीमान्त प्रतिफल में भी वृद्धि होने लगती है। नीचे दी हुई तालिका का इस प्रकार के उत्पादन फलन को स्पष्ट कर रही है

तालिका 9.2

X	धान की बीज की मात्रा (किलोग्राम)	1	2	3	4	5
Y	i धान का कुल उत्पादन (Kg.)	2	5	10	16	24
	ii धान का सीमान्त उत्पादन (Kg.)	-	3	5	6	8

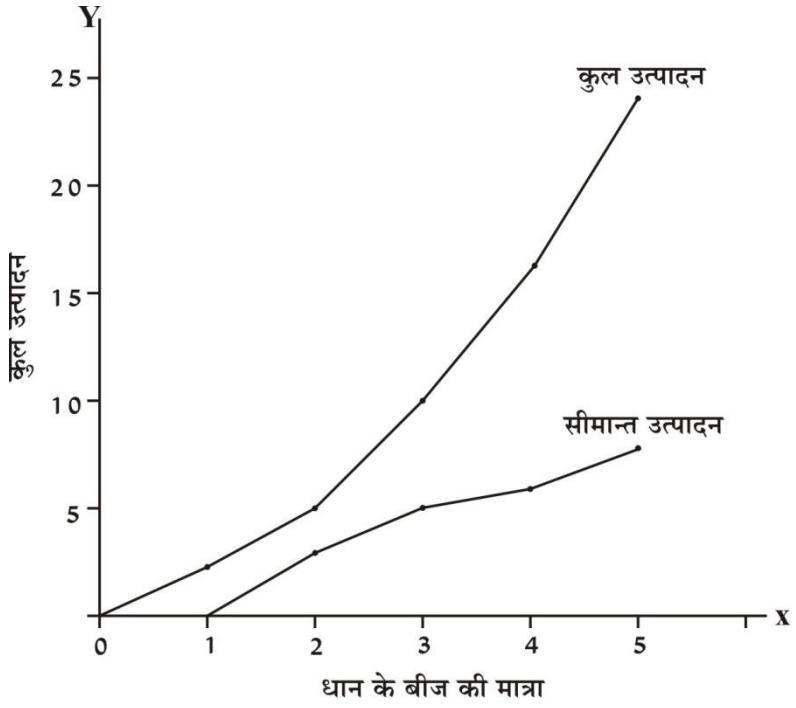

रेखाचित्र 9.1

रेखाचित्र 9.1 रेखाचित्र 9.1 में स्पष्ट है कि चल साधन (धान की बीज) जिसे X अक्ष पर दिखाया गया है। चल साधन में वृद्धि के फलस्वरूप कुल उत्पाद में वृद्धि हो रही है जिससे कुल उत्पाद वक्र ऊपर की ओर उठता जा रहा है। इस प्रकार यह वक्र नीचे की x अक्ष (axis) की ओर उत्तल (convex) हो जाता है। रेखाचित्र में स्पष्ट है कि बढ़ते हुए उत्पादन फलन में एक चल साधन का सीमान्त प्रतिफल बढ़ता जा रहा है, जिसे सीमान्त उत्पादन से दिखाया गया है। आप को यहाँ पर ध्यान देना होगा कि जब स्थिर साधन अपने पूर्ण क्षमता तक पहुंच जाता है तब चल साधन की अतिरिक्त मात्रा सीमान्त प्रतिफल में वृद्धि नहीं ला पाती है। (ब) बढ़ता हुआ उत्पादन फलन, जिसमें एक चल साधन का सीमान्त प्रतिफल नियत/स्थिर (constant) रहता है- इस उत्पादन फलन में, परिवर्ती साधन या चल साधन की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त होने वाली कुल उत्पादन में वृद्धि होती है परन्तु सीमान्त प्रतिफल नियत रहती है। इसे रेखाचित्र 9.2 एवं तालिका 9.3 में दर्शाया गया है।

तालिका 9.3

उर्वरक की मात्रा किलो (X)	धान का कुल उत्पादन किलो (Y)|	सीमान्त उत्पादन (kg)
0	5	-
5	10	5
10	15	5
15	20	5
20	25	5
25	30	5

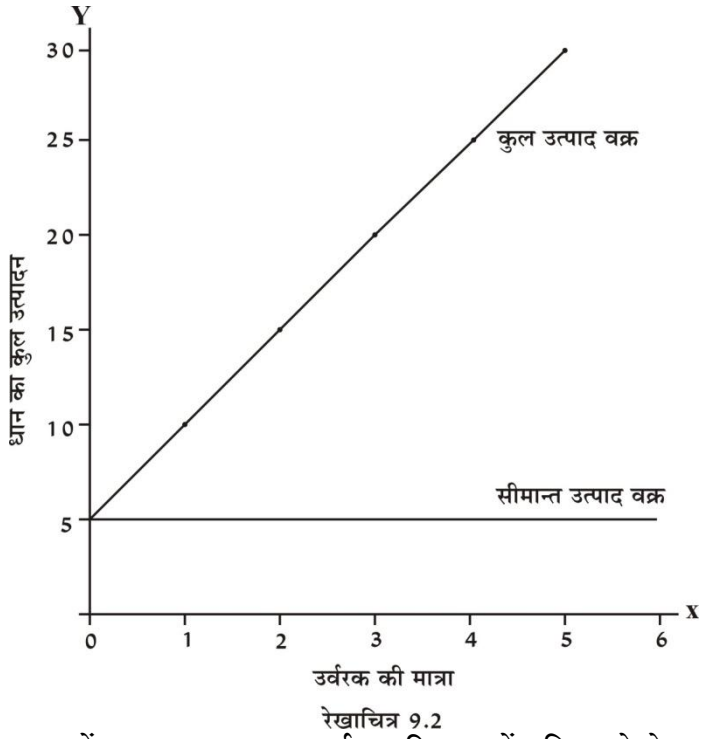

रेखाचित्र 9.2

रेखाचित्र 9.2 रेखाचित्र 9.2 में X अक्ष (axis) पर उर्वरक की मात्रा में वृद्धि करने से Y अक्ष (axis) पर धान की कुल मात्रा में वृद्धि हो रही है जिसे कुल उत्पाद वक्र से दिखाया गया है। कुल उत्पादन में वृद्धि एक स्थिर मात्रा में हो रही है। उदाहरण के लिए उर्वरक की 5 किलो ग्राम की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से धान के उत्पादन में प्रत्येक बार 5 किलो ग्राम की वृद्धि होती है जिसे कुल उत्पादन वक्र से दिखाया गया है। फलस्वरूप चल साधन का सीमान्त प्रतिफल स्थिर है, जिसे सीमान्त उत्पादन वक्र से दर्शाया गया है।

(स) बढ़ता हुआ हुआ उत्पादन फलन, जिसमें चल साधन का सीमान्त प्रतिफल घटता जाता है- इस प्रकार के उत्पादन फलन में कुल उत्पादन, एक परिवर्ती साधन के बढ़ने पर बढ़ता जाता है। परन्तु इसमें परिवर्ती/चल साधन की प्रत्येक इकाई की वृद्धि से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि उत्तरोत्तर घटती जाती है। फलस्वरूप चल साधन की अतिरिक्त इकाई का

सीमान्त प्रतिफल घटता जाता है। ऐसे उत्पादन फलन को तालिका 9.4 एवं रेखाचित्र 9.3 में दिखाया गया है।

तालिका 9.4

धान की बीज की मात्रा (किग्रा.)	0	1	2	3	4	5
धान का कुल उत्पादन (किग्रा.)	0	30	55	70	80	85
सीमान्त उत्पादन (किग्रा.)	-	30	25	15	10	05

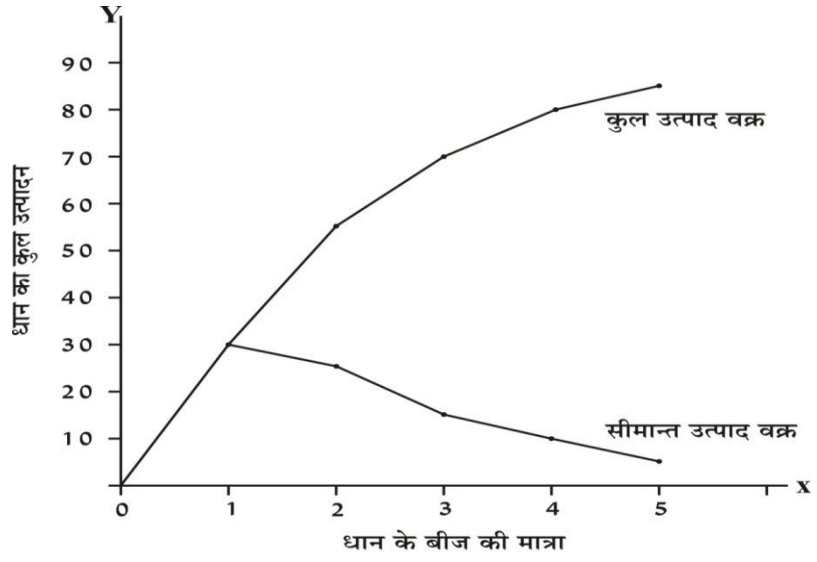

रेखाचित्र 9.3

रेखाचित्र 9.4 में स्पष्ट है कि आगत में अतिरिक्त इकाई की वृद्धि से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि में कमी होने लगती है फलस्वरूप चल साधन का सीमान्त उत्पादन एक नीचे की और अर्थात् दाहिने तरफ की ओर गिरता जाता है। इस तरह के उत्पादन फलन में चल साधन के अतिरिक्त इकाई का सीमान्त प्रतिफल घटता जाता है।

9.6.2 घटता हुआ उत्पादन फलन

घटता हुआ उत्पादन फलन के अन्तर्गत चल साधनों की मात्रा के बढ़ने पर, उत्पाद की कुल मात्रा में कमी आती है। फलस्वरूप चल साधन का सीमान्त प्रतिफल नकरात्मक होता है जिसे तालिका 9.5 एवं रेखाचितत्र 9.4 में दर्शाया गया है।

तालिका 9.5

धान की बीज की मात्रा (किग्रा.)	0	1	2	3	4	5
धान का कुल उत्पादन (किग्रा.)	10	20	40	30	25	5
सीमान्त उत्पादन (किग्रा.)	-	10	20	-10	-15	-20

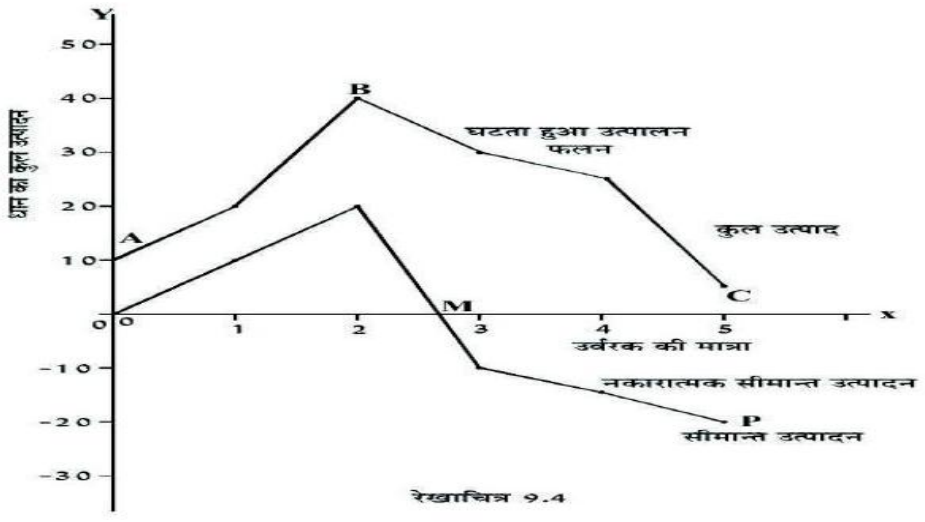

रेखाचित्र 9.4

तालिका 9.5 में उर्वरक की मात्रा में तीसरी इकाई की वृद्धि से कुल उत्पादन घटने लगा है जिसे वक्र BC से दिखाया गया है जो कुल उत्पादन ABC का एक भाग है जिसमें कुल उत्पादन गिर रहा है। दूसरी इकाई के बाद चल साधन की मात्रा में वृद्धि से कुल उत्पादन घटता है तथा सीमान्त उत्पाद नकरात्मक हो जाता है जिसे रेखाचित्र 9.4 में MP वक्र से दिखाया गया है। कोई भी विवेकशील उत्पादक, घटते हुए उत्पादन फलन के क्षेत्र में (अर्थात् जब साधन के बढ़ने पर कल उत्पादन में कमी आती है), कभी भी उत्पादन नहीं करेगा।

9.7 आगत-निर्गत सम्बन्ध या साधन-उत्पाद सम्बन्ध

वास्तव में कृषि में एक बढ़ता हुआ-घटता हुआ उत्पादन फलन (IncreasingDecreasing Production function) सक्रिय होता है। ऐस उत्पादन फलन के बढ़ते हुए भाग में सबसे पहले प्रयोग किये जा रहे परिवर्ती साधन (Variable factor) का सीमान्त प्रतिफल बढ़ता जाता है। फलस्वरूप, किसान को बढ़ता हुआ उत्पादन फलन प्राप्त होता है जिसका प्रमुख कारण है कि परिवर्तनशील साधन बढ़ने पर स्थिर साधनों का इष्टतम विदोहन (optimum utilisation) संभव हो पाता है। बढ़ता हुआ-घटता हुआ उत्पादन फलन के सन्दर्भ में, आगत-निर्गत सम्बन्ध (Input-Output Relation) को अनुकूलतम बनाने वाली आवश्यक शर्तों को ढूंढने की चेष्टा करेंगे। इस उद्देश्य के लिए हम तालिका 9.6 एवं रेखाचित्र 9.5 पर एक दृष्टि डालते है। यहाँ पर हम यह मान कर चल रहे है कि चल साधन मजदूर/प्रति श्रमिक की मजदूरी रू0 100 है एवं गेहूँ की कीमत रू0 4 प्रति कि0 ग्रा0 है।

तालिका 9.6

स्थिर साधन	परिवर्ती साधन श्रमिक	कूल उत्पादन गेहूं	सीमान्त उत्पादन	लागत मजदूरी	कुल आय (रु. प्रति किग्रा.)	लाभ	सीमान्त आय
1	2	3	4	5	6	7	8
1	1	100	-	100	400	300	-
1	2	400	300	200	1600	1400	1200
1	3	600	200	300	2400	2100	800
1	4	700	100	400	2800	2400	400
1	5	800	100	500	3200	2700	400
1	6	800	00	600	3200	2600	00
1	7	700	-100	700	2800	2100	-400
1	8	500	-200	800	2000	1200	-800

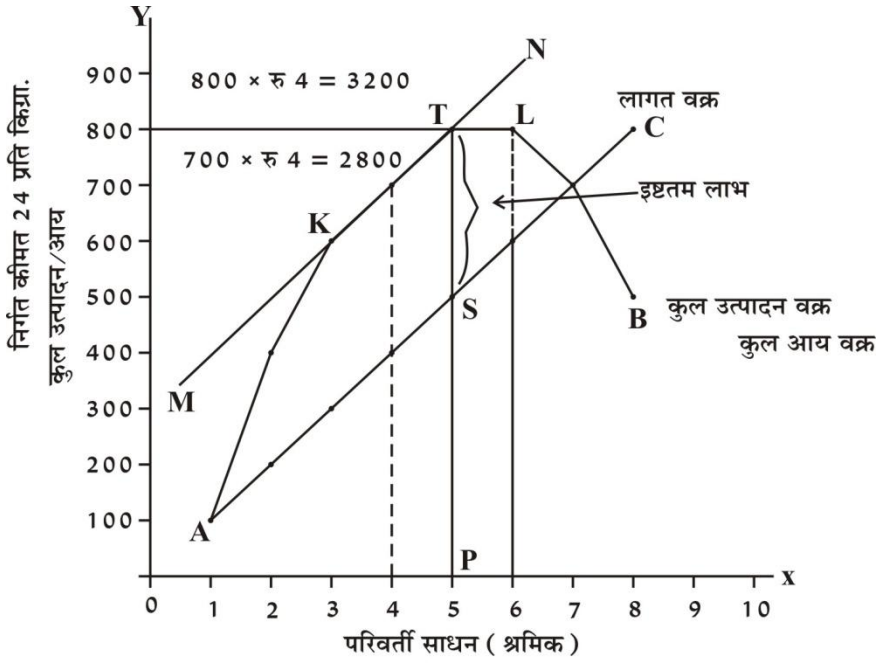

रेखाचित्र 9.5

रेखाचित्र 9.5 में स्थिर साधन के साथ परिवर्ती साधन में परिवर्तन करने से कुल वस्तुपरक उत्पादन में वृद्धि हो रही है तथा शुरू में सीमान्त प्रतिफल में भी वृद्धि हो रही है (देखें तालिका 9.6) जब आगत (श्रमिक) की मात्रा में वृद्धि करते है तो कुल निर्गत (उत्पादन) में वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ जब श्रमिक की एक अतिरिक्त इकाई लगाते है तो इस अतिरिक्त श्रमिक (आगत) का सीमान्त उत्पादन 300 इकाई है अर्थात् स्थिर आगत के साथ परिवर्तनशील आगत में वृद्धि करने से कुल परिवर्ती आगत 2 (श्रमिक) पर कुल निर्गत 400 किलोग्राम है। अब किसान के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि वह परिवर्ती आगत में स्थिर साधन के साथ कब तक परिवर्तन करता रहेगा जिससे उसे ज्यादा से ज्यादा वस्तुपरक उत्पादन प्राप्त हो सके। इसका उत्तर तालिका 9.6 में तथा रेखाचित्र 9.5 में दर्शाया गया है। आगत की पाँचवी इकाई का कुल आय 3200 किलोग्राम है। जिसे रेखाचित्र 9.5 में X अक्ष पर आगत की पाँचवी इकाई को बिन्दु P से दिखाया गया है तथा Y अक्ष पर निर्गत की मात्रा 800 किलोग्राम को बिन्दु T से दिखाया गया है।

रेखाचित्र 9.5 में ST की मात्रा, किसान के अधिकतम लाभ को दिखा रही है। श्रमिक की पाँचवीं इकाई तक उत्पादन चलता रहेगा क्योंकि चल साधन की कुल पाँच इकाई पर कुल 800 कि0 ग्रा० का उत्पादन हो रहा है। अब आप कह सकते है कि आगत की 6 इकाई की मात्रा पर भी तो गेहूँ का उत्पाद 800 कि0 ग्रा0 है। इसको भी तो वस्तुपरक उत्पादन लाभ से दिखाया जा सकता है। इसको आप वस्तुपरक उत्पादन लाभ नहीं कह सकते है क्योंकि श्रमिक की 6 इकाई की मात्रा पर कुल उत्पादन 800 कि0 ग्रा0 है परन्तु इस अतिरिक्त इकाई का सीमान्त उत्पाद शून्य है जबकि श्रमिक की पाँचवी इकाई का सीमान्त उत्पादन 100 कि0 ग्रा0 है। इस आधार पर आप यह भी प्रश्न पूछ सकते हैं कि चौथी इकाई का सीमान्त उत्पादन 100 कि0 ग्रा0 है तो फिर यह क्यों नहीं अधिकत वस्तुपरक उत्पादन हो सकता है। परिवर्ती साधन की चौथी इकाई का सीमान्त उत्पाद 100 कि0 ग्रा0 है परन्तु यहाँ पर कुल उत्पादन मात्र 700 किग्रा. है जो कि 800 कि0 ग्रा0 से कम है। इसलिए इसे हम अधिकतम उत्पादन नहीं कह सकते है।

रेखाचित्र 9.5 में AKTLB वक्र कुल उत्पादन वक्र है। हमारी पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता के आधार पर उत्पाद की प्रत्येक इकाई का मूल्य एक समान रहता है जिसे यहाँ पर हमने गेहूँ प्रति किलो कीमत रू0 4 रखे हैं। हमें

वस्तुपरक उत्पादन को मुद्रा के रूप में इसलिए परिवर्तन करना पड़ा है क्योंकि अब हमारा उद्देश्य लाभ तथा इसके अधिकतम स्तर को निश्चित करना है तथा इसके लिए कुल उत्पादन की वस्तुपरक इकाईयों तथा साधनों की कुल इकाईयां, दोनों को ही मुद्रा के रूप में तालिका 9.6 में कॉलम संख्या 6 एवं 5 में क्रमशः दिखाया गया है रेखाचित्र में लाईन AC लगता वक्र है जो गेहूँ के उत्पादन में लगे चल साधन की भिन्न-भिन्न इकाईयों की प्रति श्रमिक लागत को दर्शा रहा है। रेखाचित्र में दो वक्रों अर्थात् कुल आय वक्र (AB) और कुल लागत वक्र (AC) की सहायता से, उस बिन्दु का पता लगा सकते है जो कि किसी किसान के अधिकतम लाभ का प्रतीक है। कुल आय वक्र की जगह इस रेखाचित्र में कुल उत्पादन वक्र है क्योंकि X अक्ष पर आगत की मात्रा है तथा Y अक्ष पर निर्गत की मात्रा को दर्शाया गया है परन्तु कुल उत्पादन वक्र से कुल आय प्राप्त किया जा सकता है कुल आय प्राप्त करने के लिए कुल उत्पादन को उसके प्रति इकाई के मूल्य से गुना कर रहे है। किसान को अधिकतम लाभ बिन्दु (T) पर प्राप्त होगा जहाँ दोनों वक्र (कुल आय एवं कुल लागत वक्र) के बीच की अनुलम्वता (Vertically) का अन्तर अधिक होगा। रेखाचित्र में यह बिन्दु वहाँ होता है जहाँ दोनों

वक्र की स्पर्श रेखा (Tangent) समानान्तर होती है या दूसरे शब्दों में, दोनों स्पर्श रेखाओं का ढ़ाल का माप एक समान हो। अधिकतम लाभ बिन्दु ST पर प्राप्त होती है क्योंकि बिन्दु ST पर लाभ-बिन्दु T- बिन्दु S (लाभ-कुल आय–कुल लागत)=रू0 2700=(800 कि0 ग्रा0 x रू0 4)-500 (5 श्रमिक x 1100) आगत-निर्गत का अधिकतम लाभ बिन्दु T पर श्रमिक की 5 इकाई पर प्राप्त हो रहा है। आगत-निर्गत सम्बन्ध "किसी वस्तु का कितना उत्पादन करना चाहिए" जैसे समस्याओं का समाधान करता है।

9.8 अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) उत्पादन फलन क्या है?

(ख) उत्पादन फलन की मान्यताएँ बताइये।

(ग) कारक 1 का कुल उत्पादन फलन क्या होगा?

(घ) उत्पादन फलन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

2. सत्य/असत्य बताइये

(क) एक आगत के प्रयोग के किसी भी स्तर के लिए, सीमांत उत्पादों का कुल जोड़, उस आगत की प्रति इकाई प्रयोग के स्तर पर, उस आगत के लिए कुल उत्पाद प्रदान करता है।

(ख) उत्पादन फलन आगतों के केवल कुशल उपयोग पर ही विचार करता है।

(ग) बढ़ते हुए उत्पादन फलन में स्थिर साधन के साथ प्रथम अवस्थाओं में साधन की अतिरिक्त वृद्धि से कुल उत्पादन में गिरावट आती है

(घ) कृषि में बढ़ता हुआ घटता हुआ उत्पादन फलन सक्रिय होता है

(ड) उत्पादन फलन की धारणा एक निश्चित समय से सम्बन्धित है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) आगत-निर्गत सम्बन्ध है

(अ) साधन-उत्पाद सम्बन्ध

(ब) साधन-साधन सम्बन्ध

(स) उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

(ख) दीर्घकाल में, सभी आगत

(अ) परिवर्तनशील होत है

(ब) स्थिर होते है

(स) स्थिर आगत के साथ चल साधन परिवर्तनशील होते हैं।

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

(ग) उत्पादन के साधनों को अर्थशास्त्र की भाषा में क्या कहते है

(अ) आगत

(ब) आदा

(स) कारक

(द) उपर्युक्त सभी

(घ) उत्पादन फलन की अवधारणा किन मान्यताओं पर आधारित है।

(अ) उत्पादन में प्रयुक्त टैक्नॉलोजी में कोई परिवर्तन नहीं होता है,

(ब) फर्म उपलब्ध कुशलतम तकनीक का प्रयोग करता है,

(स) एक निश्चित समय से सम्बन्धित है।

(द) उपर्युक्त सभी

(ड) अल्पकाल में आगत

(अ) परिवर्तनशील होते है

(ब) स्थिर होते है

(स) स्थिर आगत के साथ परिवर्ती आगत परिवर्तनशील होते है

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द वाले प्रश्न

(क) कृषि में किस तरह का उत्पादन फलन सक्रिय होता है?

(ख) उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं को क्या कहते है?

(ग) उत्पादन फलन किसे कहते है?

(घ) अल्पकालीन अवधि में निर्गत स्तर में वृद्धि करने के लिए, स्थिर साधन के चल साधन का सीमान्त प्रतिफल बढ़ता जाता है। ऐसे उत्पादन फलन को क्या कहते है?

5. रिक्त स्थान भरिए

(क) उत्पादन फलन _____तथा साधन की मात्रा के बीच एक विशेष सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है।

(ख) उत्पादन फलन आगत एवं इसके परिणामस्वरूप उत्पादित निर्गत के बीच का सम्बन्ध है

(ग) एक उत्पादन फलन, एक दी हुइ_ ____लिए परिभाषित किया जाता है।

(घ) कृषि में ___उत्पान फलन सक्रिय होता है।

9.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि उत्पादन फलन आगत एवं इसके परिणाम स्वरूप उत्पादित निर्गत के बीच का भौतिक सम्बन्ध है। आगतों के विभिन्न सम्मिश्रण के लिए उत्पादन फलन निर्गत की अधिकतम मात्रा दर्शाता है, जिस पर उत्पादन सम्भव है। अल्पकाल में स्थिर साधन के साथ कुछ परिवर्ती साधन में परिवर्तन कर निर्गत/उत्पाद की मात्रा में वृद्धि की जाती है जबकि दीर्घकाल में निर्गत में वृद्धि करने के लिए सभी आगातों में परिवर्तन किया जा सकता है। साधारणतया, उत्पादन फलन दो प्रकार के होते है- बढ़ता हुआ उत्पादन फलन एवं घटता हुआ उत्पादन फलन। आगत की मात्रा में वृद्धि करने पर निर्गत की कुल मात्रा में वृद्धि होती जाती

है। इसी को बढ़ता हुआ उत्पादन फलन कहते है जिसमें किसान अपना उत्पादन बढ़ाते जाते है। घटता हुआ उत्पादन फलन उसे कहते है जब आगत की प्रत्येक इकाई की वृद्धि के फलस्वरूप निर्गत घटता जाता है।
उत्पादन फलन को सामान्यतः इस प्रकार लिखते है- O = f (X1, X2) यह बताता है कि आप कारक 1 की X1 मात्रा तथा कारक 2 की X2 मात्रा का प्रयोग कर वस्तु की अधिकतम मात्रा 0 का उत्पादन कर सकते है। उत्पादन के लिए दोनों आगत आवश्यक है।
यदि कोई भी आगत शून्य हो जाता है, तो कोई भी उत्पादन नहीं होगा। दोनों सकरात्मक आगतों के साथ, निर्गत सकरात्मक होगा।

9.10 शब्दावली

- **उत्पादन का कारक (Factors of Production)** : उत्पादन प्रक्रिया में फर्म जिन आगतों का उपयोग करता है, उसे उत्पादन का कारक कहते हैं।
- **चल साधन (Variable Factor)** : वे साधन जिसमें फर्म अल्पकाल में परिवर्तन कर सकता है, चल साधन कहलाता है।
- **अचल साधन: (Fixed Factor)** वे साधन जो अल्पकाल में स्थिर रहता है अर्थात् फर्म अल्पकाल में ऐसे साधन में परिवर्तन नहीं कर पाती है। ऐसे साधन को स्थिर आगत कहते है या अचल साधन कहते है।
- **निर्गत** : अर्थशास्त्र की भाषा में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं को निर्गत कहते है।

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) उत्पादन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत उत्पादन कार्य उत्पादन के अनेक साधनों (भूमि, श्रम, पूँजी, साहस तथा संगठन) के सामूहिक सहयोग एवं साधनों के एक विशेष सम्मिश्रण (combination) से सम्पन्न किया जाता है।
1. (ख) उत्पादन फलन की धारणा निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

- उत्पादन के साधनों की एक विशेष मात्रा, उत्पाद की केवल एक ही मात्रा को निर्मित कर सकती है. किसी अन्य को नहीं:
- उत्पादन की भिन्न-भिन्न मात्रा को निर्मित करते समय उत्पादन की टैक्नॉलोजी (technology) में कोई परिवर्तन नहीं होता है;
- उत्पादन फलन एक निश्चित समय से सम्बन्धित होता है,
- फर्म उपलब्ध कुशलतम तकनीक प्रयोग करती है।

1. (ग) उत्पादन फलन में, यदि हम कारक 2 को स्थिर रखते है मूल्य X2 पर तथा X1 के हर मूल्य के लिए कारक 1 परिवर्तित होता है, तो हम 1 का मूल्य प्राप्त करते है, विशेषत X, के लिए। इसे हम निम्न तरिके से भी लिख सकते है : Q = flx,x,J यह कारक 1 का कुल उत्पादन फलन है। पुनः तालिका 9.1 को देखें। मान लीजिए, कारक 2,4 इकाई पर निश्चित है। अब तालिका 9.1 को देखे जहाँ कारक 2,4 मूल्य लेते है। जब हम कॉलम के नीचे जाते है, तब हम कारक 1 के विभिन्न मूल्यों के लिए निर्गत मूल्य प्राप्त करते है। यह कारक 1 का कुल उत्पाद है, जिसका मान है- X=4 X=O, कुल उत्पाद-O, X1=1 कुल उत्पाद निर्गत की 8 इकाई है, X1-2 कुल उत्पाद

10 इकाई है और मांगे भी इसी प्रकार है। इसे कभी-कभी कुल प्रतिफल अथवा परिवर्ती आगतों को कुल भौतिक उत्पाद भी कहा जाता है।

1. (घ) उत्पादन फलन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है

1. उत्पादन फलन एक दी हुई प्रौद्योगिकी के लिए परिभाषित किया जाता है।
2. अल्पकालीन उत्पादन फलन में सभी आगतों में परिवर्तन नहीं कर सकते है।
3. दीर्घकाल उत्पादन फलन में सभी साधनों में परिवर्तन कर सकते है।
4. उत्पादन फलन का कार्य उत्पादन की भौतिक मात्रा तथा साधनों की भौतिक मात्रा के बीच सम्बन्ध की व्याख्या करना होता है।
5. . उत्पादन का सिद्धान्त उत्पादन के नियम की चर्चा करता है।
6. उत्पादन फलन के अन्तर्गत कुशलतम तकनीक का प्रयोग किया जाता है।

2. (क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य (ड) सत्य

3. (क) अ (ख) अ (ग) द (घ) द (ड) स

4 (क) बढ़ता हुआ-घटता हुआ उत्पादन फलन
(ख) निर्गत
(ग) किसी फर्म के आगत एवं निर्गत के बीच के सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है।
(घ) बढ़ता हुआ उत्पादन फलन

5. (क) उत्पाद की मात्रा
(ख) भौतिक
(ग)प्रौद्योगिकी
(घ)बढ़ता हुआ-घटता हुआ

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सोनी, आर0 एन (2008), "कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय' विशाल पब्लिशिंग कं0, जालन्धर, इण्डिया, पृ0 290
- "व्यष्टि अर्थशास्त्र-एक परिचय," 2009, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली पृ0 42
- मिश्र, जय प्रकाश, (2008), "कृषि अर्थशास्त्र," साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0 105
- अग्रवाल, एन0 एल (1977) 'भारतीय कृषि का अर्थतंत्र," राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर पृ0 138

9.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Tyagi, B.P., (1998), "Agricultural Ecomomics and Rural Development," A.D. offset printers, Meerut

- पंत, जे0 सी0, एवं मिश्रा, जे0 पी0 (2010) "व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. उत्पादन फलन किसे कहते है? इसकी विशेषताओं की चर्चा कीजिए।
2. उत्पादन फलन के प्रकार की चर्चा कीजिए तथा कृषि में यह किस प्रकार से कार्य करता है। इसका वर्णन कीजिए।
3. .घटता हुआ उत्पादन फलन को चित्र के द्वारा समझाइये।

इकाई 10- साधन-साधन सम्बन्ध
(Factor-Factor Relationship)

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 साधन-साधन सम्बन्ध
10.3.1 साधन-साधन सम्बन्धित मान्यताएँ
10.4 दो परिवर्ती आदाओं (साधन) सहित उत्पादन फलन
10.5 सम-उत्पाद या सममात्रा वक्र
10.5.1 समोत्पाद वक्रों की विशेषताएँ
10.5.2 समोत्पाद वक्र और विवेकपूर्ण उत्पादन
10.5.3 समोत्पाद वक्र और सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर
10.6 दो साधनों के न्यूनतम लागत पर उत्पादन
10.7 साधन-साधन सम्बन्धों की दृष्टि से विस्तार पथ एवं सम-ढाल वक्र
10.8 अभ्यास प्रश्न
10.9 सारांश
10.10 शब्दावली
10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
10.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.14 निबंधात्मक प्रश्न उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

10.1 प्रस्तावना

उत्पादन फलन, सम्बन्ध एवं नियम से सम्बन्धित यह दसवीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आप साधन-उत्पाद या आगत-निर्गत सम्बन्ध के लिए आवश्यक शर्तों की चर्चा की, जिसमें साधन-उत्पाद सम्बन्ध के द्वारा यह ज्ञात करने की कोशिश की कि एक किसान को किसी एक वस्तु का कितना उत्पादन करना चाहिए।

प्रस्तुत इकाई साधन–साधन सम्बन्ध की विस्तृत चर्चा करती है। इस इकाई में साधन–साधन सम्बन्ध के माध्यम से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए वस्तओं का कैसे उत्पादन करे तथा सम-मात्र वक्र एवं इसकी विशेषता आदि का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप साधन-साधन सम्बन्ध का उद्देश्य एवं इसकी आवश्यकता को बता सकेंगे तथा साधन-साधन सम्बन्ध की मायताएँ एवं इसकी अनुकूलतम शर्त की व्याख्या कर सकेंगे।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि

- ✓ साधन–साधन सम्बन्ध क्या है?
- ✓ वे कौन-सी शर्ते हैं जो कि साधन-साधन सम्बन्ध के अनुकूलतम स्तर को सुनिश्चित करती है।
- ✓ समोत्पाद अथवा सममात्र वक्र क्या है? •
- ✓ समोत्पाद वक्र एवं सम-लागत रेखा के द्वारा न्यूनतम लागत का निर्धारण कैसे किया जाता है।

10.3 साधन–साधन सम्बन्ध

साधन-साधन सम्बन्ध एक किसान को किसी एक फसल के पैदा करने के लिए दो या दो से अधिक साधनों के ऐसे मिश्रण के बारे में निर्णय लेने में सहायता करती है जिससे कि उस फसल के उत्पादन की लागत न्यूनतम हो जाती है। दूसरे शब्दों में आप यह कह सकते हैं कि साधन-साधन उत्पादन फसल के अन्तर्गत किसी वस्तु का उत्पादन कैसे किया जाय सम्बन्धित निर्णय लिए जाते हैं।

आप को एक बात का सदैव ध्यान रखना होगा कि जब हम उत्पदन फलन के अन्तर्गत साधन-उत्पाद की चर्चा करते हैं या साधन-साधन सम्बन्ध की या फिर उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध की, प्रत्येक स्थिति में सम्बन्धित उत्पादन (फसल) के लिए पर्याप्त उत्पादन फलन ही हमारे विश्लेषण का आरम्भ बिन्दु होता है। आपको सिर्फ इस बात का ध्यान देना होगा कि क्या उत्पादन फलन एक चल साधन पर आधारित है या एक से अधिक चल साधनों पर।

10.3.1 साधन-साधन सम्बन्धित मान्यताएँ

साधन–साधन सम्बन्धित मान्यताएँ निम्नलिखित हैं

1. एक फसल के उत्पादन के लिए केवल दो चल साधनों का प्रयोग हुआ है।
2. बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।
3. फसलों के उत्पादन की मात्रा में या साधनों के प्रयोग में परिवर्तन साधन तथा उत्पाद के मूल्य में परिवर्तन नहीं लाते हैं अर्थात प्रत्येक स्थिति में साधन तथा उत्पाद के मूल्य वही रहते हैं।

10.4 दो परिवर्ती (चलन) साधनों सहित उत्पादन फलन

अब तक आप समझ गये होंगे कि उत्पादन वृद्धि हेतु एक परिवर्ती साधन को कई 'स्थिर' साधनों के साथ बढ़ा दिया जाता है अथवा सभी साधनों (परिवर्ती एवं स्थिर) को बढ़ा दिया जाता है। प्रथम स्थिति से सम्बन्धित उत्पादन फलन अल्पकालीन उत्पादन फलन कहलाता है जबकि द्वितीय स्थिति से सम्बन्धित उत्पादन फलन को दीर्घकालीन उत्पादन-फलन कहकर सम्बोधित किया जाता है। अब हम उस स्थिति का अध्ययन करेंगे जिसमें किसान उन दो साधनों को बढ़ाकर उत्पादन बढ़ाता है जो एक दूसरे के स्थानापन्न है, जैसे श्रम एवं पूँजी। इस तरह के उत्पादन फलन को समझने के लिए आप इकाई नौ में तालिका 9.1 को पुनः देखें जहाँ पर दो साधनों के विभिन्न संयोग के उत्पादन फलन को दिखाया गया है। यह उत्पादन फलन हमें एक अन्य लाभदायक जानकारी भी प्रदान करता है। एक निश्चित उत्पाद/प्रदा को अनेक विभिन्न साधन संयोगों का प्रयोग करके प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ तालिका 9.1 देखें जिसमें 18 इकाईयों की प्रदा को दो विभिन्न साधन संयोगों का प्रयोग करके प्राप्त किया जा सकता है। 2 मशीनें एवं 3 श्रमिक, 3 मशीनें एवं 2 श्रमिक। जब मशीनों की संख्या में वृद्धि होती है तो श्रमिकों की संख्या घट जाती है। इसके विपरीत, जब मशीनो की संख्या में कमी होती है तो श्रमिकों की संख्या बढ़ जाती है। उत्पादन के लिए दोनों आगत आवश्यक है। यदि कोई भी आगत शून्य हो जाता है तो कोई भी उत्पादन नहीं होगा। दोनों सकारात्मक आगतों के साथ, निर्गत सकारात्मक होगा। ये सभी साधन-संयोग (जो एक निश्चित प्रदा उत्पनन करते हैं) प्राविधिक दृष्टि से कार्यकुशल होते हैं क्योंकि इनसे समान प्रदा उत्पन्न होती है। लेकिन इनमें से केवल एक ही साधन संयोग आर्थिक दृष्टि से कार्यकुशल होता है क्योंकि यह एक निश्चित प्रदा को न्यूनतम लागत पर उत्पन्न करता है। साधन-साधन सम्बन्ध का कौन-सा संयोग उत्पादन फलन के लिए उत्तम है, इसका निर्णय प्राविधिज्ञ नहीं बल्कि अर्थशास्त्री करता है क्योंकि प्राविधिज्ञ इन विभिन्न संयोगों की गणना करता है जिनका प्रयोग करने से समान उत्पाद प्राप्त होता है लेकिन अर्थशास्त्री का यह कर्तव्य है कि उस साधन संयोगों का चयन करे जो आर्थिक दृष्टि से भी कार्यकुशल हो। उपर्युक्त उत्पादन फलन उत्पाद पैमाने से सम्बद्ध हासमान प्रतिफल अवस्था को अभिव्यक्त करता है।

अनुपात का विचार हासमान प्रतिफल नियम में निहित है। इस नियम के अनुसार 'भूमि' स्थिर साधन है जबकि 'श्रम' एवं 'पूँजी' परिवर्तनशील है, अतः तीनों साधनों के बीच का अनुपात बदल जाता है। साधनों के इस अनुपात में होने वाले परिवर्तन के कारण ही ह्रासमान प्रतिफल नियम कार्यशील होता है। दो परिवर्ती आदाओं सहित उत्पादन फलन को समोत्पाद वक्रों के परिवारों द्वारा भी व्यक्त किया जाता है, जिसे सम-उत्पाद वक्र या सम-मात्र (iso-quant) भी कहा जाता है।

10.5 सम उत्पाद वक्र या सम मात्र वक्र या समोत्पाद वक्र

समोत्पाद वक्र दो आगतों/ साधनों के विभिन्न संयोग को बताती है, जो कि समान अधिकतम संभावित स्तर का निर्गत/उत्पादन प्राप्त करता है। प्रत्येक सम-मात्र वक्र निर्गत के एक विशेष स्तर का प्रतिनिधित्व करती है तथा निर्गत की मात्रा को स्तर प्रदान करती है।

कीरस्टेड (Keirstead) के अनुसार, ***'समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन संभावित संयोगों को बताती है जो कि एक समान कुल उत्पादन करते हैं।'***

आइए, अब हम समोत्पाद वक्र को रेखाचित्र के द्वारा स्पष्ट करते हैं। समोत्पाद वक्र को रेखाचित्र 10.1 में दिखाया गया है। रेखाचित्र 10.1 में X अक्ष पर साधन X को दिखाया गया है तथा लंबवत Y पर साधन Y को दिखाया गया है। यदि हम मान लें कि किसी वस्तु की 50 इकाइयों की निर्गत को उत्पन्न करने हेतु सधन X तथा Y के विभिन्न संयोगों से प्राप्त किया जाता है। उदाहरणार्थ किसी वस्तु की 50 इकाई के उत्पादन के लिए साधन X1 तथा

Y1 की मात्रा का प्रयोग किया जा रहा है। साधन X2,Y2 के मिलाने से वस्त की 50 इकाई का उत्पादन किया जा रहा है। यदि उत्पाद की हर मात्रा को दिखाने वाले ये सब सम-मात्र वक्र एक ग्राफ पर दिखा दिये जाये तो हमें सम-मात्र वक्रों का एक मानचित्र प्राप्त हो जायेगा। निम्न समोत्पाद वक्र वस्तुओं की कम मात्रा को दर्शाता है जबकि उच्च समोत्पाद वक्र वस्तु की ज्यादा मात्रा को दर्शाता है। साधन–साधन संबन्ध को समझने के लिए हमें समोत्पाद वक्र की विशेषताओं को समझना होगा।

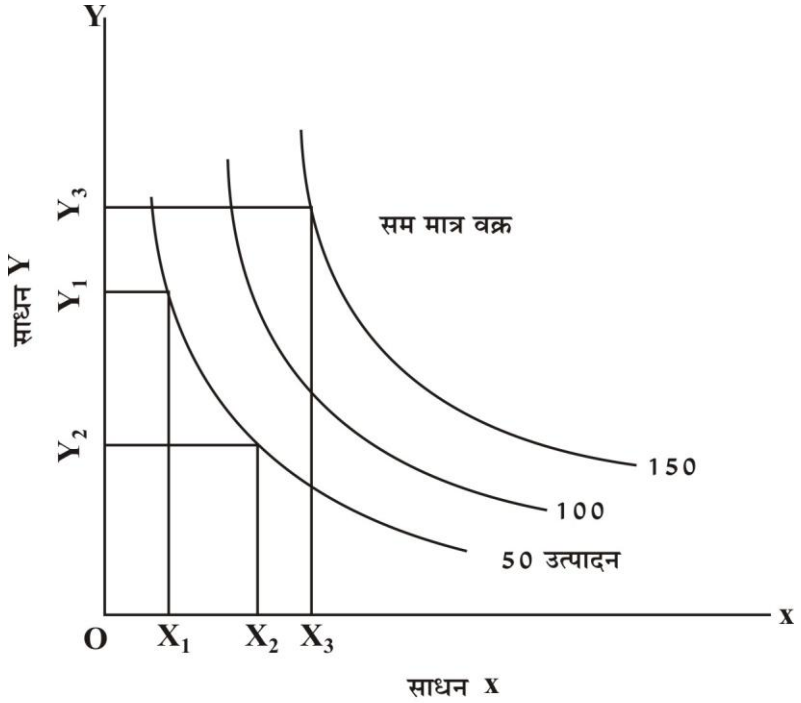

रेखाचित्र 10.1

साधन x रेखाचित्र 10.1

10.5.1 समोत्पाद वक्रों की विशेषताएँ

समोत्पाद वक्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

1. सम मात्र वक्र ऊपर से नीचे दाईं ओर को आता है,
2. समोत्पाद वक्र प्रायः शून्य बिन्दु (origin) की ओर उत्तल या अन्नतोदर होते हैं,
3. जैसे-जैसे एक समोतपाद वक्र का स्तर ऊँचा होता जाता है, इसके द्वारा दिखायी जाने वाली उत्पाद की मात्रा बढ़ती जायेगी,
4. दो सम-मात्रा वक्र एक दूसरे को कभी भी नहीं काटते या छूते हैं,
5. समोत्पाद वक्र को उत्पादन की इकाइयों की संख्या में व्यक्त किया जाता है जबकि उदासीनता वक्र या तटस्थता वक्र को इस प्रकार प्रकट नहीं किया जा सकता है क्योंकि उपभोक्ता द्वारा प्राप्त संतुष्टि को मापने हेतु भौतिक इकाइयों का अभाव होता है,
6. सम–मात्र वक्र उत्पादन की प्रक्रिया से सम्बन्धित होता है जबकि तटस्थता वक्र उपभोक्ता की संतुष्टि या उपभोग की प्रक्रिया से सम्बन्धित होता है।

साधन–साधन सम्बन्धों को अनुकूलतम बनाने के लिए आवश्यक शर्तों की (अर्थात एक उत्पाद की लागत को न्यूनतम करने के लिए आवश्यक शर्तों की) खोज करने में समोत्पाद वक्र की पहली दो विशेषतायें सहायता करती है।

समोत्पाद वक्र की पहली विशेषता है कि समोत्पाद वक्र प्रायः ऊपर से नीचे दाईं ओर आता है। यह समोत्पाद वक्र इस मान्यता पर आधारित है कि एक साधन के साथ दूसरे साधन की मात्रा में अतिरिक्त इकाई लगाने से उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादन की मात्रा को वही रखना है, जैसा कि एक समोत्पाद वक्र का उद्देश्य है तो एक साधन की अतिरिक्त इकाई लगाने के साथ-साथ दूसरे साधन की इकाई में कमी करनी पड़ती है परिणामस्वरूप, उत्पादन की समान मात्रा एक समोत्पाद वक्र पर प्राप्त होती है।

सारणी 10.1

संयोग	टागत		निर्गत	श्रम तथा पूँजी के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की समीन्त दर($MRTS_{L, K}$)
	श्रम की इकाइयां साधन (L)	पूंजी की इकाइयां साधन (K)	गेहूँ (क्विंटल) उद्पादन	
1	2	3	4	5
A	1	50	100	-
B	2	42	100	1:8
C	3	35	100	1:7
D	4	29	100	1:6
E	5	24	100	1:5
F	6	20	100	1:4
G	7	17	100	1:3
H	8	15	100	1:2

उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त करने के लिए एक साधन की इकाई में वृद्धि के साथ दूसरे साधन की इकाई में कमी लाने से समोत्पाद वक्र ऊपर से नीचे दाईं ओर आता है। समोत्पाद वक्र की दूसरी विशेषता है - यह वक्र प्रायः शून्य बिन्दु की ओर उत्तल होता है। इस विशेषता का कारण है कि जब एक साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग किया जाता है तो साधारणतया इसका सीमान्त उत्पादन अपने आप में कम होता जाता है जिसे दो साधनों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कहते हैं। इसे स्पष्ट रूप से समझने के लिए सारणी 10.1 में 100 क्विंटल गेहूं प्राप्त करने के लिए पूँजी तथा श्रम के विभिन्न संयोग की तकनीकी स्थानापत्ति या प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को दिखाया गया

सारणी सं. 10.1 से स्पष्ट है कि गेहूं की 100 क्विंटल प्राप्त करने के लिए किसान 1 श्रम तथा 50 पूँजी, 2 श्रम तथा 42 पूंजी, 3 श्रम तथा 35 पूंजी, 4 श्रम तथा 29 पूंजी, 5 श्रम तथा 24 पूंजी, 6 श्रम तथा 20 पूंजी, 7 श्रम तथा 17 पूंजी अथवा 8 श्रम तथा 15 पूंजी की इकाइयाँ लगा सकता है। इन विभिन्न संयोगों को जैसे A,B,C,D,E,F,G और H को जोड़ देने पर समोत्पाद वक्र प्राप्त होता है। सारणी 10.1 का कॉलम श्रम तथा पूंजी के बीच तकनीकी प्रतिस्थापान की सीमान्त दर को दिखा रहा है। तकनीकी या प्राविधिक प्रतिस्थापन की सीमान्त दर वह दर स्पष्ट करती है जिस पर बिना उत्पादन के स्तर में परिवर्तन किये हुए साधनों में प्रतिस्थापन किया जा सके। इस प्रकार यदि उत्पादन में केवल दो साधनों L एवं K का प्रयोग किया जा रहा हो तो K

साधन के लिए L साधन की तकनीकी प्रतिस्थापन की दर K की वह मात्रा है जो L साधन की एक इकाई के द्वारा प्रतिस्थापित की जा सकती है, यदि उत्पादन के स्तर (जैसे गेहूं का उत्पादन 100 क्विंटल है) में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो। इसका स्पष्टीकरण सारिणी 10.1 से हो जाता है। सारिणी के अन्तिम खाने से स्पष्ट है कि एक ही उत्पादन के स्तर पर बने रहने की स्थिति में प्रतिस्थापन की दर क्रमशः घटती गयी है। A से B संयोग की स्थिति में L की 1 इकाई K की 8 इकाई को प्रतिस्थापित करती है जबकि संयोग C पर L की 1 इकाई की वृद्धि केवल 7 K, D पर केवल 6 K, E पर केवल 5 K, F पर केवल 4 K, G पर केवल 3 K तथा H पर K की केवल 2 इकाई को प्रतिस्थापित करती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि किसी बिन्दु पर सम उत्पादन वक्र के ढाल के द्वारा उस बिन्दु पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ज्ञात की जा सकती है जैसा रेखाचित्र 10.2 में दिखाया गया है- रेखाचित्र में (IPC) समोत्पाद वक्र को प्रदर्शित करता है। इसके किसी बिन्दु पर तकनीकी प्रतिस्थापन दर ज्ञात करना है तो रेखाचित्र में समोत्पाद वक्र (IPC) पर नीचे की ओर B से C की ओर अत्यन्त अल्प दूरी तक चलिए जहाँ उत्पादन में बीना किसी हानि के पूँजी (K) की इकाई में कमी की जाती है (K) तथा श्रम (L) की मात्रा में वृद्धि (L) की जाती है। अर्थात् समोत्पाद वक्र (IPC) पर बिन्दु B से बिन्दु C पर उत्पादन के समान
स्तर को प्राप्त करने के लिए K को L की मात्रा से प्रतिस्थापित होती है। IP का ढाल (slope) या प्रतिस्थापन की सीमान्त दर - 4K होगा।

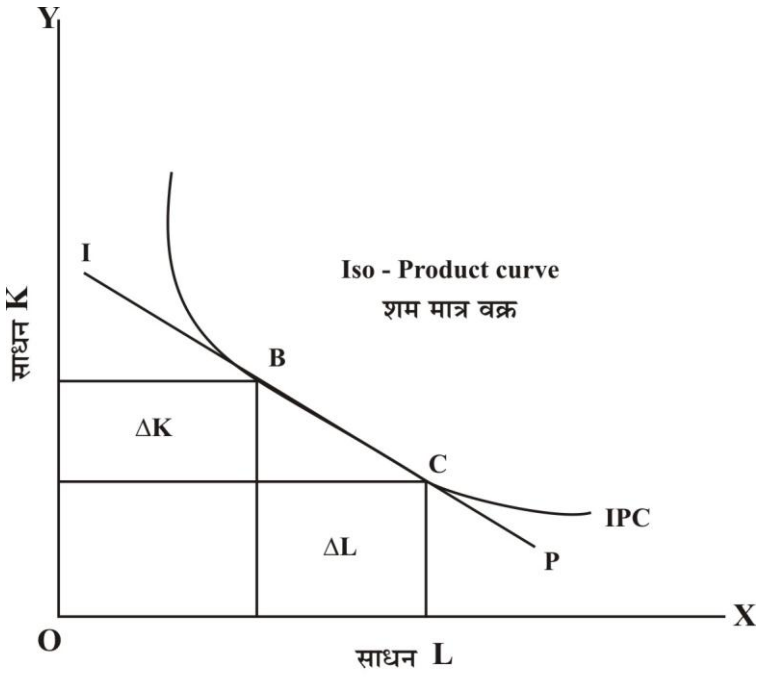

रेखाचित्र 10.2

रेखाचित्र 10.2 चूँकि उत्पादन का स्तर एक ही बना रहता है इसलिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर दो आगतों L तथा K की सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात को बताती है। जब कोई उत्पादक किसी समोत्पाद वक्र के एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर चलता है जैसे रेखाचित्र 10.2 में किसान बिन्दु B से बिन्दु C की ओर चलता है वह गेहूं की 100 क्विंटल मात्रा को ही प्राप्त करता है क्योंकि किसान K की कुछ मात्रा को छोड़ता है जिसके कारण उत्पादन में कुछ कमी होगी तथा उसके स्थान पर L की मात्रा बढ़ाता है जिससे कुल उत्पादन में वृद्धि होगी पर चूँकि वह एक समोत्पाद वक्र पर चलता है अथवा उसके उत्पादन का स्तर एक ही बना रहता है

इसलिए यह आवश्यक है कि K की कमी के कारण उत्पादन में कमी निश्चित रूप से L की वृद्धि के कारण उत्पादन में हुई वृद्धि के बराबर हो, अन्यथा उत्पादन का एक समान स्तर नहीं बना रहेगा। इस प्रकार K की कमी के कारण उत्पादन में कमी = L की वृद्धि के कारण उत्पादन में वृद्धि। K की कमी के कारण उत्पादन में कमी = AK. AMPK (K की सीमान्त उत्पादकता) तथा L की वृद्धि के कारण उत्पादन में वृद्धि = ALXMPL श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता, इस प्रकार

KxMPK = ALxMPL

अर्थात् AK_ MP

AL MP इसलिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर अर्थात L की प्रत्येक बार एक अतिरिक्त इकाई बढ़ाने पर आगत पूँजी की प्रत्येक बार इकाइयों को घटाने की मात्रा (या Marginal rate of technical substitution of L for K MRTSLK) घटती

MR

जायेगी। जब भी इस प्रकार प्राप्त किये गये दो साधनों के संयोग/सम्मिश्रण की एक सम–मात्र वक्र बनाने के लिए प्रयोग किया जायेगा तो ऐसा सम–मात्र वक्र सदा ही शून्य बिन्दु की ओर उत्तल/उन्नतोदर (convex) होगा। Ah K के लिए L साधन की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTSLK) है, AL इसलिए MRTS, = - 4K = MP.

AL MPx अभी आपने देखा कि जब एक साधन के द्वारा दूसरे साधन को प्रतिस्थापित किया जाता है तो तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर क्रमशः घटने लगती है। वास्तविकता तो यह है कि तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर का सिद्धान्त क्रमागत उत्पादन हास नियम का विस्तार मात्र है। अभी आप जान गये होंगे कि साधन की सीमान्त उत्पादकता (MPL)

a K साधन की सीमान्त उत्पादकता (MPK) स्पष्ट है कि जब एक ही समोत्पाद वक्र पर L की मात्रा बढ़ायी जाती है तथा K की मात्रा घटायी जाती है तो Ah = MP. तो L की सीमान्त उत्पादकता कम होती

AL MPK जायेगी। इसी कारण से सम–मात्र वक्र शून्य बिन्दु की उत्तल (convex) है। यहाँ पर ध्यान दें L की सीमान्त उत्पादकता घटती जा रही है जैसे 1:8, 17, 1:6... जबकि पूँजी (K) की सीमान्त उत्पादकता बढ़ती जा रही है क्योंकि L की एक अतिरिक्त इकाई के बढ़ाने से उत्पादन 100 क्विंटल ही रहता है। जबकि गेहूँ के 100 क्विंटल प्राप्त करने के लिए K की मात्रा में कमी होती जाती है इसलिए K की सीमान्त दर बढ़ती जाती है तथा L की सीमान्त दर घटती जाती के

10.5.2 समोत्पादन वक्र और विवेकपूर्ण उत्पादन

समोत्पाद वक्र पर विवेकपूर्ण उत्पादन तभी तक संभव है जब तक एक साधन की अतिरिक्त इकाई में वृद्धि के फलस्वरूप दूसरे साधन की इकाई में कमी होती जाती है जिससे हम उसी सममात्र वक्र पर वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। दूसरे शब्दों में आप कह सकते हैं कि उत्पादक को उत्पादन तभी तक करना चाहिए जब तक समोत्पाद वक्र की ढाल नकारात्मक होती है। समोत्पाद वक्र के नकारात्मक ढाल पर किया गया उत्पादन विवेकपूर्ण उत्पादन माना जायेगा। जब समोत्पाद वक्र की ढाल सकारात्मक होती है तो इस वक्र पर उत्पादन विवेकहीन माना जायेगा। इसे रेखाचित्र 10.3 के द्वारा स्पष्ट किया गया हैरेखाचित्र में CD समोत्पाद वक्र है। रेखाचित्र में दो बिन्दु B और A क्रमशः X2 और Y2 साधनों के सम्मिश्रण को दिखाते हैं, जहाँ पर सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर शून्य के बराबर है। बिन्दु A एवं बिन्दु B पर सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर शून्य है।

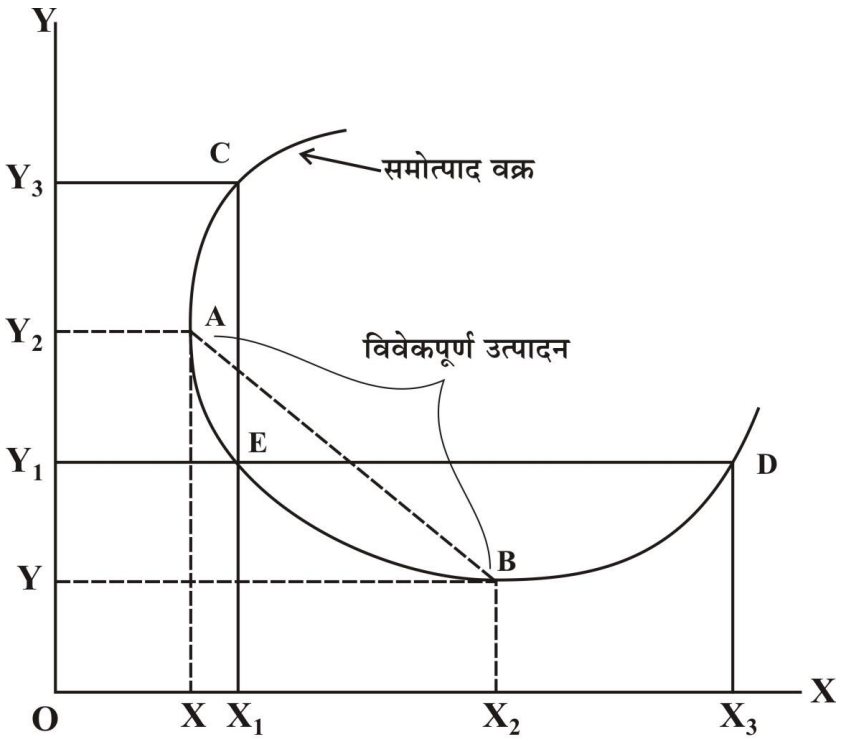

रेखाचित्र 10.3

रेखाचित्र 10.3 इन दोनों बिन्दुओं के बीच समोत्पाद वक्र पर किया गया उत्पादन विवेकपूर्ण माना जायेगा क्योंकि समोत्पाद वक्र पर इन दोनों बिन्दुओं के बीच उत्पादन के लिए एक साधन (X) के मात्रा में वृद्धि के साथ दूसरे साधन (Y) के मात्रा में कमी करके समान मात्रा में उत्पादन प्राप्त किया जाता है। समोत्पाद वक्र के बिन्दु E पर दो साधनों (X1 Y1) के संयोग से उत्पादन प्राप्त हो रहा है। बिन्दु B पर वही उत्पादन प्राप्त करने के लिए जब साधन X की मात्रा में वृद्धि करते हैं तो उसी समय पर साधन Y की मात्रा में कमी करते हैं। परिणामस्वरूप साधन X2 और Y के संयोग बिन्दु B पर वही उत्पादन प्राप्त हो रहा है जो इससे पहले बिन्दु D पर प्राप्त हो रहा था। बिन्दु D पर उत्पादन की वही मात्रा प्राप्त करने के लिए दोनों साधनों की मात्रा में वृद्धि करनी पड़ रही है। इसलिए समोत्पाद वक्र पर बिन्दु D पर किया गया उत्पादन विवेकहीन (irrational) माना जायेगा। इसी तरह से बिन्दु C पर भी किया गया उत्पादन विवेकहीन माना जायेगा।

यदि रेखाचित्र में दिये गये समोत्पद वक्र को और आगे बढ़ाया जाए तो दोनों सिरें आपस में मिल जायेंगे तथा सम मात्रा वक्र आकार में गोल दिखायी देने लगेगा। परन्तु इस अवस्था में भी एक विवेकशील उत्पादक, सम–मात्रा वक्र के बिन्दु A तथा बिन्दु B के बीच में ही दोनों साधन (X और Y) के किसी एक सम्मिश्रण के साथ उत्पदन करेगा। समोत्पाद वक्र पर बिन्दु A और C तथा बिन्दु B और D के बीच का उत्पादन विवेकहीन माना जायेगा।

10.5.3 समोत्पाद वक्र और सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर

अभी तक आप समझ गये होंगे कि समोत्पाद वक्र ऊपर से नीचे दायीं की ओर आता है। यह वक्र शून्य या मूल बिन्दु की ओर उत्तल होता है। इस स्थिति में एक साधन के लिए दूसरे साधन की सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर क्रमशः घटती जाती है तथा दोनों साधनों का सीमान्त उत्पादन सकारात्मक होता है जैसा कि सारणी 10.1 में दिखाया गया है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि यह सीमान्त उत्पादन किसी एक साधन की अतिरिक्त

इकाई लगाने पर, अपने आप में घटता जाये। यह सीमान्त उत्पादन वही रह सकता है या फिर बढ़ भी सकता है। इस स्थिति में सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर घटेगी नहीं। इसे तालिका 10.2 में स्पष्ट किया गया है।

तालिका 10.2 दिए हुए वस्तु के उत्पादन में लगे दो साधनों की सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर

संयोग	साधन				सीमान्त प्रतिस्थापन दर	साधन		सीमान्त प्रतिस्थापन दर
	X_1	X_2	ΔX_1	ΔX_2	$\frac{\Delta X_2}{\Delta X_1}(MRTS_{X_1X_2})$	X_3	ΔX_3	$\frac{\Delta X_3}{\Delta X_1}(MRTS_{X_1X_3})$
A	10	40	-	-	-	90		-
B	11	35	+1	-5	-5	84	-6	-6
C	12	30	+1	-5	-5	77	-7	-7
D	13	25	+1	-5	-5	69	-8	-8
E	14	20	+1	-5	-5	60	-9	-9
F	15	15	+1	-5	-5	50	-10	-10
G	16	10	+1	-5	-5	39	-11	-11

यदि प्रत्येक साधन का सीमान्त उत्पादन सदा वही रहता है, तो एक विशेष साधन (X1) की एक अतिरिक्त इकाई में वृद्धि करने पर दूसरे साधन की छोड़ने वाली इकाईयों की मात्रा X2 किसी बार भी नहीं घटेगी वह सदा वही रहेगी। दूसरे शब्दों में सीमान्त तकनीकी स्थानापत्ति दर सदा वही रहेगी। इस स्थिति में समोत्पाद वक्र एक सीधी रेखा होगी जो ऊपर से नीचे दाईं ओर आती सीधी रेखा का रूप लेगा। इसे रेखाचित्र 10.4 में दिखाया गया है।

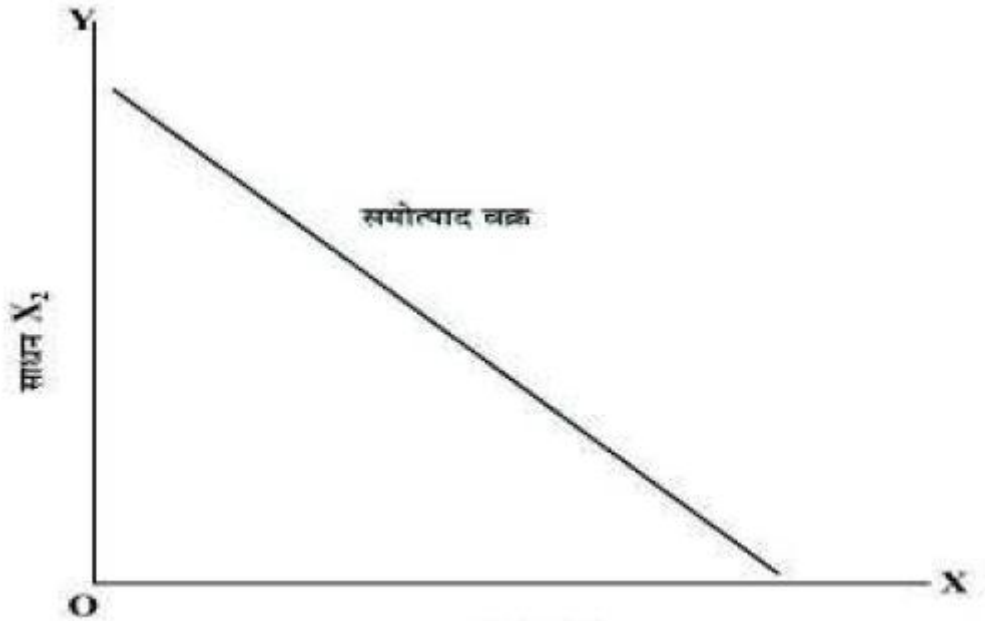

रेखाचित्र 10.4

तालिका 10.2 से स्पष्ट है कि साधन X1 में प्रत्येक बार, एक इकाई की वृद्धि पर, साधन X2 की 5 इकाईयों को छोड़नी पड़ती है ताकि दी गयी उत्पदन की मात्रा उसी समोत्पाद वक्र पर बनी रहे। इस तरह के समोत्पाद वक्र को सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर वही (-5 के बराबर) रहती है। इसे रेखाचित्र 10.4 में दिखाया गया है। ___AX, समोत्पाद वक्र शून्य या मूल बिन्दु की ओर अवतल भी हो सकता है। इस प्रकार का सम-मात्र वक्र उस समय प्रकट होता है जब एक दिये हुए समोत्पाद वक्र पर एक साधन की मात्रा में वृद्धि करने पर तथा

दूसरे साधन की मात्रा में कमी (X2) लाने पर एक साधन के लिए दूसरे साधन द्वारा प्रतिस्थापित सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर घटने की बजाय बढ़ता जाता है अर्थात र सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर बढ़ता जाता है ऐसी स्थिति

में समोत्पाद वक्र शून्य या मूल बिन्दु की ओर अवतल होगा जिसे रेखाचित्र 10.5 में दिखाया गया है। रेखाचित्र 10.5 से स्पष्ट है कि आगत X1 की एक अतिरिक्त इकाई में वृद्धि होने पर X3 की छोड़ने वाली इकाईयों की मात्रा में पहले से अधिक वृद्धि होती जाती है। अर्थात् सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर बढ़ती जा रही है। समोत्पाद वक्र की ढाल , जो कि सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर को दिखाता है, जो बढ़ता जाता है। इस प्रकार यह समोत्पाद वक्र शून्य या मूल बिन्दु की ओर अवतल (concave) होता है।

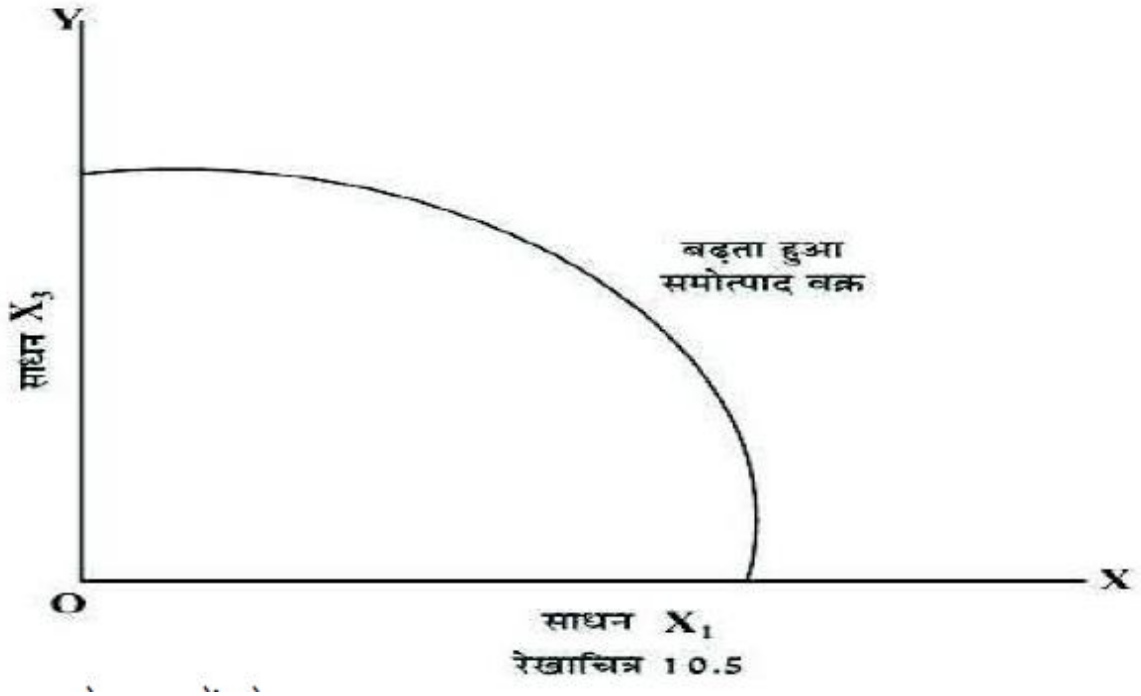

रेखाचित्र 10.5

10.6 दो साधनों के न्यूनतम लागत पर उत्पादन

साधन–साधन सम्बन्ध में हमारा उद्देश्य उन शर्तों को खोजना है जो कि एक उत्पाद की विशेष मात्रा को प्राप्त करने के लिए दो (या दो से अधिक) प्रयोग किये जाने वाले साधनों पर आने वाली कुल लागत को न्यूनतम कर देगी। इसके लिए समोत्पाद वक्र एवं सम-लागत रेखा दोनों को एक साथ लेना होगा। यहाँ पर यह मान्यता है कि उत्पाद तथा साधनों के मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जब दो साधनों के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो इन दो साधनों को x अक्ष और y अक्ष पर मिलाने से जो रेखा प्राप्त होती है उसी को सम–लागत रेखा कहते हैं। सम-लागत रेखा पर किसी भी बिन्दु पर वस्तु के उत्पादन की लागत समान रहती है। समोत्पाद वक्र और सम–लागत की सहायता से उत्पादक को उस बिन्दु पर उत्पादन करना चाहिए जहाँ सम लागत की रेखा समोत्पाद वक्र को स्पर्श करती है क्योंकि यह बिन्दु न्यूनतम लागत को दर्शाती है। इसे तालिका 10.3 एवं रेखाचित्र 10.6 में दिखाया गया है।

तालिका 10.3 सम-लागत सूची (कुल लागत 600)

संयोग	साधन	
	X1,	**X2**
A	60	0
B	50	10
C	40	20
D	30	30
E	20	40
F	10	50
G	0	60

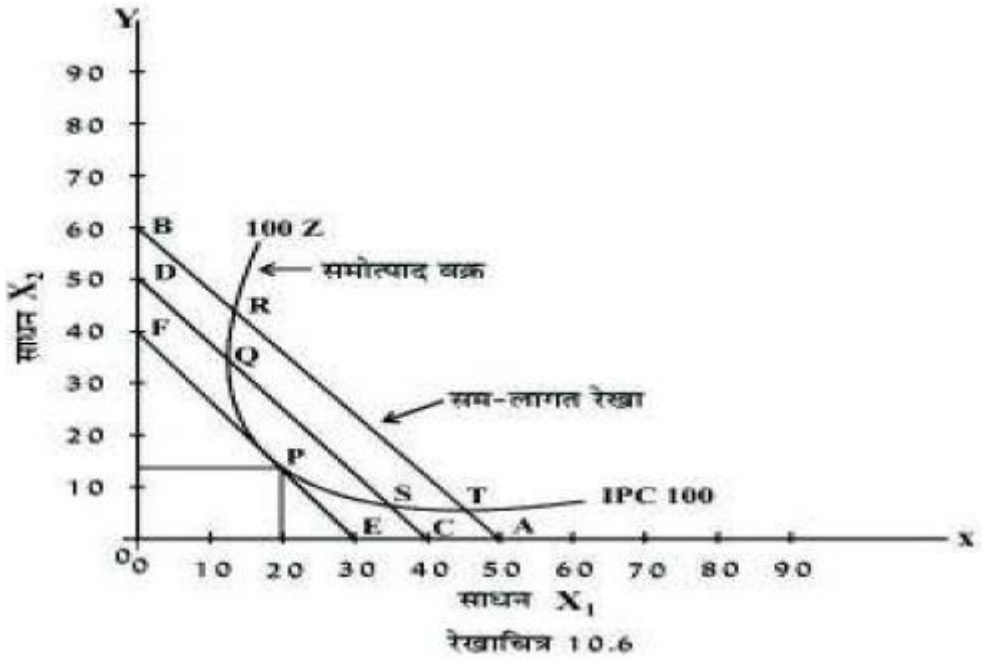

रेखाचित्र 10.6

कल्पना करो एक किसान के पास दो साधनों X1 तथा X2 को खरीदने के लिए रु. 600 है। अगर साधन X1 एवं X2 की इकाई कीमत रु. 12 एवं रु. 10 है किसान कुल रु. 600 को X1 पर व्यय करता है तो वह X1 की 50 इकाई खरीद सकेगा (.600 तथा X2 की शून्य इकाई अर्थात X2 की कोई इकाई नहीं खरीद पायेगा इसलिए किसान रु.12 साधन X1 की 50 इकाई (जिसे बिन्दु A पर दिखाया गया है) खरीदेगा। अगर वह साधन X, पर कुल व्यय करना चाहे तो वह साधन X, की 60 इकाई | 2000 / (जिसे बिन्दु B १२ (#-10) पर दिखाया गया है) को खरीद पायेगा जबकि X की शून्य इकाई खरीदेगा। बिन्दु A एवं बिन्दु B को जोड़ने से सम-लागत रेखा प्राप्त होती है। रेखाचित्र में AB, CD, EF विभिन्न–विभिन्न सम लागत रेखायें हैं। सभी सम-लागत रेखायें एक दूसरे के सामान्तर है क्योंकि दो साधनों के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं है। ऊँची सम–लागत रेखायें अधिक लागत का प्रतिनिधित्व करती है तथा नीची सम-लागत रेखायें कम लागत का प्रतिनिधित्व करती है। सम-लागत रेखा EF न्यूनतम लागत को दिखा रही है जो समोत्पाद वक्र IPC को बिन्दु P पर स्पर्श कर रही है। रेखाचित्र 10.6 में स्पष्ट है कि Z उत्पाद की 100 इकाईयाँ, साधन X1 तथा साधन X2 के संयोग से न्यूनतम लागत बिन्दु P पर पैदा की जा सकती है। इसलिए किसी उत्पाद की एक विशेष मात्रा पर आने वाली लागत तभी न्यूनतम होगी जब सम-लागत

रेखा की ढाल का माप समोत्पाद वक्र की ढाल के PX, 12 के बराबर हो। या PX = AX, PX, AX, या PX.AX, = PX,.AX, किसान बिन्दु P पर उत्पादन करेगा क्योंकि यह दोनों साधनों के सम्मिश्रण का न्यूनतम लागत है। ये दोनों साधन इस तरह से मिश्रित किया जाता है कि यदि ऐसे मिश्रण में उत्पाद की मात्रा को वही रखने के लिए एक साधन को घटाया जाता है तथा दूसरे को बढ़ाया जाता है तो इस बिन्दु पर बढ़ने वाले साधन की लागत तथा घटने वाले साधन की लागत में कोई अन्तर नहीं अर्थात् दोनों साधनों की कुल लागत न ही बढ़ती है और न ही घटती है। समीकरण Pal = को साधनों की सीमान्त मूल्य उत्पादकता के रूप में भी 'PX, AX, प्रकट कर सकते हैं। अभी तक आप जान गये होंगे कि किसी बिन्दु पर एक सम मात्रा वक्र की ढाल का माप AA उस बिन्दु पर साधनों की सीमान्त प्रतिस्थापन दर 2 को भी

AX.

दर्शाता है। इसलिए इसे हम निम्नलिखित ढंग से भी लिख सकते हैं।

AX, - AZ. AZ AX AX, AX,

यहाँ $\frac{\Delta Z}{\Delta X_1}$ साधन X_1 की उत्पाद Z के लिए सीमान्त वस्तुपरक उत्पादन (marginal physical product of X_1) को दिखाता है। इसी प्रकार $\frac{\Delta Z}{\Delta X_2}$, साधन X_2 के सीमान्त वस्तुपरक उत्पादक (marginal physical product of X_2) को दिखलायेगा।

अब आप समझ गये होंगे कि अगर ΔZ को साधन X_1 में परिवर्तन की मात्रा ΔX_1 से भाग दे तो हमें $\frac{\Delta Z}{\Delta X_1}$ प्राप्त होगा। इसी प्रकार से Z को ZX_2 से भाग दे तो $\frac{\Delta Z}{\Delta X_2}$ प्राप्त होगा। अब आप समझ गये होंगे कि सम मात्रा वक्र की ढाल, सम लागत रेखा के बराबर होती है—

$$\frac{\Delta X_2}{\Delta X_1} = \frac{PX_1}{PX_2}$$

उपर्युक्त समीकरण को हम इस तरह से भी लिख सकते हैं—

$$\frac{\Delta X_2}{\Delta X_1} = \frac{\Delta Z/\Delta X_1}{\Delta Z/\Delta X_2} = \frac{\text{Marginal Physical Product of } X_1 \text{ in terms of } Z}{\text{Marginal Physical Product of } X_2 \text{ in terms of } Z}$$

या $$\frac{\Delta X_2}{\Delta X_1} = \frac{\Delta Z/\Delta X_1}{\Delta Z/\Delta X_2} = \frac{PX_1}{PX_2}$$

या $$\frac{\Delta X_2}{\Delta X_1} = \frac{\text{Marginal Physical Productivity of } X_1 \text{ in terms of } Z}{\text{Marginal Physical Productivity of } X_2 \text{ in terms of } Z} = \frac{PX_1}{PX_2}$$

यदि दोनों साधनों के वस्तुपरक उत्पादन को एक ही गुणज (multiple) अर्थात् उत्पाद के मूल्य से गुणा कर दिया जाय तो हमें न्यूनतम लागत पर साधनों की सीमान्त मूल्य उत्पादकता (marginal value productivity) प्राप्त हो जायेगी। इसे इस तरह से लिख सकते हैं—

$$\frac{PX_1}{PX_2} = \frac{\text{Marginal value productivity of } X_1 \text{ in producing } Z}{\text{Marginal value productivity of } X_2 \text{ in producing } Z}$$

या $$\frac{\text{Marginal value productivity of } X_1 \text{ in producing } Z}{\text{Price of } X_1 \ (Px_1)}$$

$$= \frac{\text{Marginal value productivity of } X_2 \text{ in producing } Z}{\text{Price of } X_2 \ (Px_2)}$$

यही एक उत्पाद की किसी एक विशेष मात्रा की कुल लागत को न्यूनतम करने के लिए, साधनों की सीमान्त मूल्य उत्पादकता के रूप में एक शर्त है।

10.7 साधन-साधन सम्बन्धों की दृष्टि से विस्तार पथ एवं सम-ढाल वक्र

अभी तक आप परिचित हो गये होंगे कि समोत्पाद वक्रों से उत्पादन फलन सम्बन्ध की व्याख्या तो हो सकती है परन्तु इसकी व्याख्या नहीं होती है कि उत्पादन में वृद्धि तथा साधनों की वृद्धि में क्या अनुपात है। जैसा कि आप जानते हैं पैमाने के प्रतिफल की व्याख्या इसी से सम्बन्धित है। इसके लिए समोत्पाद वक्र के साथ उत्पादन के विस्तार (Expansion of output/Expansion path) का विश्लेषण आवश्यक है। उत्पाद रेखा उत्पाद विस्तार प्रदर्शित करती है।

उत्पाद रेखा एक समोत्पाद वक्र से दूसरे समोत्पाद वक्र पर जाने की गति (चलने की क्रिया) प्रदर्शित करती है, जब हम सभी साधनों या किसी एक साधन में परिवर्तन लाते हैं। इस प्रकार 'उत्पाद रेखा' उत्पाद के विस्तार के सम्भावित प्राविधिक पथ प्रदर्शित करती है। उत्पाद रेखा को रेखाचित्र 10.7 में स्पष्ट किया गया है। रेखाचित्र में OR, PL तथा KQ उत्पाद रेखा या विस्तार पथ (Expansion path) है जब दोनों साधन परिवर्तनीय हो तो उत्पाद रेखा मूल बिन्दु से प्रारम्भ होकर जायेगी जैसे OR उत्पाद रेखा। यह OR उत्पाद रेखा मूल बिन्दु 0 से होकर जा रही है क्योंकि जब सम–मात्रा वक्र IPC1 से IPC) या IPC3 पर चलते हैं तो दोनों साधनों में श्रम एवं पूंजी (k) में परिवर्तन होता है। उत्पाद रेखा आधार अक्ष या लम्ब अक्ष के किसी बिन्दु से प्रारम्भ होगी, जबकि एक साधन स्थिर हो तथा दूसरा परिवर्तनीय हो जैसे कि रेखाचित्र में स्पष्ट है। LP उत्पाद रेखा श्रम की स्थिर मात्रा के साथ तथा KQ रेखा पूंजी की स्थिर मात्रा के साथ उत्पादन विस्तार प्रदर्शित करती है। यदि सभी साधन परिवर्तनीय हो तो उत्पाद रेखा मूल बिन्दु से होकर जायेगी। ऐसी उत्पाद रेखा जो विभिन्न समोत्पाद रेखाओं के ऐसे बिन्दु से जाय जिन पर साधनों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन का सीमान्त दर स्थिर हो तो इन समोत्पाद रेखाओं को समनतिक या सम-दान वक्र (isoclines) कहते हैं।

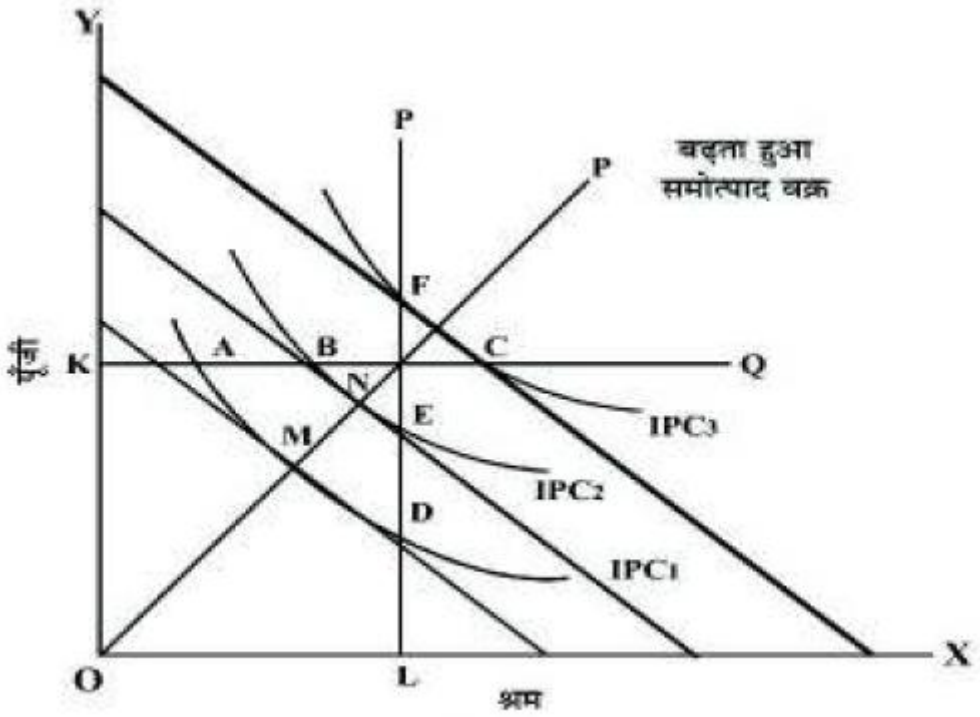

रेखाचित्र 10.7

रेखाचित्र 10.7 जब उत्पादक वस्तु की एक विशेष मात्रा के उत्पादन को बढ़ाने की चेष्टा करता है तो इस बात का ध्यान रखता है कि प्रत्येक बढ़ी हुई मात्रा के लिए इन साधनों पर आने वाली कुल लागत न्यूनतम रहती है। रेखाचित्र 10.7 में उत्पादक के इस निर्णय के कारण

होने वाली उत्पादन प्रक्रिया को दिखाया गया है। रेखाचित्र में IPCI, IPC तथा IPC3 समोत्पाद वक्र है जो कि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि को प्रदर्शित करते हैं। यदि साधनों के मूल्य वही रहते हैं तो इन पर न्यूनतम लागत वाले सम्मिश्रण क्रमशः MNT बिन्दुओं द्वारा दिखाया जायेगा। यदि इन सब बिन्दुओं को जोड़ दिया जाय तो इससे प्राप्त रेखा या वक्र साधन-साधन से सम्बन्धों की दृष्टि से उत्पादन का विस्तार पथ कहलायेगा। यह पथ इस बात को दर्शाता है कि वस्तु की हर मात्रा की उत्पादन लागत केवल इस पर पड़े बिन्दुओं द्वारा दिखाये गये साधनों के सम्मिश्रण से ही न्यूनतम होगी।

10.8 अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) साधन-साधन सम्बन्ध से आप क्या समझते हैं?

(ख) साधन-साधन उत्पादन फलन की मान्यताएँ बताइये।

(ग) सम–मात्रा वक्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(घ) उत्पाद रेखा क्या है?

2. सत्य/असत्य बताइये

(क) 'अनुपात' का विचार हासमान प्रतिफल नियम में निहित है।

(ख) दो समोत्पाद वक्र एक दूसरे को काट सकते हैं।

(ग) समोत्पाद वक्र 'साधनों में वृद्धि' एवं 'उत्पाद में वृद्धि' के अनुपात की व्याख्या करता है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) उत्पादन की प्रक्रिया से कौन-सा वक्र सम्बन्धित है।

(अ) सम–मात्रा वक्र

(ब) तटस्थता वक्र

(स) दोनों

(द) कोई नहीं

(ख) जब दोनों साधनों को बढ़ाया जाता है तो सम–मात्रा वक्र

(अ) ऊपर की ओर जाता है

(ब) नीचे होता जाता है

(स) दोनों

(द) कोई नहीं

(ग) समोत्पाद वक्र व्याख्या करता है

(अ) उत्पादनों में वृद्धि की

(ब) उत्पादन फलन सम्बन्ध की

(स) साधनों में वृद्धि की

(द) उपर्युक्त सभी

(घ) पैमाने का प्रतिफल' की व्याख्या सम्बन्धित है

(अ) उत्पादनों में वृद्धि से

(ब) साधनों में वृद्धि से

(स) दोनों

(द) कोई नहीं

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द वाले प्रश्न

(क) समोत्पाद वक्र शून्य बिन्दु की ओर उत्तल क्यों होता है?

(ख) किसी उत्पाद की एक विशेष मात्रा पर आने वाली लागत न्यूनतम कब होगी।

(ग) उपभोग की प्रक्रिया से सम्बन्धित वक्र का नाम बताइये।

(घ) सम-लागत रेखा से आप क्या समझते हैं?

5. रिक्त स्थान भरिए

(क) एक ही सम–मात्रा वक्र पर उत्पादन बनाये रखने के लिए जब एक साधन में वृद्धि करते हैं तो दूसरे साधन में ..... करते हैं।

(ख) उत्पादन रेखा ..... प्रदर्शित करती है।

10.9 सारांश

साधन-साधन उत्पादन फलन के अन्तर्गत दो साधनों के सम्मिश्रण से न्यूनतम लागत पर कैसे उत्पादन किया जाये सम्बन्धित निर्णय लिये जाते हैं। समोत्पाद वक्र (जिसे सम-मात्रा वक्र या सम उत्पद वक्र भी कहते हैं) को और सम लागत रेखा की सहायता से न्यूनतम लागत का निर्धारण किया जाता है। जब साधनों की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है तो इसका अभिप्राय यह होता है कि एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का प्रयोग किया जाता है। ये सभी साधन संयोग (जो एक निश्चित प्रदा/निर्गत उत्पन्न करते हैं) प्राविधिक दृष्टि से कार्यकुशल होते हैं क्योंकि इनसे समान निर्गत की प्राप्ति होती है, लेकिन इनमें से केवल एक ही साधन संयोग आर्थिक दृष्टि से कार्यकुशल होता है क्योंकि यह एक निश्चित प्रदा को न्यूनतम लागत पर उत्पन्न करता है। साधन-साधन संबंध का कौन सा संयोग उत्पादन फलन के लिए उत्तम है, यह निर्णय प्रविधिज्ञ नहीं बल्कि अर्थाशास्त्री करता है। किसी उत्पाद की एक विशेष मात्रा पर आने वाली लागत तभी न्यूनतम होती है जब

रेखा की ढाल का माप सम मात्रा वक्र की ढाल के माप के बराबर होती है। समोत्पाद वक्र से उत्पादन फल सम्बन्धी व्याख्या की जा सकती है परन्तु उत्पाद में वृद्धि तथा 'साधनों की वृद्धि' के अनुपात की व्याख्या, समोत्पाद वक्र नहीं कर पाता है। इसके लिए समोत्पाद वक्रों के साथ "उत्पाद के विस्तार' का विश्लेषण आवश्यक है।

10.10 शब्दावली

- **अनुपात** - अनुपात की धारणा अल्पकालीन है क्योंकि अल्पकाल में पर्याप्त समय की अनुपलब्धता के कारण स्थिर साधन के साथ केवल परिवर्ती साधनों में ही परिवर्त सकते हैं। परिवर्ती साधनों में परिवर्तन के कारण, सभी साधनों के अनुपात में परिवर्तन होता है परिणामस्वरूप अनुपात का विचार ह्रासमान प्रतिफल नियम में निहित है।
- **सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर** - (X1,X, उत्पादन के साधन है) एक सम मात्र वक्र की ढाल का माप है। किसी एक बिन्दु पर एक सम–मात्र वक्र की ढाल का माप, उस बिन्दु पर साधनों की सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर को भी दर्शाता है।

10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1(क) – साधन-साधन सम्बन्ध एक किसान को किसी एक फसल के पैदा करने के लिए दो या दो से अधिक साधनों के ऐसे मिश्रण के बारे में निर्णय लेने में सहायता करती है जिससे कि उस फसल के उत्पादन की लागत न्यूनतम हो जाती है। दूसरे शब्दों में आप यह कह सकते हैं कि साधन–साधन उत्पादन फसल के अन्तर्गत किसी वस्तु का उत्पादन कैसे किया जाय सम्बन्धित निर्णय लिए जाते हैं।

1(ख) – साधन-साधन सम्बन्धित मान्यताएँ निम्नलिखित हैं

एक फसल के उत्पादन के लिए केवल दो चल साधनों का प्रयोग हुआ है।

• बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।

• फसलों के उत्पादन की मात्रा में या साधनों के प्रयोग में परिवर्तन साधन तथा उत्पाद के मूल्य में परिवर्तन नहीं लाते हैं अर्थात प्रत्येक स्थिति में साधन तथा उत्पाद के मूल्य वही रहते हैं।

1(ग)– समोत्पाद वक्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं

1. सम मात्र वक्र ऊपर से नीचे दाईं ओर को आता है,

2. समोत्पाद वक्र प्रायः शून्य बिन्दु (origin) की ओर उत्तल या अन्नतोदर होते हैं,

3. जैसे-जैसे एक समोतपाद वक्र का स्तर ऊँचा होता जाता है, इसके द्वारा दिखायी जाने ___ वाली उत्पाद की मात्रा बढ़ती जायेगी,

4. दो सम–मात्रा वक्र एक दूसरे को कभी भी नहीं काटते या छूते हैं,

5. समोत्पाद वक्र को उत्पादन की इकाइयों की संख्या में व्यक्त किया जाता है जबकि उदासीनता वक्र या तटस्थता वक्र को इस प्रकार प्रकट नहीं किया जा सकता है क्योंकि उपभोक्ता द्वारा प्राप्त संतुष्टि को मापने हेतु भौतिक इकाइयों का अभाव होता है,

6. सम-मात्र वक्र उत्पादन की प्रक्रिया से सम्बन्धित होता है जबकि तटस्थता वक्र उपभोक्ता की संतुष्टि या उपभोग की प्रक्रिया से सम्बन्धित होता है।

1(घ) - उत्पाद रेखा एक समोत्पाद वक्र से दूसरे समोत्पाद वक्र पर जाने की गति (चलने की क्रिया) प्रदर्शित करती है, जब हम सभी साधनों या किसी एक साधन में परिवर्तन लाते हैं। इस प्रकार 'उत्पाद रेखा' उत्पाद के विस्तार के सम्भावित प्राविधिक पथ प्रदर्शित करती है।

2 (क) – सत्य, (ख) असत्य, (ग) असत्य

3 (क) - अ, (ख) – अ, (ग) – ब, (घ) – स

4 (क) – सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर की प्रत्येक एक अतिरिक्त इकाई के बढ़ाने पर दूसरे इकाई के प्रत्येक इकाई की मात्रा घटती जाती है। जिसके कारण समोत्पाद वक्र शून्य बिन्दु की ओर उत्तल होता है।
(ख)– किसी उत्पाद की एक विशेष मात्रा पर आने वाली लागत तभी न्यूनतम होगी जब PX, Iसम-लागत रेखा की ढाल का माप | समोत्पाद वक्र की ढाल के माप ANके AX, बराबर हो।
(ग)- तटस्थता वक्र
(घ)- सम-लागत रेखा पर किसी भी बिन्दु पर वस्तु के उत्पादन की लागत समान रहती

5 (क) - कमी, (ख) – उत्पाद विस्तार

10.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- सोनी, आर.एन. (2008), 'कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय', विशाल पब्लिशिंग कं0 जालन्धर, इण्डिया, पृ. 301

- सेठ, एम.एल. 'माइक्रो अर्थशास्त्र', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 258
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण प्ररिषद् (2000), 'व्यष्टि अर्थशास्त्र – एक परिचय', नई दिल्ली

10.13 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

- लाल, एस.एन. (2003), 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त', व्यष्टि अर्थशास्त्र', शिव पब्लिशिंग हाउस, इलहाबाद।
- Tyagi, B.P., (1998), "Agricultural Ecomomics and Rural Development," A.D. offset printers, Meerut
- पंत, जे0 सी0, एवं मिश्रा, जे0 पी0 (2010) "व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

10.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समोत्पाद वक्र और सीमान्त तकनीकी प्रतिस्थापन दर की व्याख्या कीजिए।
2. दो साधनों के न्यूनतम लागत पर उत्पादन की विस्तृत चर्चा कीजिए तथा इसे रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए।

इकाई 11- उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध
(Production-Production Relationship)

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध
11.4 उत्पादन संभावना वक्र
11.4.1 सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर
11.5 उत्पादन संभावना वक्र एवं दो उत्पादों के आपसी सम्बन्ध
11.6 उत्पादन संभावना वक्र एवं विवेकपूर्ण उत्पादन
11.7 सम-आय रेखा
11.8 उत्पादन सम्भावना वक्र तथा अधिकतम आय के लिये शर्ते
11.9 अभ्यास प्रश्न
11.10 सारांश
11.11 शब्दावली
11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
11.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.15 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

उत्पादन फलन, सम्बन्ध एवं नियम से सम्बन्धित यह ग्यारहवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई में साधन-साधन सम्बन्ध के बारे में अध्ययन किया गया था। साधन-साधन सम्बन्ध परिचर्चा इस बारे में थी कि जब दो चल साधन किसी वस्तु की एक विशेष मात्रा को प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं, तो इन साधनों का क्या सम्मिश्रण होना चाहिए कि इनकी पूर्व प्रचलित नियत दामों पर, कुल लागत न्यूनतम हो जाये।

प्रस्तत इकाई में उत्पाद उत्पाद सम्बन्ध के बारे में परिचर्चा की जायेगी जिसमें यह बताया जायेगा कि यदि किसान के पास एक चल साधन जिससे वह दो (या दो से अधिक) फसलों का उत्पादन कर सकता है तो वह उससे, इन फसलों के किस सम्मिश्रण को प्राप्त करने की चेष्टा करे कि जिससे फसलों के प्रचलित नियत मूल्यों पर उसकी कुल आय (total revenue) अधिकतम हो जाये। वर्तमान इकाई के अध्ययन के बाद आप अधिकतम आय प्राप्त करने वाली अनुकूलतम शर्तों की चर्चा कर सकेंगे।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि

- ✓ उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध किसे कहते हैं?
- ✓ उत्पादन सम्भावना वक्र के किस बिंदु पर अधिकतम आय प्राप्त किया जा सकता है?
- ✓ सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर क्या है?

11.3 उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध

उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध के अन्तर्गत किस उत्पाद वस्तु का उत्पादन किया जाये सम्बन्धी निर्णय लिया जाता है। इसके लिए उत्पादन सम्भावना वक्र का प्रयोग किया जाता है। अधिकतम आय सुनिश्चित करने के लिए उत्पादन सम्भावना वक्र के अतिरिक्त सम-आय (Iso-Revenue) रेखा का प्रयोग किया जाता है। जिस तरह से साधन-साधन सम्बन्धों की अनुकूलतम स्थिति को जानने के लिए आप दो उपकरणों का प्रयोग किये थे। वे उपकरण थे-

(1) सम–मात्रा वक्र तथा

(2) सम-लागत रेखा,

उसी तरह से उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध की अनुकूलतम स्थिति के बारे में जानने के लिए निम्नलिखित दो उपकरणों का प्रयोग करेंगे

(1) उत्पादन संभावना वक्र, तथा

(2) सम-आय रेखा

11.4 उत्पादन सम्भावना वक्र

उत्पादन संभावना वक्र पूर्ति पक्ष को व्यक्त करता है। यह बताता है कि कोई किसान उपलब्ध उत्पादन के साधनों का अधिकतम कुशलता से प्रयोग करते हुए दो वस्तुओं के कोन-कौन से विविध वैकल्पिक संयोगों का उत्पादन कर सकता है। उत्पादन सम्भावना वक्र को उत्पाद रूपान्तरण वक्र भी कहते हैं। इसी को सम-साधन वक्र भी कहा जाता है। उत्पादन सम्भावना वक्र इस मान्यता पर आधारित है कि किसान के पास कुछ और साधन तो है, परन्तु वे एक विशिष्ट (specific) प्रकृति के हैं तथा किसी विशेष फसल के उत्पादन के लिए ही प्रयोग में लाये जा सकते हैं। इस कारण उनके, एक से अधिक फसलों के उत्पादन के लिये प्रयोग किये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

उत्पादन संभावना वक्र की ढलान किसी एक उत्पाद की उस मात्रा को मापती है जो किसी दूसरी उत्पाद की अतिरिक्त इकाई पाने के लिए छोड़नी पड़ती है। उत्पादन सम्भावना वक्र दो उत्पादों के बीच भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बन्धों तथा इनके कारण प्राप्त होने वाले विभिन्न प्रकार के उत्पादन सम्भावना वक्रों का वर्णन करता है।

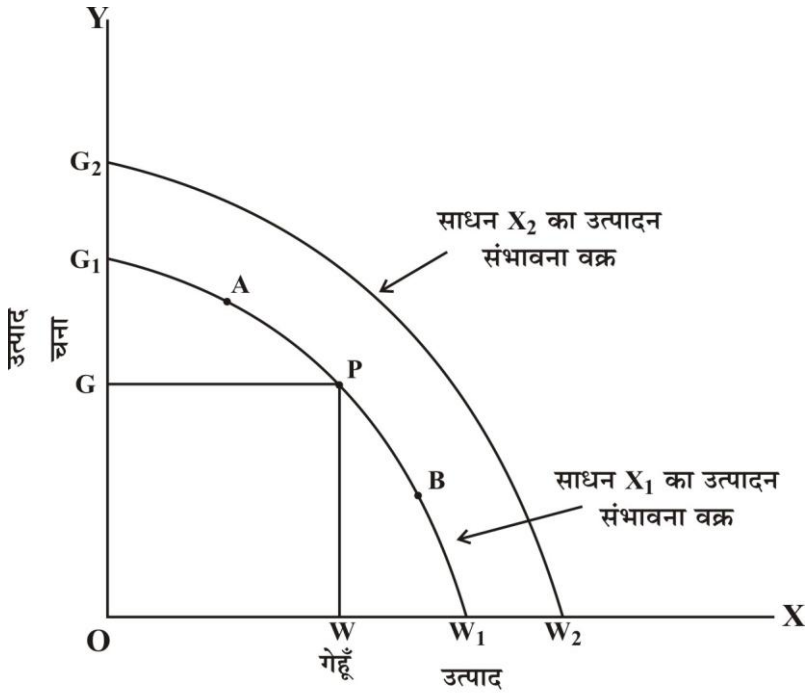

रेखाचित्र 11.1 : उत्पादन संभावना वक्र

उत्पादन संभावना वक्र रेखाचित्र 11.1 में उत्पादन सम्भावना वक्र को दिखाया गया है। कल्पना कीजिए कि एक किसान के पास एक चल साधन की X मात्रा है तथा इससे वह दो फसलों X अक्ष पर गेहूँ तथा Y अक्ष पर चना का उत्पादन कर सकता है। जब किसान के पास साधन X1 की एक नियत मात्रा है, तो वह इससे या तो गेहूँ का उत्पदन (OW) कर सकता है या चना का (OGI) या फिर दोनों के किसी सम्मिश्रण का। जैसे कि बिन्दु P पर दिखाया गया है। बिन्दु P पर गेहूँ का OW एवं चना का OG का उत्पादन कर सकता है। बिन्दु GPW1 को जोड़ देने से जो रेखा प्राप्त होती है उसे उत्पादन संभावना वक्र कहते हैं। साधन X का GW उत्पादन सम्भावना वक्र है। यदि किसान केवल गेहूँ या केवल चना का उत्पादन करने की बजाय, इनके मिले-जुले उत्पादन को प्राप्त करना चाहता है तो वह उत्पादन संभावना वक्र GW1 के किसी भी बिन्दु (A,P,B आदि) पर दोनों फसलों के कई सम्मिश्रण प्राप्त कर सकता है। जब साधन की मात्रा में वृद्धि (X2) होती है, तो उत्पादना संभावना वक्र दायीं की ओर जाता है जिसे G,W2 से दिखाया गया है। तकनीकी में वृद्धि या सुधार के फलस्वरूप भी उत्पादन में वृद्धि होती है। उत्पादन संभावना वक्र इस मान्यता पर आधारित है कि दिये हुए साधन द्वारा, पैदा किये दोनों उत्पाद एक दूसरे के प्रतियोगी है तथा दोनों का उत्पादन, साधन के घटते हुए सीमान्त वस्तुपरक उत्पादन के नियम के अनुसार होता है।

11.4.1 सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर (Marginal Rate of Product Substitution – MRPS) या सीमान्त उत्पाद रूपान्तरण दर (Marginal Rate of Transformation)

सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर एक उत्पादन संभावना वक्र के किसी एक बिन्दु पर, एक उत्पाद (मान लो गेहूँ) की वह मात्रा दिखाती है जो कि दूसरे उत्पाद (मान लो चना) की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिये,

गेहूँ के उत्पादन की इकाई को छोड़नी पड़ेगी। सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर (MRPS) को इस प्रकार दर्शाया जायेगा।

$$MRPS_{GW} = \frac{\Delta W}{\Delta G}$$

$MRPS_{GW}$ उत्पादन सम्भावना वक्र की ढाल को भी दर्शाता है। इसलिये हम कह सकते हैं कि एक उत्पादन संभावना वक्र के किसी बिन्दु पर MRPS उस वक्र की ढाल $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ के माप के बराबर होगा। एक उत्पादन संभावना की ढाल प्रायः नकारात्मक होती है।

11.5 उत्पादन सम्भावना वक्र एवं दो उत्पादों के बीच आपसी सम्बन्ध

अभी तक आप समझ गये होंगे कि उत्पादन संभावना वक्र इस मान्यता पर आधारित है कि एक दिये हुए साधन के द्वारा जिन दो वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, वे एक दूसरे के प्रतियोगी उत्पाद है तथा दोनों का उत्पादन साधन के घटते हुए सीमान्त वस्तुपरक उत्पादन के नियम के अनुसार होता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि दो उत्पाद के आपसी सम्बन्ध के कुछ और भी आधार होते हैं, जिसके कारण उत्पादन संभावना वक्र की शक्लें कई प्रकार की होती है। उत्पादन संभावना वक्र उत्पाद की प्रकृति एवं विशेषता पर निर्भर करता है। विभिन्न प्रकार के उत्पादन संभावना वक्र का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

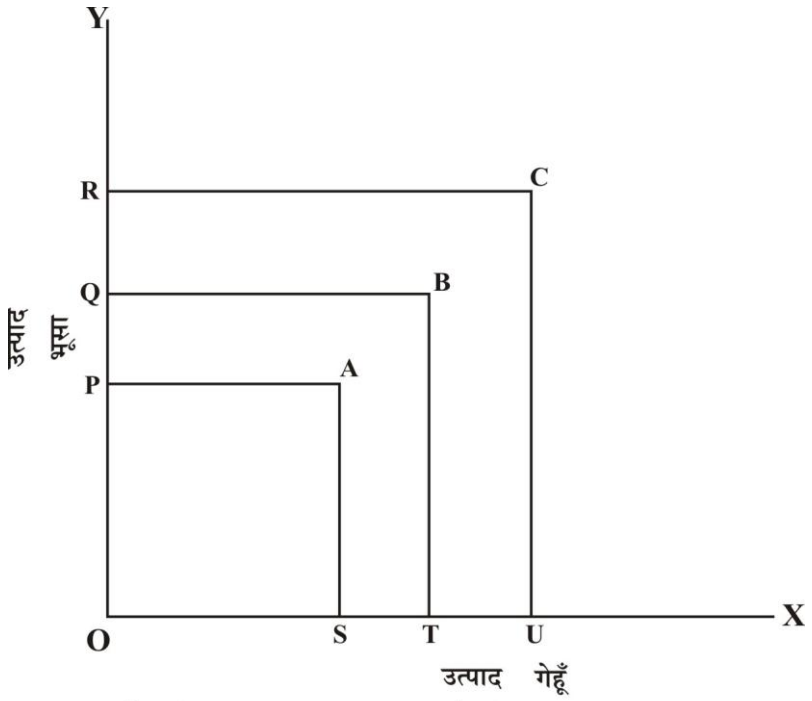

रेखाचित्र 11.2 : संयुक्त उत्पाद के लिए उत्पादन संभावना वक्र

(1) संयुक्त उत्पाद और उत्पादन संभावना वक्र (Joint Product and Production Posibility Curve): संयुक्त उत्पाद से तात्पर्य उस उत्पाद से होता है जब एक उत्पाद के उत्पादन प्रक्रिया में दूसरे उत्पाद का उत्पादन स्वयं होता है जैसे गेहूँ तथा भूसा, किसी पशु का मांस तथा उसकी खाल आदि। रेखाचित्र 11.2 में स्थिर अनुपात के अन्तर्गत उत्पादित संयुक्त उत्पाद के उत्पादन के लिए उत्पादन संभावना वक्र को दिखाया गया। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि एक उत्पाद में वृद्धि के साथ दूसरे उत्पाद में भी वृद्धि दर्ज हो रही है।

(2) संपूरक उत्पाद (Complementary Product) तथा उत्पादन संभावना वक्र: जब एक दिये हुए साधन की मात्रा के प्रयोग से एक उत्पाद का उत्पादन दूसरे उत्पाद के उत्पादन में (बिना पहले उत्पाद के उत्पादन में घटाये) वृद्धि करता है तो ऐसे उत्पाद को संपूरक उत्पाद कहते हैं। कृषि में प्रायः संपूरक उत्पादों के उदाहरण मिश्रित खेती में मिलते हैं, जैसे गेहूँ तथा सरसों की खेती। दोनों फसलों को इकट्ठा उगाने से, एक सीमा तक दोनों उत्पाद के उत्पादन में वृद्धि होती है। परन्तु एक सीमा के बाद ये दो उत्पाद एक दूसरे के प्रतियोगी उत्पाद बन जाते हैं। अर्थात् एक उत्पाद में वृद्धि दूसरे उत्पाद में कमी लाने लगता है। इस तरह के उत्पादन संभावना वक्र को रेखाचित्र 11.3 में दिखाया गया है।

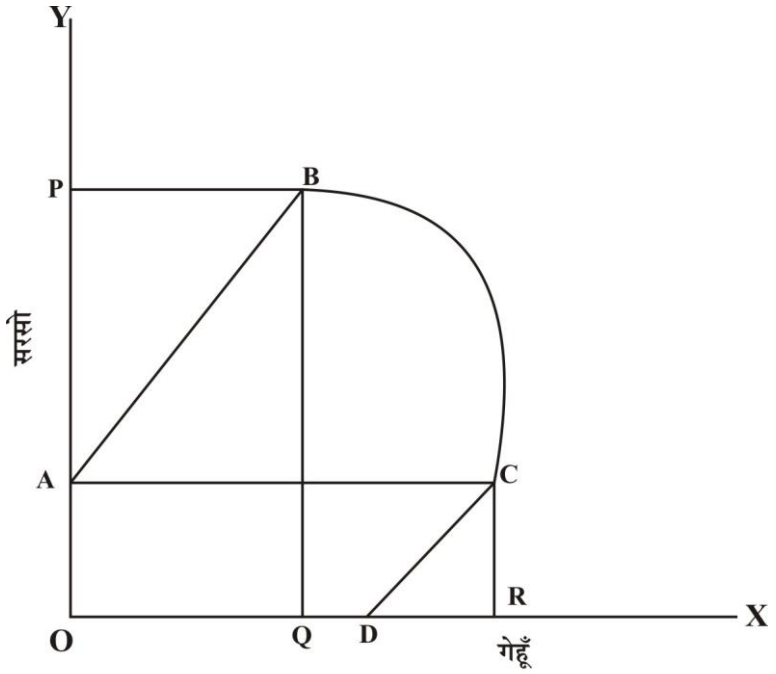

रेखाचित्र 11.3 : संपूरक उत्पाद के लिए उत्पादन संभावना वक्र

संपूरक उत्पाद के लिए उत्पादन संभावना वक्र ABCD उत्पादन संभावना वक्र है। उत्पादन संभावना वक्र के बिन्दु A से लेकर बिन्दु B तक तथा बिन्दु B से C तक गेहूँ के उत्पादन में वृद्धि सरसों के उत्पादन में भी वृद्धि ला रही है। रेखाचित्र 11.3 में स्पष्ट है कि गेहूँ तथा सरसों संपूरक उत्पादन है। यदि एक उत्पादक, साधन की दी हुई मात्रा से केवल सरसों का उत्पादन करता है तो वह सरसों का केवल OA मात्रा का उत्पादन कर सकता है। परन्तु वह साधन की इस मात्रा का कुछ भाग गेहूँ के उत्पादन में लगाता है, तो सरसों का उत्पादन घटने की बजाय बढ़ता जाता है, इसी के साथ गेहूँ का उत्पादन भी बढ़ता जाता है। ऐसा तब तक होता रहता है जब तक दोनों उत्पाद का उत्पादन OP के बराबर नहीं हो जाता है या QB के बराबर नहीं हो जाता है। बिन्दु B के पश्चात यदि साधन की और मात्रा, गेहूँ के उत्पादन के लिए लगी जाती है, तो सरसों का उत्पादन कम होने लगता है अर्थात् उत्पादन संभावना वक्र पर बिन्दु B के पश्चात गेहूँ उत्पाद सरसों का सम्पूरक होने की बजाय, सरसों का प्रतियोगी बन जाता है। अब गेहूँ के उत्पादन में वृद्धि करने पर, सरसों की मात्रा में कमी हो जायेगी। बिन्दु B एवं C उत्पादन संभावना वक्र के उस वक्र को दर्शाता है जहाँ दोनों फसलें एक दूसरे के प्रतियोगी है। उत्पादन संभावना वक्र ABCD के दो सिरों AB एवं CD पर दो उत्पादों की संपूरक वृत्ति दिखायी देती है, बिन्दु B एवं C के बाद ये उत्पाद एक दूसरे के प्रतियोगी बन जाते हैं। (3) अनुपूरक उत्पाद (Supplementary Product) तथा उत्पादन संभावना वक्र: फसलों का उत्पादन एक मौसमी प्रक्रिया है, एक निश्चित मौसम के आने से उस अवधि में एक साधन श्रम के रूप में पूर्णतया व्यस्त हो

जाते हैं। परन्तु उस अवधि के पश्चात श्रमिकों की आवश्यकता कम हो जाती है। इस प्रकार के समय में कुछ श्रम को मुर्गी पालन आदि के कामों में लगाया जा सकता है। इससे फसलों के उत्पादन में न तो कमी आयेगी और न ही यह बढ़ेगा। इस प्रकार के उत्पाद के लिए उत्पादन संभावना वक्र को रेखाचित्र 11.4 में दिखाया गया। X अक्ष पर उत्पाद X एवं Y अक्ष पर उत्पाद Y को दिखाया गया है।

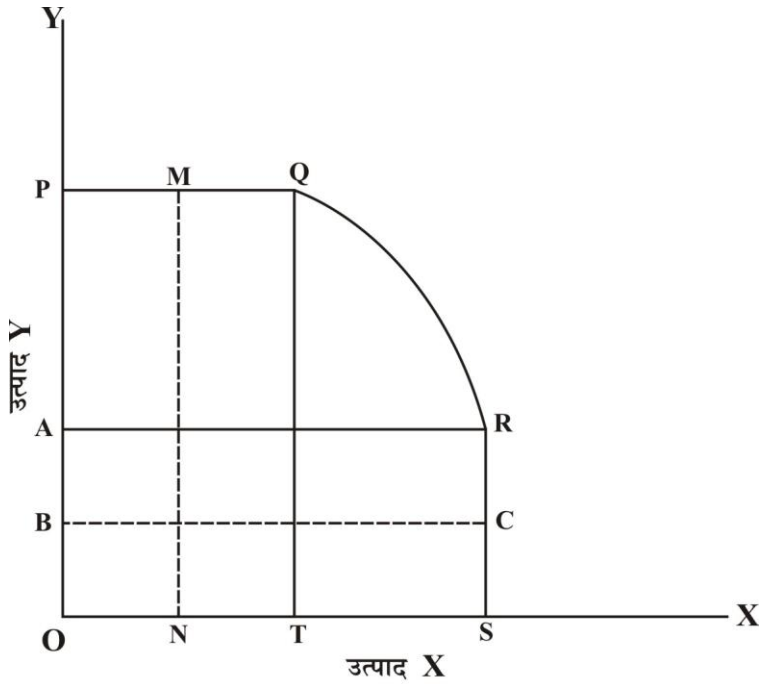

रेखाचित्र 11.4 : अनुपूरक उत्पाद के लिए उत्पादन संभावना वक्र

PQRS उत्पादन संभावना वक्र है। जब उत्पाद X की मात्रा ON से बढ़ा कर OT की जाती है, तो उत्पाद Y की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है, Y उत्पाद का उत्पादन पहले की स्थिति OP पर बना हुआ है यहाँ रेखा उत्पादन संभावना वक्र की वह बिन्दु है जहाँ पर उत्पाद X, उत्पाद Y का अनुपूरक है। इसी तरह से उत्पाद Y, उत्पादन संभावना वक्र के दो सिरों, R,S पर उत्पाद X का अनुपूरक है। परन्तु यह दोनों उत्पाद उत्पादन संभावना वक्र PQRS के QR भाग में प्रतियोगी हो गये हैं। इस भाग में एक उत्पाद की अधिक मात्रा को केवल दूसरे उत्पाद की पहली मात्रा को घटाकर ही प्राप्त किया जा सकता है।

(4) प्रतियोगी उत्पाद और उत्पादन संभावना वक्र दो उत्पाद उस समय प्रतियोगी उत्पाद कहे जाते हैं जब दिये हुए साधन की मात्रा वही रहने पर, एक उत्पाद की मात्रा को बढ़ाने के लिए दूसरे उत्पाद में लगे हुए साधन की मात्रा को कम करना पड़ता है, फसस्वरूप, एक उत्पाद की मात्रा में वृद्धि, दूसरे उत्पाद की मात्रा में कमी लाती है। प्रतियोगी उत्पाद की स्थानापत्ति दर, एक नियत दर या बढ़ती हुई दर या घटती हुई दर से हो सकती है, यद्यपि प्रतियोगी उत्पाद के लिए उत्पादन संभावना वक्र प्रत्येक अवस्था में ऊपर से नीचे दाईं ओर ही आयेंगे, परन्तु इनकी गोलाई (Curvature) भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग होगी जैसा कि रेखाचित्र 11.5 में दिखाया गया है

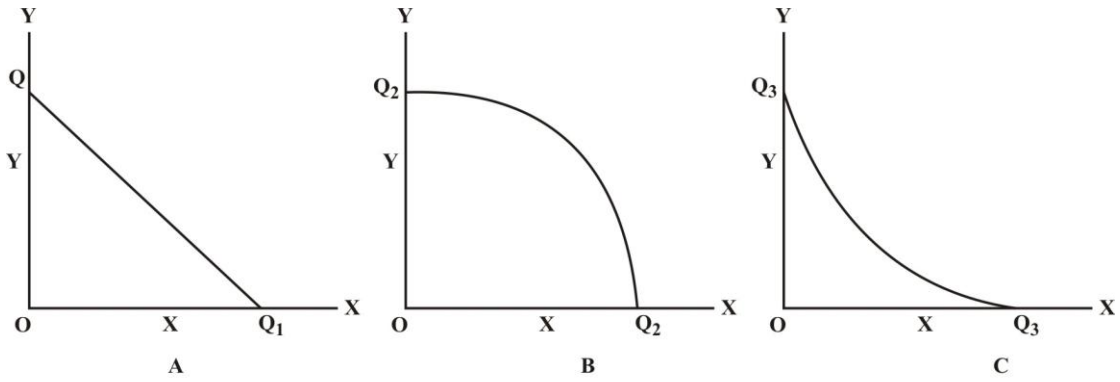

रेखाचित्र 11.5 - प्रतियोगी उत्पाद के लिए उत्पादन संभावना वक्र

रेखाचित्र 11.5 - प्रतियोगी उत्पाद के लिए उत्पादन संभावना वक्र रेखाचित्र 11.5(A) में QQ1 उत्पादन संभावना वक्र है। यह उत्पादन संभावना वक्र ऊपर से नीचे दाईं की ओर एक सीधी रेखा है। जब दो उत्पादों की उत्पादन संभावना वक्र ऊपर से नीचे दाईं, एक सीधी तिरछी रेखा के रूप में होती है, तो यह दर्शाती है कि एक उत्पाद की मात्रा में नियत वृद्धि, दूसरे उत्पाद की मात्रा नियत कमी लाता है अर्थात् जैसे-जैसे उत्पाद के उत्पादन में एक नियत मात्रा में वृद्धि होती है तो Y उत्पाद के उत्पादन में प्रत्येक बार, एक नियत/स्थिर मात्रा से कमी होती है। दूसरे शब्दों में आप कह सकते हैं कि इस तरह के उत्पादन संभावना वक्र में दो उत्पादों की सीमान्त प्रतिस्थापन (स्थानापत्ति) दर स्थिर होती है। इस तरह का उत्पादन संभावना वक्र (QIQ1) स्थिर अवसर लागत के अन्तर्गत होता है। रेखाचित्र 11.5(B) में दो उत्पादों का उत्पादन संभावना वक्र (Q.Q.) मूल बिन्दु के प्रति नतोदर (concave) है, जो यह बताता है X उत्पाद की एक अतिरिक्त इकाई के लिए Y उत्पाद की छोड़े जाने वाली इकाई, X उत्पाद की एक अतिरिक्त इकाई से अधिक होती है, इसी कारण यह वक्र मूल बिन्दु की ओर नतोदर होता है, अर्थात् वस्तु X का सीमान्त प्रतिस्थापन दर बढ़ता जाता है, दूसरे शब्दों में आप कह सकते हैं कि बढती अवसर लागत के अन्तर्गत उत्पादन संभावना वक्र मल बिन्द के प्रति नातेदार होती है जैसे कि रेखाचित्र 11.5(B) में दिखाया गया है। इसको यह भी कह सकते हैं कि उत्पादन संभावना वक्र मूल बिन्दु की ओर उस समय अवतल (concave) होता है जब दोनों उत्पादों के उत्पादन फलन घटते हुए सीमान्त प्रतिफल के नियम पर आधारित होते हैं या फिर उनमें एक घटते हुए सीमान्त प्रतिफल के नियम का अनुसरण करता है, जबकि दूसरा स्थिर सीमान्त प्रतिफल के नियम का।

रेखाचित्र 11.5(C) में Q3Q3 उत्पादन संभावना वक्र है, जो मूल बिन्दु के प्रति उत्तल/ उन्नतोदर (Convex) है। यह वक्र उस समय प्रकट होता है जब (1) दोनों वस्तुओं का उत्पादन बढ़ते हुए सीमान्त प्रतिफल नियम के अनुसार होता है, या फिर (2) एक का उत्पादन बढ़ते हुए सीमान्त प्रतिफल के नियम के अनुसार होता है तथा दसरे का उत्पादन स्थिर सीमान्त प्रतिफल नियम के अनुसार होता है। यह वक्र यह दर्शाता है कि X वस्तु के एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए, दूसरी वस्तु Y की छोड़े जाने वाली मात्रा में, प्रत्येक बार में कमी होती जाती है, अर्थात X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन लागत Y के रूप में कम है। दूसरे शब्दों में आप कह सकते हैं कि घटती अवसर लागत के अन्तर्गत उत्पादन संभावना वक्र उन्नतोदर होती है। अब आप समझ गये होंगे कि स्थिर अवसर लागत के अन्तर्गत जैसे-जैसे X वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई में वृद्धि होती जाती है, AY) का माप स्थिर रहता है रेखाचित्र 11.5(A) में दिखाया गया है। रेखाचित्र

11.5(B) में जैसे-जैसे X की एक अतिरिक्त इकाई में वृद्धि होती है तो ८ का माप बढ़ता जाता है उसी तरह से घटती अवसर लागत के अन्तर्गत X उत्पाद की एक $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ अतिरिक्त इकाई में वृद्धि होती है तो a का माप घटता जाता है जिसे रेखाचित्र 11. 5(C) में स्पष्ट किया गया है।

11.6 उत्पादन संभावना वक्र एवं विवेकपूर्ण उत्पादन

आपको याद होगा कि इससे पहले आप साधन-साधन सम्बन्ध में सम-मात्रा वक्र के अन्तर्गत विवेकपूर्ण उत्पादन का अध्ययन किया था तथा आप यह भी समझ गये होंगे कि न्यूनतम लागत पर वही उत्पादन की मात्रा को प्राप्त करने के लिए समोत्पाद वक्र के अतिरिक्त सम-लागत रेखा की आवश्यकता पड़ती है। इसी तरह से उत्पाद-उत्पाद के अनुकूलतम सम्बन्ध के लिए आवश्यक शर्तों को ढूंढने के लिए सम-आय रेखा (Isorevenue line) की आवश्यकता पड़ती है। सम-आय वक्र का अध्ययन इसके बाद करेंगे। इससे पहले, आपको एक दिये हुए उत्पादन सम्भावना वक्र के विवेकपूर्ण उत्पादन वाले भाग के बारे में जानना आवश्यक है, क्योंकि एक विवेकशील किसान सदा ही उत्पादन संभावना वक्र के विवेकपूर्ण उत्पादन वाले भाग में ही उत्पादन के बारे में कोई निर्णय लेगा।

एक उत्पादन संभावना वक्र का वही भाग विवेकपूर्ण उत्पादन का भाग माना जाता है जहां दोनों उत्पाद प्रतियोगी होते हैं। अगर उत्पा ाद कोई विशेष उत्पाद है जैसे संपूरक या अनुपूरक, जहां एक उत्पादन की मात्रा बढ़ने पर दूसरे उत्पाद की मात्रा भी बढ़ जाती है या वही रहती है जैसे कि रेखाचित्र 11.3 में AB एवं DC द्वारा दिखाया गया है एवं रेखाचित्र 11.4 में PQ एवं SR द्वारा क्रमशः दिखाया गया है। AB एवं DC तथा PQ एवं SR भाग को विवेकहीन उत्पादन वाले भाग कहे जाते हैं, क्योंकि उत्पादक को इन भागों के किसी भी बिन्दु पर उत्पादन को बन्द नहीं करना चाहिए। रेखाचित्र 11.3 एवं 11.4 में स्पष्ट है कि जब एक उत्पादक, अपनी ओर से एक विशेष उत्पाद की मात्रा, मान लो गेहूं की मात्रा को बढ़ाने के लिये और साधन लगा रहा है तो इसके साथ ही दूसरे उत्पाद सरसो की मात्रा अपने आप बढ़ रही है, तो उत्पादक को इस गेहूं की मात्रा बढ़ाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वह तो गेहूं के उत्पादन को अधिक न बढ़ाने के बारे में तभी सोचेगा जब इसके उत्पादन को बढ़ाने के लिये, सरसों के उत्पादन को घटाना पड़ेगा या जब ये उत्पादन एक दूसरे के प्रतियोगी हो जायेंगे। इसे रेखाचित्र 11.4 में स्पष्ट किया गया है।

इस व्याख्या के अनुसार रेखाचित्र 11.3 एवं 11.4 में उत्पादन संभावना वक्रों में AB एवं DC तथा PQ एवं SR भाग क्रमशः विवेकहीन उत्पादन वाले भाग हैं तथा BC एवं QR भाग क्रमशः विवेकपूर्ण उत्पादन को दर्शाते हैं। अब आप समझ गये होंगे कि उत्पादन संभावना वक्र का वही भाग विवेकपूर्ण माना जाता है जहां दोनों उत्पाद एक दूसरे के प्रतियोगी हों, अर्थात् जब एक उत्पाद की मात्रा बढ़ाना हो तो दूसरे उत्पाद की मात्रा को घटना आवश्यक हो जाता है। इस वृद्धि से प्रतियोगी उत्पादों के तीनों उत्पादन संभावना वक्र एक सिरे से दूसरे सिरे तक (रेखाचित्र 11.5 का A,B तथा C में दिखाये गये वक्र) विवेकपूर्ण उत्पादन को दिखाते हैं।

11.7 सम आय रेखा (Iso-revenue line)

उत्पादन संभावना वक्र के दो उत्पादों के किस सम्मिश्रण पर अधिकतम आय प्राप्त होगा। इसे जानने के लिये उत्पादन संभावना वक्र के साथ-साथ आपको सम-आय रेखा की जानकारी होनी चाहिए। जिस प्रकार एक उत्पादन संभावना वक्र, दो उत्पादों के उस विभिन्न सम्मिश्रणों की जानकारी देता है जो कि एक दिये हुए साधन के द्वारा उस वक्र पर समान रूप से प्राप्त होता है, वैसे ही एक सम-आय रेखा दो उत्पादों के उस सम्मिश्रण को दिखाती है जहाँ पर यह सम-आय रेखा उत्पादन सम्भावना वक्र को स्पर्श करती है। उत्पादन संभावना वक्र और सम-आय रेखा का स्पर्श बिन्दु ही अधिकतम आय को दिखाता है। अब आप समझ गये होंगे कि सम-आय रेखा दो उत्पादों के उस सम्श्रिण को दिखाती है जिनको इन उत्पादों के दिये हुए स्थिर या नियत (fixed) दामों पर बेचने से प्राप्त होने वाली कुल आय वही रहती है। दोनों उत्पादों को बेचने से जो आय प्राप्त होगी, इसे इस प्रकार लिख सकते है

कुल आय (Total Revenue, TR) = उत्पाद X की मात्रा (Qx) गुणांक उत्पाद X की कीमत (Px)

कुल आय = Qx.Px

क्योंकि उत्पादन संभावना दो उत्पाद के संयोग या सम्मिश्रण को दर्शाती है जहां उत्पादक दिये हुए साधन से दोनों उत्पादों के सम्मिश्रण को प्राप्त करेगा। इसलिये यहाँ पर कुल आय = Qx.Px+Qy.Py होगा जहाँ Qx तथा Qy दो उत्पाद की मात्रा है Px

M

My

तथा Py दो उत्पाद की कीमत है। हमारी मान्यता है कि कृषि में पूर्ण प्रतियोगिता होती है, इसलिए Px तथा Py सदा स्थिर (Constant) रहेंगे। उपर्युक्त समीकरण को इस प्रकार भी लिख सकते हैं

$TR = Qx.Px + Qy.Py$ OR $TR=Qy.Py+Qx.Px$

$Qx.Px=TR-Qy.Py$ $Qy.Py=TR-Qx.Px$

$$Qx = \frac{TR - Qy.Py}{Px} \qquad Qy = \frac{TR - Qx.Px}{Py}$$

$$Qx = \frac{TR}{Px} - \frac{Py}{Px}.Qy \qquad Qy = \frac{TR}{Py} - Qx.\frac{Px}{Py}$$

उपर्युक्त समीकरण में, रेखाचित्र 11.6 में X अक्ष पर इस रेखा की मूल बिन्दु (O) से दूरी (intercept) को दिखायेगी तथा $\frac{Py}{Qx}$ ढाल की माप को दिखायेगी। मान लीजिए उत्पाद X एवं Y की कीमत क्रमशः रु. 40 एवं 30 है, तथा उत्पादक की वांछित आय रु.160 है तो उत्पाद X की मूल बिन्दु (O) से दूरी होगी Qx=TR/Px=160/40-4 अर्थात् अगर उत्पादक Y उत्पाद का उत्पादन शून्य करता है तो रु.160 आय प्राप्त करने के लिए वह उत्पाद X की 4 इकाई का उत्पाद करेगा, इसी प्रकार से अगर उत्पादक केवल Y उत्पादन के उपयोग से वही आय (रु.160) को प्राप्त करना चाहता है तो उत्पाद X की शून्य इकाई तथा Y की TR/PY=160/30=5.33 इकाई (जो मूल बिन्द से Y अक्ष पर दूरी को दर्शा रहा है) से प्राप्त करेगा। दोनों उत्पाद के बिन्दुओं को जोड़ देने से जो रेखा प्राप्त होगी उसे सम-आय रेखा कहा जाता है। यह रेखा एक दी हुई वांछित आय (TR) का प्रतिनिधित्व करेगी, जिसे रेखाचित्र 11.6 में दिखाया गया है।

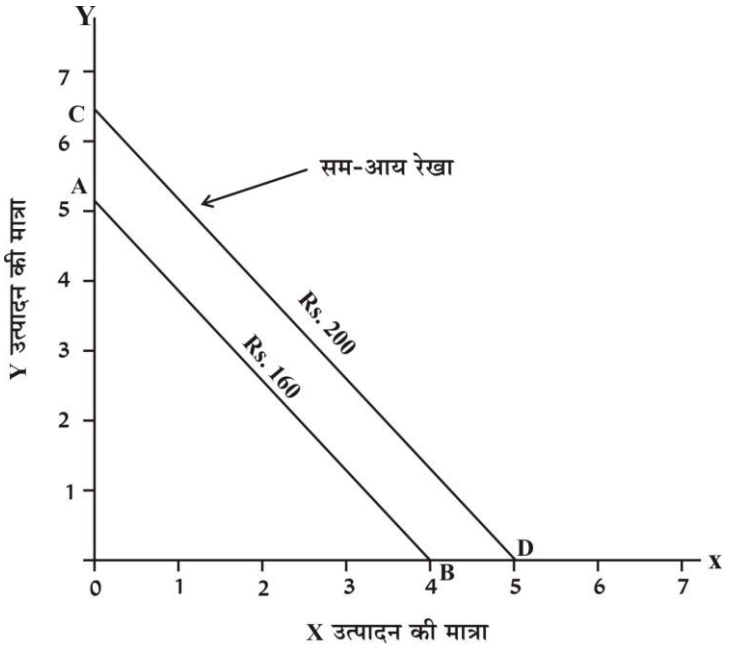

रेखाचित्र 11.6 : सम-आय रेखा

रेखाचित्र 11.6 में दो सम-आय AB तथा CD है जो कि क्रमश: 160 तथा 200 आय को दिखा रही है। सम-आय रेखा AB दो उत्पादों के उन सम्मिश्रणों को दिखाती है जिनको उनके प्रचलित (स्थिर) कीमत पर बेचने से एक ही आय प्राप्त होती है। यहाँ पर आप ध्यान दें कि प्रत्येक सम-आय रेखा का ढाल PY/PX के बराबर होगा, क्योंकि सभी सम-आय रेखा इस मान्यता पर बनाई गयी है कि प्रत्येक रेखा के लिए उत्पाद कीमत वही है, इसलिए सभी सम-आय रेखा की ढाल का माप वही होगा। इसका अर्थ यह होगा कि सभी सम-आय रेखा एक दूसरे के समानांतर होगी। अगर आप रेखाचित्र 11.6 में सम-आय रेखा CD को देखें तो वह सम-आय रेखा AB के समानांतर है तथा AB रेखा से ऊपर है। यह तब होता है जब वांछित आय अधिक हो और कीमत वही बनी रहे। रेखाचित्र 11.6 में सम-आय रेखा CD पर वांछित आय 200 है, जो कि वांछित आय 160 से अधिक है। अब वांछित आय रु0 200 पर सम-आय रेखा कैसी होगी या उत्पाद X और Y की मूल बिन्दु से दूरी को ज्ञान करने के लिए वांछित आय को उत्पाद की कीमत से भाग देने पर जो इकाई प्राप्त होगी, वही मूल बिन्दु से दूरी बतायेगी, जैसे उत्पाद X से कुल वांछित आय प्राप्त करना चाहते हैं तो रु. 200: 40=5 इकाई तथा Y की शून्य इकाई। इसी प्रकार उत्पाद Y से कुल आय प्राप्त करना चाहते हैं तो, 200/30=6.66 इकाई। इन दोनों बिन्दुओं X की शून्य से 5 तथा Y की शून्य से 6.66) को जोड़ने से सम-आय रेखा CD प्राप्त होगी। जिसे रेखाचित्र 11.6 में CD से दिखाया गया है।

आप समझ गये होंगे कि जब तक दो उत्पादों की कीमत वही रहता है, सम-आय रेखा की ढाल वही रहेगी। जब इनमें से किसी एक उत्पाद या दोनों उत्पाद की कीमत में परिवर्तन होता है तो सम-आय रेखा की ढाल में भी परिवर्तन होता है। मान लीजिए X की कीमत रु. 40 प्रति इकाई से गिरकर रु0 20 हो जाती है तो अब वही आय (रु. 160) प्राप्त करने के लिए 160/20=8 इकाई को बेचना होगा, जिससे सम आय रेखा AB का सिरा Y लंब पर वही रहेगा अर्थात 5.33 इकाई तथा X अक्ष पर बदल कर 8 इकाई पर चला जायेगा, बिन्दु AE को जोड़ देने से नयी सम-आय रेखा AE प्राप्त होगी जिस पर वही (रु. 160) आय प्राप्त करने के लिए X की अधिक इकाई बेच रहा है, क्योंकि यह उत्पाद पहले की अपेक्षा सस्ती हो गयी है। यहां पर आप ध्यान दें कि X की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप सम-आय रेखा AE ने सम-आय रेखा AB की जगह ले ली है। कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप सम-आय रेखा AE का ढाल, सम-आय रेखा AB से अलग होगा। नई सम-आय रेखा AE को रेखाचित्र 11.7 में दिखाया गया है।

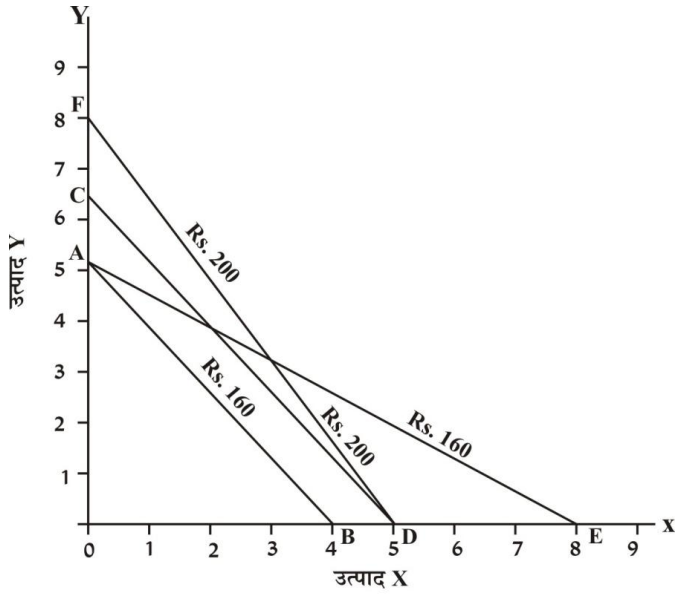

रेखाचित्र 11.7 - सम-आय रेखा पर उत्पाद के कीमतों में परिवर्तन का प्रभाव

इसी प्रकार से जब उत्पाद Y की कीमत कम हो जाती है तथा X की वही बनी रहती है, तो सम-रेखा में परिवर्तन आ जायेगा। मान लीजिए उत्पाद Y की कीमत प्रति इकाई रु. 30 से गिरकर रु. 25 हो जाती है तो वांछित आय वही (200) प्राप्त करने के लिए अब Y अक्ष पर उत्पाद Y की 8 इकाई (200/25) प्राप्त करेगा। बिन्दु DF को जोड़ देने से नयी सम-आय रेखा DF प्राप्त होगी जिसे रेखाचित्र 11.7 में दिखाया गया है। इस सम-आय रेखा पर वही वांछित आय (200) प्राप्त होगी, परन्तु इस रेखा की ढाल का माप वही नहीं रहेगा, बदल जायेगा, क्योंकि उत्पाद Y की कीमत में परिवर्तन हो गया है।

सम-आय रेखा AB पर वांछित आय 160 प्राप्त हो रहा है तथा सम-आय रेखा AE पर वही आय (160) प्राप्त हो रहा है क्योकिं सम-आय रेखा AB पर कुल आय (TR) है

TR=Qx.Px+Qy.Py 4x40+0x30 160+0=160 = रु. 160 इसी प्रकार सम-आय रेखा AE पर भी कुल आय 160 हैAE सम-आय रेखा पर कुल आय = Qx.Px+Qy.Py

= 8x20+0x30 =160+0 = रु. 160

इसी तरह से अन्य सम-आय रेखा को समझा सकते हैं।

11.8 उत्पादन संभावना वक्र तथा अधिकतम आय की शर्ते

जिस प्रकार से आप सम-मात्रा वक्र पर एक दिये हुए उत्पादन को प्राप्त करने के लिए दो साधनों के उस सम्मिश्रण का प्रयोग किये थे जो सम–लागत रेखा की न्यूनतम बिन्दु को स्पर्श करती थी उसी प्रकार से अब आप यहाँ पर जानने की चेष्टा करेंगे कि एक दिये हुए साधन के द्वारा दो उत्पादों के उत्पादन संभावना वक्र के किस बिन्दु पर अधिकतम आय प्राप्त होगी। उत्पाद संभावना वक्र पर अधिकतम आय प्राप्त करने के लिए हमें सम-आय रेखा की आवश्यकता पड़ेगी। उत्पादन संभावना वक्र पर अधिकतम आय प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित शर्तों का होना आवश्यक है

1. उत्पादन संभावना वक्र किस प्रकार का है- क्या यह अवतल (concave) है? या उत्तल (convex) या एक सीधी रेखा के रूप में है।
2. उत्पादन संभावना पर दिये हुए उत्पाद एक दूसरे के प्रतियोगी हो।
3. उत्पादन सम्भावना वक्र एक सिरे से दूसरे सिरे तक केवल विवेकपूर्ण उत्पादन को ही दिखाता है।
4. सम-आय रेखा इस मान्यता पर आधारित है कि दोनों उत्पाद के मूल्य कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता है।
5. अधिकतम आय वहाँ पर प्राप्त होगी जहाँ पर सम-आय रेखा, उत्पादन संभावना वक्र के उच्चतम बिन्दु को स्पर्श करती है।

उपर्युक्त शर्तों के आधार पर अवतल उत्पादन संभावना वक्र पर अधिकतम आय प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे।

उत्पादन

अधिकतम आय

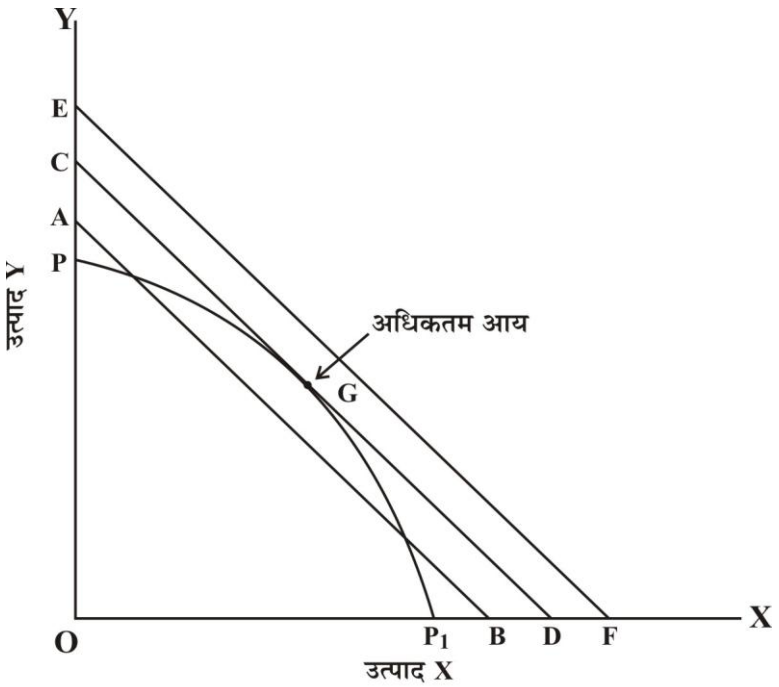

रेखाचित्र 11.8 : अवतल उत्पादन संभावना वक्र
पर अधिकतम आय

उत्पादx रेखाचित्र 11.8 : अवतल उत्पादन संभावना वक्र
पर अधिकतम आय रेखाचित्र 11.8 में उत्पादन संभावना वक्र दिखाया गया है, जिसमें उपर्युक्त बिन्दु 2 से 5 तक की सभी शर्ते लागू होती है। PP1 उत्पादन संभावना वक्र है। AB,CD,EF सम-आय रेखा है जो एक दूसरे के समानांतर है क्योंकि इसमें उपर्युक्त चौथी शर्त लागू
होती है। बिन्दु G अधिकतम आय को दर्शा रहा है। PP1 उत्पादन संभावना वक्र एक सबसे ऊँची सम-आय रेखा CD बिन्दु G पर स्पर्श कर रहा है। यही G पर उत्पादक को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में इस बिन्दु पर उत्पादन संभावना वक्र की ढाल सम-आय रेखा की ढाल के बराबर है। यही उत्पादक के लिए अपनी कुल आय को अधिकतम करने के लिए शर्त है। यहाँ पर ध्यान दें कि सम-आय रेखा जिस तरह से ऊपर दाहिने के तरफ जाती है, वह अधिक सम-आय की दिखाती है। उत्पादक सम-आय रेखा EF पर उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि यह उत्पादक की पहुंच से बाहर है। इसी तरह सम-आय रेखा (AB) पर उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि यह कम आय को दिखाती है।

जैसा कि आप जानते हैं कि एक उत्पादन संभावना वक्र के किसी बिन्दु पर, इसकी ढाल का माप उसके सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर (Marginal rate of product substitution) (ऊपर दिये गये रेखाचित्र 11.8 के अनुसार) के बराबर है।

सम-आय रेखा की ढाल का माप
के बराबर है यदि आप कुल आय को इस
Py
तरह से गणना करते हैं

$$TR = Qy.Py + Qx.Px$$

$$Qy.Py = TR - Qx.Px$$

$$Qy = \frac{TR - Qx.Px}{Py} \text{ or } Qy = \frac{TR}{Py} - \frac{Px}{Py}.Qx$$

अब आप समझ गये होंगे कि उत्पादक के लिए अधिकतम आय प्राप्त करने की शर्त यह है

$$\frac{\Delta Y}{\Delta X} = \frac{Px}{Py}$$

इस समीकरण को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है $\Delta y.Py = \Delta x.Px$

यहाँ पर ध्यान दें कि उत्पाद Y और उत्पाद X की मात्रा में परिवर्तन (अर्थात AY तथा AX) का कारण एक ही है। वह यह है कि साधन श्रमिक (L) का वही भाग (L) एक उत्पाद के उत्पदन की बजाय दूसरे उत्पादन में लगा दिया जाता है। अब यदि समीकरण $\Delta y.Py = \Delta x.Px$ के दोनों पक्षों को L से भाग देते हैं, तो इस समीकरण को इस प्रकार लिख सकते हैं

$$\frac{\Delta y.Py}{\Delta L} = \frac{\Delta x.Px}{\Delta L}$$

वास्तव में यह $\frac{\Delta y.Py}{\Delta L}$ साधन L की, उत्पाद Y से प्राप्त होने वाली सीमान्त मूल्य Ax.Px उत्पदकता ही है। इसी प्रकार समीकरण $\frac{\Delta.x.Px}{\Delta L}$ साधन L की, उत्पाद X के उत्पादन से प्राप्त होने वाली सीमान्त मूल्य उत्पादकता को दर्शाती है। दूसरे शब्दों में समीकरण $\frac{\Delta y.Py}{\Delta L} = \frac{\Delta x.Px}{\Delta L}$ को ऐसे भी लिख सकते हैं

साधन L की,

उत्पाद Y के उत्पादन से प्राप्त सीमान्त मूल्य उत्पादकता = साधन L की, उत्पाद X के उत्पादन से प्राप्त सीमान्त मूल्य उत्पादकता।

अब यदि साधन L की, उत्पाद Y के उत्पादन से प्राप्त सीमान्त मूल्य उत्पादकता एवं उत्पाद X के उत्पादन से प्राप्त सीमान्त मूल्य उत्पादकता को साधन L के मूल्य से भाग दे दिया जाये तो उपर्युक्त समीकरण निम्नलिखित रूप ले लेगा।

साधन L की उत्पाद Y के उत्पादन से प्राप्त सीमान्त मूल्य उत्पादकता

साधन L का मूल्य साधन L की उत्पाद X के उत्पादन से प्राप्त सीमान्त मूल्य उत्पादकता

साधन L का मूल्य Marginal value Productivity of L in Producing Y

Price of factor L Marginal value Productivity of L in Producing i

Price of factor L उपर्युक्त समीकरण ही दो उत्पादों के उत्पादन से अधिकतम आय सुनिश्चित करने वाले वांछित सम्मिश्रण की, एक साधन की सीमान्त मूल्य उत्पादकता के रूप में, जानकारी देता

या

-

आपने अभी अध्ययन किया कि जब उत्पादन संभावना वक्र अवतल होता है तो अधिकतम आय का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है, जहाँ सम आय रेखा उत्पादन संभावना वक्र को स्पर्श करती है, लेकिन जब उत्पादन संभावना वक्र एक सीधी रेखा या शून्य बिन्दु की ओर उत्तल होती है तो कुल आय को अधिकतम करने की शर्तें अलग होती

है। एक उत्पादन सम्भावना उस समय एक सीधी सरल रेखा होती है, जब इसके प्रत्येक बिन्दु पर सीमान्त उत्पादन स्थानापत्ति दर समान रहती है। इस तरह का उत्पादन सम्भावना वक्र रेखाचित्र 11.9 में दिखाया गया है।

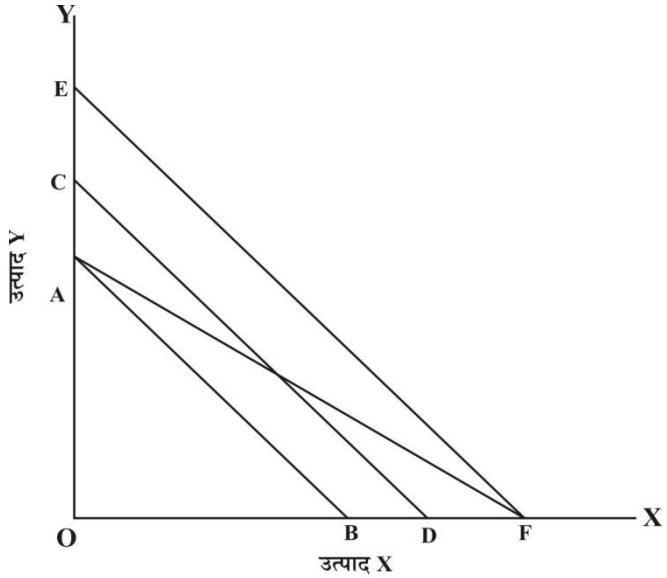

रेखाचित्र 11.9

रेखाचित्र 11.9 रेखाचित्र 11.9 में AF रेखा उत्पादन सम्भावना वक्र है। AB,CD तथा EF सम-आय रेखा है। इस प्रकार के उत्पादन संभावना वक्र की दशा में अधिकतम आय वाला बिन्दु वहाँ नहीं होता है, जहां एक सम-आय रेखा इनको स्पर्श करती है। अपितु अधिकतम आय बिन्दु F पर होगा। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादक को कुल आय को अधिकतम करना है तो वह उत्पाद X की OF इकाई का उत्पादन करेगा क्योंकि EF सम-आय रेखा सबसे ऊँची सम-आय रेखा है। ___एक उत्पादन संभावना वक्र जब उत्तल या उन्नतोदर होती है तो इस वक्र पर सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर घटती जाती है जिसे रेखाचित्र 11.10 में दिखाया गया है।

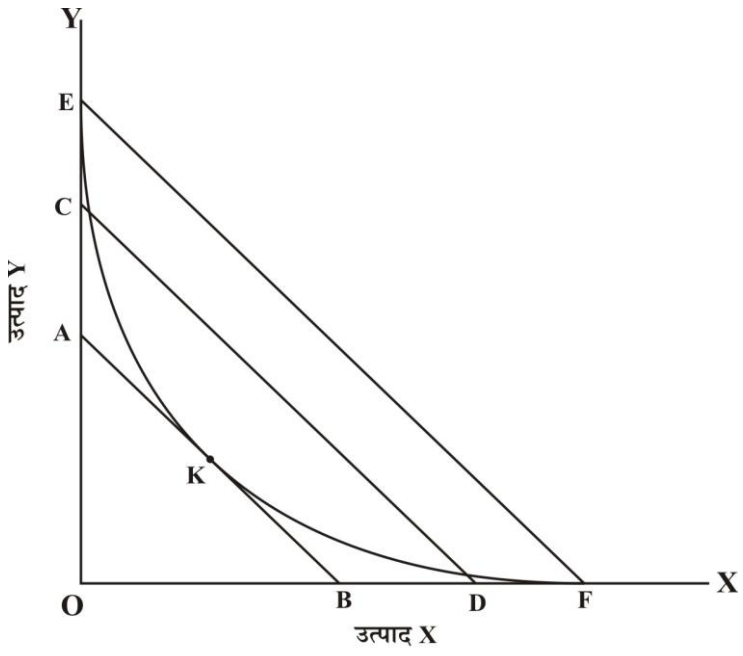

रेखाचित्र 11.10

रेखाचित्र 11.10 में CKD उत्पादन संभावना वक्र है जो शून्य या मूल बिन्दु की ओर उत्तल है। इस रेखाचित्र में उत्पादन संभावना वक्र CKD सम-आय रेखा AB को बिन्दु K पर स्पर्श कर रही है, परन्तु बिन्दु K पर अधिकतम आय प्राप्त नहीं होगी क्योंकि ऐसा

स्पर्श बिन्दु K एक न्यूनतम आय को दर्शायेगा न कि अधिकतम आय को। ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि यदि उत्पादक को अपनी कुल आय को अधिक करनी है तो उसे केवल उत्पाद Y की OE मात्रा का उत्पादन करना चाहिए, क्योंकि EF सम-आय रेखा सबसे ऊँची सम-आय रेखा है। इस सम-आय रेखा EF पर उत्पादन संभावना वक्र बिन्दु E पर स्पर्श कर रही है, जहाँ उत्पादक को अधिकतम आय प्राप्त होती है।

11.9 अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) अवतल उत्पाद संभावना वक्र का कारण बताइये।

(ख) सम-आय रेखा किसे कहते हैं?

(ग) अवतल उत्पादन संभावना वक्र पर अधिक आय प्राप्त करने वाली शर्त बताइये।

(घ) सीमान्त उत्पाद प्रतिस्थान दर किसे कहते हैं?

2. सत्य-असत्य बताइये

(क) प्रायः कृषि में दो प्रतियोगी उत्पाद के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए शून्य की ओर अवतल उत्पादन संभावना वक्र का प्रयोग किया जाता है।

(ख) घटती अवसर लागत के अन्तर्गत उत्पादन संभावना वक्र उन्नतोदर होती है।

(ग) संपूरक उत्पाद और अनुपूरक उत्पाद में कोई अन्तर नहीं है।

(घ) सम-आय रेखा पर समान आय प्राप्त नहीं होता है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) एक उत्पादन संभावना वक्र मूल बिन्दु की ओर अवतल होता है, जब

(अ) दोनों उत्पाद के उत्पादन फलन घटते हुए सीमान्त प्रतिफल नियम पर आधारित होता है।

(ब) एक घटते हुए सीमान्त प्रतिफल नियम का अनुसरण करता है, जबकि दूसरा स्थिर सीमान्त प्रतिफल नियम का अनुसरण करता है,

(स) दोनों

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

(ख) निम्नलिखित रेखाचित्र में विवेकपूर्ण उत्पादन है

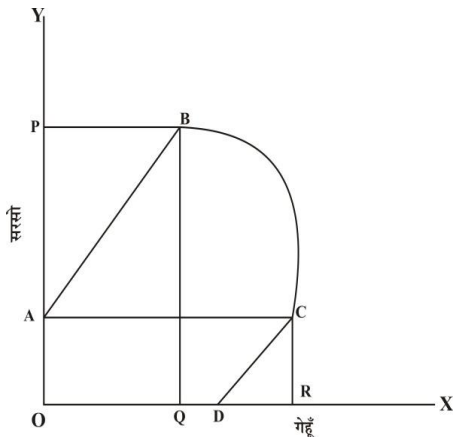

(अ) PB

(ब) BC

(स) DC

(द) AB

(ग) उत्पाद के लिए अधिकतम लाभ प्राप्त करने की शर्त है

(अ) Ay

(ब) Ay = PX

(स) PN

(द) इनमें से कोई नहीं

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द वाले प्रश्न

(क) संपूरक उत्पाद क्या है

(ख) उत्पादन संभावना वक्र का कोई दूसरा नाम बताइये।

(ग) संपूरक उत्पाद किस तरह की खेती में पाया जाता है?

(घ) निचे दिये हुए उत्पादन संभावना वक्र पर निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए

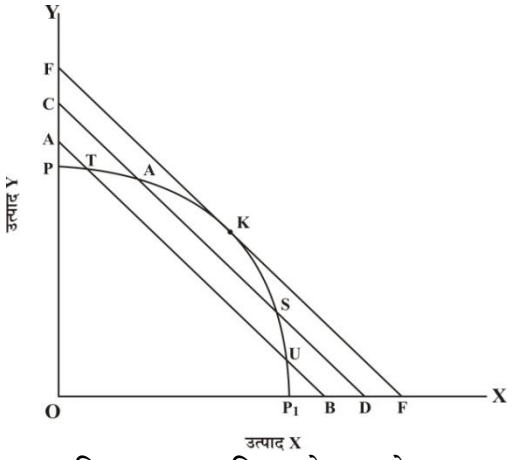

(1) अधिकतम आय बिन्दु को बताइये

(2) उस सम-आय रेखा को बताइये जहाँ पर अधिकतम आय प्राप्त हो रही है

(3) उत्पादन संभावना वक्र किस तरह का है।

5. रिक्त स्थान भरिये

(क) स्थिर अवसर लागत के अन्तर्गत उत्पादन संभावना वक्र का सीमान्त प्रतिस्थापना दर..... होता है।

(ख) दो उत्पाद की कीमत वही (समान) रहने पर, वांछित आय में वृद्धि होने पर सम-आय रेखा एक दूसरे के ..... होती है तथा इनका ढाल Py * PX प्रत्येक सम रेखा के लिए ..... रहता है।

(ग) वे उत्पाद जो उत्पादन की प्रक्रिया से इकट्ठे प्राप्त होते हैं, उत्पाद कहे जाते हैं।

(घ) एक उत्पादन संभावना वक्र की ढाल प्रायः ..... होती है।

11.10 सारांश

एक दिये हुए चल साधन की मात्रा से उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध के अन्तर्गत किस उत्पाद का उत्पादन किया जाये सम्बन्धी निर्णय लिया जाता है। उत्पादन संभावना वक्र पर दो उत्पाद के किस सम्मिश्रण को प्राप्त करने की चेष्टा करें कि जिससे फसलों के प्रचलित नियत मूल्यों पर, उसकी कुल आय अधिकतम हो जाती है। इस प्रकार के निर्णय के लिए आवश्यक शर्तों को हम उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध को अनुकूलतम बनाने वाली शर्ते कहते हैं। उत्पादन संभावना वक्र के किसी भी बिन्दु पर सीमान्त उत्पाद प्रतिस्थापन (स्थानापत्ति) दर उस मात्रा को दिखाती है जो कि एक उत्पाद (मान लो X) की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए दूसरे उत्पाद (मान लो Y) की कितनी इकाई को छोड़नी पड़ेगी। सीमान्त उत्पाद प्रतिस्थापन दर MRPSxy को इस प्रकार लिख सकते हैं

$MRPS_{XY} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$ यह सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर - $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$ उतपादन संभावना के वक्र की ढाल को भी दर्शाता है। इसलिये एक उत्पादन संभावना वक्र के किसी बिन्दु पर MRPS उस वक्र के ढाल के बराबर होगी। एक उत्पादन संभावना वक्र की ढाल प्रायः नकारात्मक होती है। उत्पादन संभावना वक्र पर कुल आय का अधिकतम आय प्राप्त करने के लिए सम-आय रेखा की आवश्यकता पड़ती है। सम-आय रेखा के किसी भी बिन्दु पर समान आय प्राप्त होती है। जब उत्पादन संभावना वक्र अवतल (नतोदर) होता है तो, अधिकतम आय उस बिन्दु पर प्राप्त होता है जहाँ सम आय रेखा उत्पादन संभावना वक्र को स्पर्श करती है। सम-आय रेखा एक दूसरे के समानान्तर होती है क्योंकि दो उत्पादों का मूल्य एक समान बना रहता है।

11.11 शब्दावली

- **उत्पाद रूपान्तरण वक्र** - उत्पाद रूपान्तरण वक्र को उत्पादन संभावना वक्र भी कहते हैं। यह वक्र एक उत्पाद को दूसरे उत्पाद में रूपान्तरण करने (एक उत्पाद की बजाय, साधन को दूसरे उत्पाद के उत्पादन में लगाने के द्वारा) के बारे में सूचना देता है।
- **सम-साधन वक्र**- उत्पादन रूपान्तरण वक्र को सम-साधन वक्र भी कहते हैं क्योंकि इस वक्र के प्रत्येक बिन्दु द्वारा दर्शाये गये दो उत्पादों के सम्मिश्रण को प्राप्त करने के लिए साधन की उसी मात्रा की आवश्यकता है।
- **संयुक्त उत्पाद**- वे उत्पाद जो उत्पादन की एक प्रक्रिया से इकट्ठे प्राप्त होते हैं, (जैसे भेंड़ का मांस तथा ऊन) संयुक्त उत्पाद कहे जाते हैं।
- **संपूरक उत्पाद**- एक दिये हुए साधन द्वारा दो उत्पाद के उत्पादन प्रक्रिया में एक उत्पाद की मात्रा में वृद्धि, एक सीमा तक दूसरे उत्पाद की मात्रा में भी वृद्धि लाती है। ऐसे उत्पादों को अनुपूरक उत्पाद कहते हैं।
- **अनुपूरक उत्पाद**- एक दिये हुए साधन की मात्रा द्वारा दो उत्पाद के उत्पादन प्रक्रिया में एक उत्पाद की मात्रा में वृद्धि, दूसरे उत्पाद की मात्रा को एक सीमा तक प्रभावित नहीं करती है अर्थात् दूसरी उत्पाद का उत्पादन यथास्थिर बना रहता है।
- **प्रतियोगी उत्पाद**- जब दिये हुए साधन की मात्रा के वही रहने पर एक उत्पाद की मात्रा को बढ़ाने के लिए दूसरे उत्पाद की मात्रा को कम करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे उत्पाद प्रतियोगी उत्पाद कहलाते हैं।

11.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1(क) एक उत्पादन संभावना वक्र शून्य बिन्दु की ओर उस समय अवतल होता है, जबः

(i) दोनों उत्पादों के उत्पादन फलन घटते हुए सीमान्त प्रतिफल के नियम पर आधारित होता है, या

(ii) एक घटते हुए सीमान्त प्रतिफल के नियम का अनुसरण करता है, जबकि दूसरा नियत (constant) सीमान्त प्रतिफल के नियम का।

(ख) सम-आय रेखा दो उत्पादों से प्राप्त समान आय को दिखाती है। उत्पादन संभावना वक्र और सम-आय रेखा वक्र का स्पर्श बिन्दु अधिकतम आय को दिखाता है।

(ग) संभावना वक्र पर अधिकतम आय प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित शर्तों का होना आवश्यक है

6. उत्पादन संभावना वक्र किस प्रकार का है- क्या यह अवतल (concave) है? या उत्तल (convex) या एक सीधी रेखा के रूप में है।

7. उत्पादन संभावना पर दिये हुए उत्पाद एक दूसरे के प्रतियोगी हो।

8. उत्पादन सम्भावना वक्र एक सिरे से दूसरे सिरे तक केवल विवेकपूर्ण उत्पादन
को ही दिखाता है।

9. सम-आय रेखा इस मान्यता पर आधारित है कि दोनों उत्पाद के मूल्य कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अधिकतम आय वहाँ पर प्राप्त होगी जहाँ पर सम-आय रेखा, उत्पादन संभावना वक्र के उच्चतम बिन्दु को स्पर्श करती है।

(घ) सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर एक उत्पादन संभावना वक्र के किसी एक बिन्दु पर, एक उत्पाद (मान लो गेहूँ) की वह मात्रा दिखाती है जो कि दूसरे उत्पाद (मान लो चना) की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिये, गेहूँ के उत्पादन की इकाई को छोड़नी पड़ेगी। सीमान्त उत्पाद स्थानापत्ति दर (MRPS) को इस प्रकार दर्शाया जायेगा।

MRPS... = AW

2. (क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) असत्य

3. (क) स (ख) ब (ग) ब

4. (क) जब एक दिये हुए साधन की मात्रा के प्रयोग से एक उत्पाद का उत्पादन दूसरे उत्पाद के उत्पादन में (बिना पहले उत्पाद के उत्पादन में घटाये) वृद्धि करता है तो ऐसे उत्पाद को संपूरक उत्पाद कहते हैं।

(ख) रूपान्तरण वक्र, सम-साधन वक्र

(ग) मिश्रित खेती

(घ) 1-K, 2- EF, 3- अवतल

5. (क) स्थिर (ख) समानान्तर, बराबर (ग) संयुक्त (घ) नकारात्मक

11.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

- सोनी, आर.एन. (2008), 'कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय', विशाल पब्लिशिंग कं0 जालन्धर, इण्डिया, पृ. 321-338
- सेठ, एम.एल. 'माइक्रो अर्थशास्त्र', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 258
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण प्ररिषद् (2000), 'व्यष्टि अर्थशास्त्र -एक परिचय', नई दिल्ली

11.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- लाल, एस.एन. (2003), 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त', व्यष्टि अर्थशास्त्र', शिव पब्लिशिंग हाउस, इलहाबाद
- Tyagi, B.P., (1998), "Agricultural Ecomomics and Rural
- Development," A.D. offset printers, Meerut
- पंत, जे0 सी0, एवं मिश्रा, जे0 पी0 (2010) "व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

11.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्पाद-उत्पाद सम्बन्ध से आप क्या समझते हैं? इसकी विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. उत्पादन संभावना वक्र को रेखाचित्र द्वारा समझाइए।
3. उत्पादन संभावना वक्र एवं दो उत्पादों के बीच के आपसी सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।

इकाई 12- कृषि उत्पादन नियमः परिवर्तनशील एवं अनुपातों का नियम (Agricultural Production Rules: Law of Variable Proportions and Return of Scale)

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन फलन
12.4 परिवर्तनीय अनुपात का सिद्धांत
12.5 परिवर्तनीय अनुपात के नियम के लागू होने के कारण
12.6 उत्पादन नियम की व्याख्या की अवधारणा
12.6.1 कुल उत्पाद और सीमान्त उत्पाद में सम्बन्ध
12.6.2 सीमान्त उत्पाद और औसत उत्पाद में सम्बन्ध
12.7 उत्पादन फलन के क्षेत्र
12.8 परिवर्तनीय अनुपात के सिद्धान्त का प्रतिफल दर
12.9 पैमाने के प्रतिफल का सिद्धान्त
12.10 पैमाने के प्रतिफल का रेखाचित्रीय प्रदर्शन
12.11 अभ्यास प्रश्न
12.12 सारांश
12.13 शब्दावली
12.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.15 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
12.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.17 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

उत्पादन फलन सम्बन्ध एवं नियम से सम्बन्धित यह बारहवीं इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आप उत्पा ाद-उत्पाद सम्बन्ध के बारे में जानकारी प्राप्त किये थे, जिसमें आप अध्यय किये थे कि अन्य साधन स्थिर रहने पर, एक चल साधन में परिवर्तन होने पर एक किसान दो उत्पादों के किस सम्मिश्रण को प्राप्त करे, जिससे फसलों के प्रचलित मूल्यों पर अधिकतम आय की प्राप्ति हो।

प्रस्तुत इकाई में परिवर्तनीय अनुपात सिद्धान्त/नियम एवं पैमाने के प्रतिफल सिद्धान्त के बारे में विस्तृत चर्चा की जायेगी। इस इकाई में आप दोनों सिद्धान्तों के लागू होने के कारण, महत्त्व एवं अन्तर के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

वर्तमान इकाई के अध्ययन के बाद आप दोनों सिद्धान्तों में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे तथा कृषि पर इसके लागू होने के कारण को स्पष्ट कर सकेंगे।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि

- ✓ परिवर्तनीय अनुपात एवं पैमाने के प्रतिफल सिद्धान्त क्या है?
- ✓ परिवर्तनीय अनुपात नियम क्यों लागू होता है?
- ✓ सीमान्त उत्पाद एवं औसत उत्पा ाद में क्या अन्तर है?

12.3 अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन फलन

उत्पादन फलन में समय-तत्व (Time Element) एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अर्थशास्त्र में समय से आशय उस अवधि से है जो मांग में परिवर्तन के अनुसार पूर्ति को समायोजित करने में उत्पादक को लगता है। समय तीन प्रकार का हो सकता है

(1) अति अल्पकाल;

(2) अल्पकाल; और

(3) दीर्घकाल

(1) अति अल्पकाल: इस समयावधि में पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है अर्थात् उत्पत्ति के सभी साधन स्थिर स्वभाव के होते हैं।

(2) अल्पकाल: इस समयावधि में कुछ साधन स्थिर स्वभाव के होते हैं तथा कुछ साधन परिवर्तनीय स्वभाव के होते हैं। अल्पकाल में जिन उत्पत्ति के साधनों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, उन्हें स्थिर साधन कहते हैं। जैसे प्लाण्ट तथा मशीन उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले अल्पकाल में स्थिर साधन होंगे। अल्पकाल में जिन उत्पत्ति के साधनों में परिवर्तन किया जा सकता है, उन्हें परिवर्तनीय साधन (Variable Factor) कहते हैं जैसे श्रम। इस प्रकार अल्पकालीन उत्पादन फलन में कुछ उत्पत्ति के साधन स्थिर है तथा कुछ परिवर्तनीय। परिवर्तनशील साधनों में परिवर्तन करके उत्पादन स्तर में परिवर्तन प्राप्त किया जा सकता है। इसे परिवर्तनीय अनुपात नियम अथवा उत्पादन के परिवर्तनीय साधन का प्रतिफल कहते हैं। इसे अल्पकालीन उत्पादन फलन भी कहते हैं।

(3) दीर्घकाल- दीर्घकाल वह काल होता है, जिसमें सभी साधनों में परिवर्तन किया जा सकता है, इसलिए इस समयावधि में उत्पत्ति के कोई भी साधन स्थिर नहीं होते हैं अर्थात् सभी साधन परिवर्तनीय होते हैं। दूसरे शब्दों

में, दीर्घकाल में उत्पादन पैमाने (Scale of Production) को पूर्णतः परिवर्तित किया जा सकता है। दीर्घकाल में एक फर्म अपने उत्पादन पैमाने को परिवर्तित करने के लिए उत्पत्ति के साधनों को सुविधा तथा आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकती है। इसलिए दीर्घकालीन उत्पादन फलन को पैमाने का प्रतिफल (Return to Scale) भी कहा जाता है।

12.4 परिवर्तनीय अनुपात का सिद्धान्त

परिवर्तनीय अनुपात का सिद्धान्त अल्पकाल समयावधि से सम्बन्ध रखता है जिसमें उत्पत्ति के समस्त साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। परिवर्तनीय अनुपात के सिद्धान्त में उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन-साधनों में से एक या एक से अधिक उत्पादन-साधनों की मात्रा में परिवर्तन होता है, जबकि उत्पादन के लिए आवश्यक अन्य सभी उत्पादन-साधनों की मात्रा स्थिर रहती है जैसे उर्वरक की मात्रा में परिवर्तन होता है तथा उत्पादन के लिए आवश्यक अन्य साधन- भूमि का क्षेत्र, सिंचाई की संख्या, श्रमिकों की आवश्यकता आदि की मात्रा स्थिर रहती है, अर्थात् इन साधनों की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है। अल्पकाल में जब एक फर्म उत्पत्ति के कुछ साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों की मात्रा में परिवर्तन करती है तब उत्पादन की मात्रा में जो परिवर्तन होता है, उसे 'उत्पत्ति के नियम' (Law of Returns) से जाना जाता है। अल्पकालीन उत्पादन फलन की तीन अवस्थाएं होती हैं जिन्हें उत्पत्ति के तीन नियमों के रूप में जाना जाता है

(1) उत्पत्ति वृद्धि नियम/सम्वृद्धि दर प्रतिफल/ क्रमागत उत्पादन वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns)

(2) उत्पत्ति समता नियम/समान दर प्रतिफल/ उत्पादन समता नियम (Law of Constant Returns)

(3) उत्पत्ति हास नियम/हास-दर प्रतिफल/उत्पादन हास नियम (Law of Diminishing Returns)

उत्पत्ति हास नियम अल्पकालीन उत्पादन फलन का तीसरा नियम है। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री इन तीनों नियमों को उत्पत्ति का एक ही नियम मानते हैं तथा इसे परिवर्तनशील अनुपात के नियम (Law of Variable Proportion) का नाम देते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पत्ति के नियमों को परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीन विभिन्न अवस्थाएं मानते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि उत्पादन के साधनों में से किसी एक को यदि स्थिर कर दिया जाय तथा अन्य साधनों की मात्रा में वृद्धि लायी जाय तो यह नियम उत्पादन के अन्य क्षेत्रों में भी उसी प्रकार से क्रियाशील होगा जिस प्रकार मार्शल का उत्पादन हास नियम कृषि क्षेत्र में भूमि की मात्रा स्थिर करने पर लागू होता है। इसे आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने परिवर्तनीय अनुपात का नियम कहा। इस नियम के अनुसार उत्पादन प्रक्रिया में अन्य सभी साधनों के स्थिर रहने पर किसी एक साधन में वृद्धि करने पर कुछ समय तक उत्पादन में वृद्धि साधन में वृद्धि के अनुपात से अधिक होती है। परन्तु एक समय के बाद परिवर्तनशील साधनों में वृद्धि उत्पादन की मात्रा में कमी लाती है।

परिवर्तनीय अनुपात का नियम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

1. उत्पादन प्रक्रिया में एक साधन परिवर्तनशील होता है जबकि अन्य साधन को स्थिर रखा जाता है।
2. इस नियम के क्रियाशीलन के लिए प्रविधि के स्तर (State of Technology)में कोई परिवर्तन नहीं होगा। यदि प्रविधि के स्तर में उन्नति हो जाय तो सीमान्त तथा औसत उत्पादन में परिवर्तन हो सकता है।
3. स्थिर साधन अविभाज्य होते हैं।
4. परिवर्तनीय साधन की समस्त इकाइयाँ समरूप (Homogeneous) होती है।
5. विभिन्न उत्पत्ति के साधन अपूर्ण स्थानापन्न (Imperfect Substitute) होते हैं।
6. स्थिर साधन सीमित एवं दुर्लभ है।
7. यह नियम उन उत्पादों के सम्बन्ध में लागू होगा जहाँ उत्पादन को प्राप्त करने के लिए साधनों का एक निश्चित अनुपात में संयोग आवश्यक हो।

8. साधनों के संयोग का अनुपात परिवर्तनशील है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर परिवर्तनीय अनुपात के सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या सारिणी 12.1 की सहायता से रेखाचित्र 12.1 में किया गया है। यह मान लिया गया है कि पूँजी की एक स्थिर मात्रा (k) है। जिसके साथ श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयों की वृद्धि से जो उत्पादन प्राप्त होता है उसे सारिणी 12.1 में दिखाया गया है। सारिणी में पूँजी की एक निश्चित मात्रा के साथ श्रम की उत्तरोत्तर इकाइयाँ लगायी गयी है। सारिणी 12.1 पर ध्यानपूर्वक विचार करने पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैंसारिणी 12.1 में देखने से स्पष्ट हो रहा है कि अल्पकाल में जैसे-जैसे परिवर्तनशीलन साधन श्रम की मात्रा में, स्थिर साधन पूँजी के दिये होने पर वृद्धि होती है तो उत्पादन की तीन अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती है

प्रथम अवस्था-

प्रथम अवस्था में परिवर्तनीय साधन में वृद्धि के फस्वरूप कुल उत्पादकता, औसत उत्पादकता एवं सीमान्त उत्पादकता सभी में वृद्धि होती है। इसलिए इस अवस्था को वर्धमान प्रतिफल या उत्पत्ति वद्धि नियम भी कहते हैं। प्रथम अवस्था के दो भाग होते हैं। प्रथम भाग में सीमान्त उत्पादकता और औसत उत्पादकता बढ़ती है। परिवर्तनशील साधन की तीसरी इकाई पर सीमान्त उत्पादकता अधिकतम है, चौथी इकाई के लिए सीमान्त उत्पादकता घट जाती है और यह औसत उत्पादकता के बराबर हो जाती है। प्रथम चरण और द्वितीय चरण के बीच के बिन्दु को मोड़ का बिन्दु (Point of Inflexion) कहते हैं। जिसे रेखाचित्र 12.1 में दिखाया गया है।

सारिणी 12.1 परिवर्तनीय साधन एवं उत्पादन के बीच सम्बन्ध

साधनों की मात्रा		उत्पादन की मात्रा			उत्पादन की अवस्था
स्थिर साधन	परिवर्तनशील साधन	कुल उत्पादन (TP)	औसत उत्पाद (AP)	सीमांत उत्पाद (MP)	
50	0	0	0	0	(1) प्रथम अवस्था साधन (श्रम) का वर्धमान/संवृद्धि दर प्रतिफल या बढ़ते औसत उत्पादन परिवर्तनीय
50	1	100	100	100	
50	2	260	130	160	
50	3	480	160	220	
50	4	640	160	160	
50	5	750	150	110	(II) द्वितीय अवस्था परिवर्तनीय साधन का हासमान प्रतिफल या घटते औसत उत्पादन
50	6	840	140	90	
50	7	910	130	70	
50	8	960	120	50	
50	9	990	110	30	
50	10	1000	100	10	
50	11	1000	90.9	00	
50	12	960	80	-40	(III) तृतीय अवस्था रिनात्नक प्रतिफल

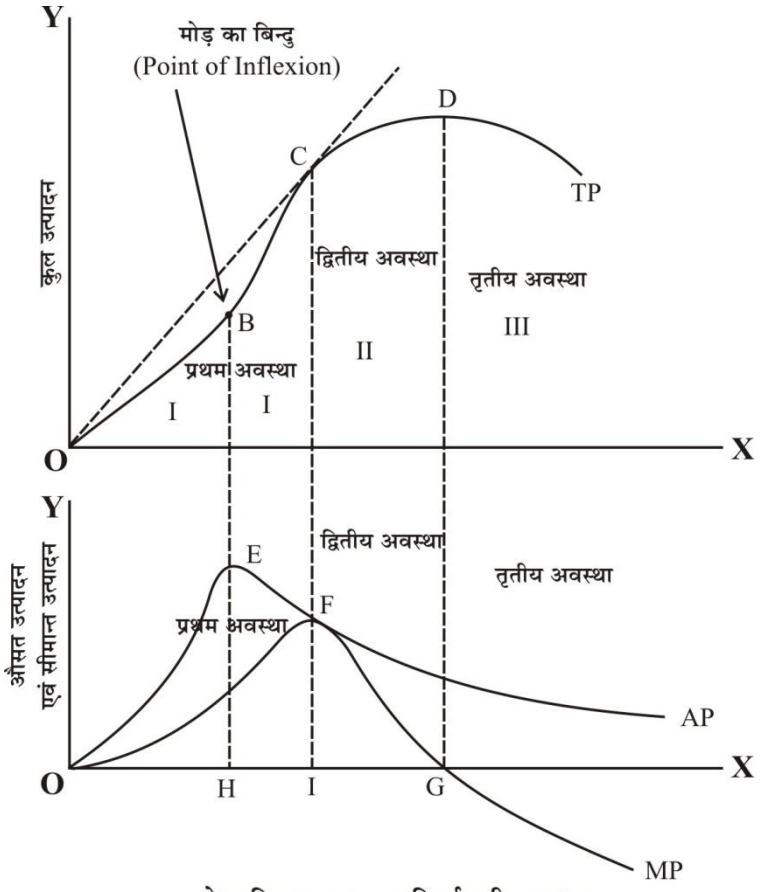

रेखाचित्र 12.1 - परिवर्तनशील साधन (श्रम) की इकाईयाँ

प्रथम अवस्था का समापन उस बिन्दु पर होता है जहाँ औसत उत्पादकता अधिकतम हो जाय प्रथम अवस्था में आरम्भ से अन्त तक औसत उत्पादकता (AP) निरन्तर बढ़ती हुई है। इसलिए इस अवस्था को बढ़ते औसत उत्पादन की अवस्था कहते हैं। पहली अवस्था बिन्दु F पर समाप्त होती है। रेखाचित्र 12.1 में प्रथम अवस्था को दो भाग में बाँटा गया है। प्रथम अवस्था का पहला भाग बिन्दु B पर समाप्त होती है। बिन्दु B तक कुल उत्पादन (TP) बढ़ रही है अर्थात् इस बिन्दु तक कुल उत्पादन (TP) बढ़ती हुई दर से बढ़ रही है। जिसका आशय यह है कि सीमान्त उत्पादन (MP) बढ़ रहा है। सारिणी 12.1 में स्पष्ट है कि श्रम की तीसरी इकाई तक कुल उत्पादन (TP) में वृद्धि बढ़ते हुए दर से हो रही है, जिसे बिन्दु रेखाचित्र में बिन्दु B से दिखाया गया है। इस बिन्दु को मोड़ का बिन्दु कहते हैं, क्योंकि इस बिन्दु B के बाद कुल उत्पादन (TP) में वृद्धि हो रही परन्तु कुल उत्पादन में वृद्धि गिरती हुई दर से हो रही है। इस अवस्था को प्रथम अवस्था की दूसरी भाग में दिखाया गया है जो बिन्दु B से बिन्दु C के बीच में स्थित है। B बिन्दु से ऊपर C बिन्दु तक जहाँ प्रथम अवस्था समाप्त होती है, कुल उत्पाद में वृद्धि गिरती हुई दर से हो रही है। बिन्दु B से बिन्दु C तक कुल उत्पादन वक्र का ढाल क्रमशः कम होता जा रहा है। मूल बिन्दु 0 से बिन्दु B के मध्य कुल उत्पाद वक्र (TP) का ढाल x अक्ष के प्रति उन्नतोदर (convex) है तथा बिन्दु B से बिन्दु C के मध्य कुल उत्पादन (TP) वक्र अक्ष के प्रति नतोदर (concave) है। प्रथम अवस्था के प्रथम भाग में अर्थात् मोड के बिन्दु (B) तक सीमान्त उत्पदन बढ़ता है और यह औसत उत्पाद से अधिक होता है तथा इस भाग में सीमान्त उत्पादन अधिकतम स्थिति को प्राप्त करता है, जिसे बिन्दु E से दिखाया गया है। प्रथम अवस्था के दूसरे भाग में सीमान्त उत्पादन गिरने लगता है, परन्तु यह औसत उत्पादन (AP) से अधिक होता है। जहाँ सीमान्त उत्पादन और औसत उत्पादन एक दूसरे को काटते हैं, वहीं प्रथम अवस्था समाप्त होती है। प्रथम अवस्था बिन्दु F पर समाप्त होती है।

द्वितीय अवस्था

दूसरी अवस्था वहाँ से प्रारम्भ होती है जहाँ औसत उत्पादन वक्र (AP) अधिकतम स्थिति को प्राप्त कर लेता है, जैसे बिन्दु F जहाँ पर औसत उत्पादन सीमान्त उत्पादन (MP) के बरबार है। रेखाचित्र 12.1 में कुल उत्पादन वक्र (TP) के बिन्दु C और D के मध्य परिवर्तनीय अनुपात नियम की दूसरी अवस्था को प्रदर्शित किया गया है। इस अवस्था में कुल उत्पादन में वृद्धि तो होती है परन्तु यह वृद्धि घटती हुई दर से होती है क्योंकि इस अवस्था में सीमान्त उत्पादन एवं औसत उत्पादन दोनों घटती हुई होती है। सारिणी 12.1 में दूसरी अवस्था को देखने से स्पष्ट है कि औसत उत्पादन एवं सीमान्त उत्पादन दोनों घट रही है। परन्तु औसत उत्पादन सीमान्त उत्पादन से अधिक है। यही कारण है कि रेखाचित्र 12.2 में दूसरी अवस्था में औसत उत्पाद वक्र सीमांत उत्पाद वक्र के ऊपर है। इस अवस्था का समापन उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर सीमान्त उत्पादकता शून्य हो जाती है। सारिणी 12.1 में श्रम की ग्यारहवीं इकाई की सीमान्त उत्पादकता शून्य है जिसे रेखाचित्र 12.1 में बिन्दु G से दिखाया गया है। जब सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है तो कुल उत्पादन अपने अधिकतम स्तर को प्राप्त करता है जिसे कुल उत्पादन वक्र (TP) के बिन्दु D से दिखाया गया है। यह अवस्था यह स्पष्ट करती है कि यदि परिवर्तनशील साधन की OG इकाई अर्थात् श्रम की ग्यारहवीं इकाई तक का प्रयोग किया जाय तो कुल उत्पाद अधिकतम बिन्दु पर होगा जिसे कुल उत्पाद वक्र (TP) पर बिन्दु D से दिखाया गया है। इस अवस्था को 'उत्पादन ह्रास नियम की अवस्था' कहा जाता है।

तृतीय अवस्था

यह तृतीय अवस्था बिन्दु D के बाद शुरू होती है जब कुल उत्पादन घटने लगती है क्योंकि बिन्दु D पर सीमान्त उत्पादकता शून्य हो जाती है। यदि रेखाचित्र 12.1 में बिन्दु G के बाद परिवर्तनीय साधन श्रम की मात्रा में वृद्धि करते है तो इस अतिरिक्त इकाई की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है जिसे सारिणी 12.1 में दिखाया गया है कि श्रम की बारहवीं इकाई की उत्पादकता ऋणात्मक है। इसलिए तृतीय अवस्था को "ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था" कहते है। इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन स्थिर साधन की तुलना में अत्यधिक हो जाता है। जिसके कारण सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है।

12.5 परिवर्तनीय अनुपात के नियम के लागू होने के कारण

आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पत्ति हास नियम लागू होने के निम्न कारण मानते है :

1. **एक परिवर्तनीय साधन के साथ अन्य साधनों का स्थिर होना**: उत्पादन प्रक्रिया में उत्पत्ति के विभिन्न साधनों का एक आदर्श अनुपात होता है और जब एक परिवर्तनीय साधन जैसे श्रम को स्थिर साधन पूँजी के साथ वृद्धि करने पर उत्पादन में वृद्धि होती है परन्तु जब श्रम की मात्रा आदर्श अनुपात के बाद बढ़ती जाती है तो उत्पादन में कमी होती है क्योंकि अब श्रमिक को आवश्यकता से कम पूँजी उपलब्ध हो रही है।
2. **साधनों की अविभाज्यता**: उत्पादन के अधिकांश साधन अविभाज्य होते है। ये अविभाज्य साधन परिवर्तनीय साधन में वृद्धि के फलस्वरुप अनुकूलतम बिन्दु की प्राप्ति तक तो उत्पादकता को बढाते है किन्तु जब अविभाज्य साधनों का अनुकूलतम बिन्दु की प्राप्ति के बाद भी साधनों का निरंतर उपयोग जारी रहता है तब साधनों की उत्पादकता घटने लगती है।
3. **साधनों की सीमितता एवं दुर्लभलता**: उत्पत्ति के कुछ साधन सीमित एवं दुर्लभ होते है जैसे भूमि। परिणामस्वरुप सीमित साधन का परिवर्तशील साधन के साथ अनुपात में परिवर्तन उत्पादन में वृद्धि करता है परन्तु अनुकूलतम बिन्दु की प्राप्ति के बाद साधनों का असंतुलित अनुपात उत्पादन में कमी लाता है।
4. **उत्पादन के साधनों का अपूर्ण स्थानापन्न**: श्रीमती जोन रॉबिन्सन साधनों की अपूर्ण स्थापन्न की उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता का मुख्य कारण मानती है। उनके अनुसार साधनों की स्थानापन्नता सीमित होने

के कारण सीमित साधनों की कमी को किसी अन्य साधन से परा नहीं कर सकते, परिणामस्वरुप घटते प्रतिफल उत्पन्न होते है।

12.6 उत्पादन नियम की व्याख्या की अवधारणा

उत्पादन फलन तथा उत्पादन के नियम की व्याख्या के अन्तर्गत आप परिवर्तनीय अनुपात के नियम की व्याख्या की जिसमें आप ने देखा कि एक साधन परिवर्तनशील हो पर अन्य स्थिर हो तो इस प्रकार के उत्पादन फलन अथवा आगत एवं निर्गत के बीच सम्बन्ध का अध्ययन आप ने परिवर्तनीय अनुपात के नियम (Law of Variable Proportions) अथवा उत्पादन के परिवर्तनीय साधन का प्रतिफल (Returns to Variable Factors of Production) के अन्तर्गत किया। आप समझ गये होंगें कि परिवर्तनीय अनुपात का नियम अल्पकाल में लागू होता है। जब सभी आगतों में परिवर्तन करते है तथा इसके निर्गत के ऊपर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करते है, इस स्थिति का अध्ययन हम "पैमाने के प्रतिफल' (Returns to Scale) नियम के अनतर्गत करते है। इसे हम दीर्घकालीन उत्पादन फलन कहते है। जिसका अध्ययन आप आगे करेगें।

उत्पादन फलन या उत्पादन के नियम की व्याख्या अल्पकालीन उत्पादन से सम्बन्धित हो या दीर्घकाल से हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि आगतों में परिवर्तन का कुल उत्पाद, सीमान्त उत्पाद एवं औसत उत्पाद पर क्या प्रभाव पड़ता है। उत्पादन के नियम की व्याख्या को समझने के लिए उत्पादन फलन से सम्बन्धित कुल उत्पाद एवं सीमान्त उत्पाद तथा औसत उत्पाद के सम्बन्ध का ज्ञान होना आवश्यक है।

12.6.1 कुल उत्पाद और सीमान्त उत्पाद में सम्बन्ध

1. उत्पादन प्रक्रिया में स्थिर साधन दिये होने पर परिवर्तनशील साधन में वृद्धि के परिणामस्वरुप जो निर्गत प्राप्त होते हैं, इनका योग ही कुल उत्पाद होगा। जैसे श्रम की विभिन्न चार इकाईयों के प्रयोग से हमें, 10, 20 25 एवं 30 इकाईयों का क्रमश: उत्पादन प्राप्त हो तो इनका कुल योग 10+20+25+30=85 इकाईयाँ, श्रम की चार इकाईयों का कुल उत्पाद है। सीमान्त उत्पाद से तात्पर्य परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि जबकि अन्य साधन स्थिर है, परिणामस्वरुप कुल उत्पादन में जो परिवर्तन होता है। तो उसे हम साधन की अतिरिक्त इकाई का सीमान्त उत्पाद कहेंगे। उदाहरण के लिए यद श्रम की 2 इकाई का कुल उत्पाद 260 है, अब यदि श्रम की तीसरी इकाई लगायी जाय और कुल उत्पाद बढ़कर 480 हो जाय तो तीसरी इकाई का सीमान्त उत्पाद 220 (480-260) इकाई होगा।
2. कुल उत्पाद सभी आगतों के संयोग से प्राप्त कुल निर्गत का योग है जबकि सीमान्त उत्पाद एक अतिरिक्त उत्पादन के साधन द्वारा कुल उत्पाद में परिवर्तन को दिखाता है। इसकों सूत्र के रुप में आप इस रुप में लिख सकते है- श्रम की n वी इकाई का सीमान्त उत्पादन (MPn) = (TPn-TPn-1) यहाँ TP कुल उत्पाद है, तथा n साधन की इकाई को प्रदर्शित करता है।
3. परिवर्तनीय अनुपात सिद्धान्त की प्रथम अवस्था के प्रथम भाग में जब सीमान्त उत्पाद अपने अधिकतम बिन्दु पर होता है तो कुल उत्पाद में वृद्धि बढ़ते हुए दर से बढ़ती
4. जब सीमान्त उत्पादन अपने अधिकतम बिन्दु से गिर रहा होता है परन्तु सकरात्मक होता है तो कुल उत्पादन में वृद्धि घटते हुए दर से होती है।
5. जब सीमान्त उत्पाद शून्य पर पहुँचता है, तो कुल उत्पाद अपने अधिकतम स्तर पर होता है (देखे रेखाचित्र 12.1)
6. कुल उत्पादन अपने अधिकतम स्तर पर पहुंचकर घटने लगता है जब सीमान्त उत्पादन नकरात्मक होने लगता है।

12.6.2 सीमान्त उत्पाद और औसत उत्पाद में सम्बन्ध

1. अभी तक आप सीमान्त उत्पाद समझ गये होंगे। इसलिए अब औसत उत्पाद क्या होता है। इसके बारे में अध्ययन करेंगे। औसत उत्पाद उस समय प्राप्त होता है जब परिवर्तनशील साधन की मात्रा से प्राप्त कुल उत्पाद को परिवर्तनशील साधन की मात्रा से भाग दे देते है। उदाहरण के लिए पूँजी की स्थिर मात्रा के साथ श्रम की 10 इकाईयों के प्रयोग के कारण कुल उत्पाद 1000 है, तो श्रम का औसत उत्पाद (1000*10) होगा। हम यह भी कह सकते है कि श्रम का औसत उत्पाद (AP.) = IP यहाँ TP कुल उत्पाद है तथा L श्रम की मात्रा है।
2. परिवर्तनीय अनुपात के नियम में प्रथम अवस्था में सीमान्त उत्पाद एवं औसत उत्पाद दोनों बढ़ रहे होते है परन्तु सीमान्त उत्पाद औसत उत्पाद से अधिक होता है।
3. द्वितीय अवस्था में सीमान्त उत्पादन एवं औसत उत्पादन दोनों घटती है परन्तु सीमान्त उत्पाद औसत उत्पाद की तुलना में तीव्र गति से घटता है।
4. परिवर्तनीय अनुपात नियम के तीसरी अवस्था में सीमान्त उत्पाद नकरात्मक होता है जबकि औसत उत्पाद सकरात्मक रहता है।
5. सीमान्त उत्पाद के औसत उत्पाद के समतुल्य होने पर (बिन्दु F रेखाचित्र 12.1) औसत उत्पाद सर्वाधिक होता है। इस बिन्दु से सीमान्त उत्पाद वक्र रेखा औसत उत्पाद वक्र रेखा के नीचे हो जाती है। सीमान्त उत्पाद वक्र रेखा औसत उत्पाद वक्र रेखा को उसके अधिकतम बिन्दु F पर ऊपर से काटती है।

12.7 उत्पादन फलन के क्षेत्र

आप समझ गये होंगे कि परिवर्तनीय अनुपात के सिद्धान्त में तीन अवस्थाएं होती है। उत्पादन फलन को उत्पादन साधनों के दक्षतम प्रयोग के निर्णय लेने की महत्ता के अनुसार तीन क्षेत्रों या भागों में विभक्त किया जाता है।

क्षेत्र I : उत्पादन फलन का यह क्षेत्र अयुक्तिक (Irrational Zone) क्षेत्र कहलाता है क्योंकि इस क्षेत्र में उत्पादन करने पर उत्पादन साधन की मात्रा के बढ़ाने से प्राप्त लाभ भी बढ़ता जाता है। कृषकों को उत्पादन से लाभ प्राप्त होता है, परन्तु इस क्षेत्र में उत्पादन

करने का निर्णय लेना उचित नहीं है। क्योंकि इस क्षेत्र में उत्पादन प्रारम्भ बिन्दु 0 से अन्तिम बिन्दु F तक होता है, जहाँ पर सीमान्त उत्पादन औसत उत्पाद को ऊपर से काटती है। बिन्दु 0 से बिन्दु F तक औसत उत्पाद एवं सिमान्त उत्पाद की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती रहती है जिसके कारण प्रत्येक अतिरिक्त उत्पादन साधन की इकाई पहले से अधिक लाभ प्रदान करती है। इसलिए कृषक परिवर्तनीय अनुपात नियम की दूसरी अवस्था में उत्पादन करने की कोशिश करेगा। कृषकों का उत्पादन करने का उद्देश्य लाभ कमाना ही नहीं होता बल्कि लाभ की अधिकतम राशि प्राप्त करना होता है। अतः इस क्षेत्र में उत्पादन करने का निर्णय लेना उचित नहीं है। रेखाचित्र 12.1 देखें।

क्षेत्र II : यह क्षेत्र परिवर्तनीय अनुपात के नियम की दूसरी अवस्था है। इस क्षेत्र को उत्पादन फलन का यौक्तिक क्षेत्र (Rational Zone) कहते है क्योंकि इसी क्षेत्र में किसान को न केवल सर्वाधिक लाभ प्राप्त होता अपितु उत्पादन के साधनों का दक्षतम कुशलतम प्रयोग होता है। उत्पादन फलन का यह क्षेत्र उस बिन्दु से शुरू होता है, जहाँ पर (बिन्दु F, रेखाचित्र 12.1) सीमान्त उत्पाद और औसत उत्पाद एक दूसरे के समतुल्य होते है और सीमान्त उत्पाद वक्र औसत उत्पाद वक्र को ऊपर से काटता है। उत्पादन फलन का यह क्षेत्र बिन्दु G (रेखाचित्र 12.1) पर समाप्त होता है, जहाँ पर सीमान्त उत्पाद शून्य हो जाता है। कुषक को इसी क्षेत्र में उत्पादन करना चाहिए।

क्षेत्र III : प्रथम क्षेत्र की तरह इस क्षेत्र को भी अयुक्तिक क्षेत्र (Irrational Zone) कहा जाता है। यह अयुक्तिक क्षेत्र परिवर्तनीय अनुपात के नियम की प्रथम अवस्था की अयुक्तिक क्षेत्र से भिन्न है। तृतीय अवस्था की अयुक्तिक क्षेत्र में उत्पादन के साधनों के अतिरिक्त प्रयोग से उत्पादन नकरात्मक होता जाता है, इसलिए इसे अयुक्तिक क्षेत्र

कहते है जबकि प्रथम अवस्था के अयुक्तिक क्षेत्र में उत्पत्ति के साधनों के अतिरिक्त प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि होती जाती है। उत्पत्ति के साधनों का इस अवस्था में कुशलतम प्रयोग नहीं हो पाता है। इसलिए इस क्षेत्र को भी अयुक्तिक क्षेत्र कहते है। उत्पादन फलन की तीसरी अवस्था की अयुक्तिक क्षेत्र वहाँ से प्रारम्भ होता है जहाँ से सीमान्त उत्पाद की मात्रा ऋणात्मक होने लगती है। जिसके कारण कृषकों को प्राप्त कुल उत्पाद की मात्रा उत्पादन साधन की मात्रा में वृद्धि करने के साथ-साथ निरन्तर कम होती जाती है। इस क्षेत्र में अर्थात बिन्दु G (रेखाचित्र 12.1 देखे) के बाद कृषक उत्पादन करता है तो उसे निम्नलिखित दो प्रकार की हानियाँ होती है।

(अ) उत्पादन साधन की अतिरिक्त मात्रा की लागत की हानि, एवं

(ब) उत्पादन साधन के प्रयोग से कुल उत्पाद में कमी होने (बिन्दु D के बाद की स्थिति, रेखाचित्र 12.1) से लाभ की राशि नकरात्मक होती है। अर्थात् सीमान्त उत्पादन नकरात्मक होने लगता है (रेखाचित्र 12.1 में बिन्दु G के बाद की स्थिति का अवलोकन करें)

12.8 परिवर्तनीय अनुपात के सिद्धान्त का प्रतिफल दर

परिवर्तनीय अनुपात के सिद्धान्त में प्रतिफल तीन दर से होता है

1. हास-दर प्रतिफल का सिद्धान्त;
2. समान-दर प्रतिफल का सिद्धान्त; एवं
3. संवृद्धि-दर प्रतिफल का सिद्धान्त

1 हास-दर प्रतिफल का सिद्धान्त

कृषकों के पास उत्पादन के लिए भूमि, पशु आदि स्थिर साधन एवं श्रम, पूँजी, खाद, बीज, उर्वरक, कीटनाशी दवाईयॉ, सिंचाई, चारा, दाना आदि परिवर्तनशील साधन होते है। कृषक स्थिर साधनों से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए परिवर्तनशील साधनों की अतिरिक्त इकाई में वृद्धि करते जाता है। जिससे उसे कुल उत्पाद की मात्रा क्रमश: पहले उत्पादन वृद्धि की मात्रा से कम होती जाती है। अर्थात् परिवर्तनशील साधनों की एक अतिरिक्त इकाई से जो उत्पाद में वृद्धि होती है वह क्रमागत उत्पादन साधन की इकाई की अपेक्षा कम होती जाती है। अतः कुल उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि हास-दर से होती है। इसे हास-दर प्रतिफल का सिद्धान्त कहते है।

प्रो0 मार्शल ने हास-दर प्रतिफल के सिद्धान्त को अग्रांकित शब्दों में परिभाषित किया है- ***"यदि साथ-साथ कृषि कला में उन्नति नहीं होती है तो भूमि पर नियोजित श्रम एवं पूँजी की मात्रा मे वृद्धि करने से सामान्यत: कुल उत्पाद में अनुपात से कम वृद्धि होती है।"***[1]

रेखाचित्र 12.2 उत्पादन का हास-दर प्रतिफल सिद्धान्त प्रदर्शित करता है। X अक्ष पर उत्पादन साधन में वृद्धि करने पर कुल उत्पादन में कमी होती जा रही है। कृषि के क्षेत्र में प्रत्येक उत्पादन साधन के प्रयोग से हास-दर प्रतिफल का सिद्धान्त पाया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि उत्पादन साधन की प्रथम इकाई कुल उत्पाद की मात्रा में 24 इकाई वृद्धि करती है तो उत्पादन साधन की दूसरी इकाई कुल उत्पाद में पहले से कम अर्थात 20 इकाई ही वृद्धि करेगी। इसी प्रकार उत्पादन साधन की तीसरी इकाई उत्पादन में 16 इकाई की वृद्धि एवं चौथी उत्पादन की कुल उत्पाद की मात्रा में 12 इकाई की वृद्धि करेगी।

[1] An increase in the capital and labour applied in the cultivation of land covers in general a less than proportionate increase in the amount of produce raised unles it happens to coincide with an improvement in the arts of agriculture" A. Marshal's, Principles of Economics, Macmillan and Company Ltd. London, 1956, Eight Edition, p. 128.

कुल उत्पाद वक्र

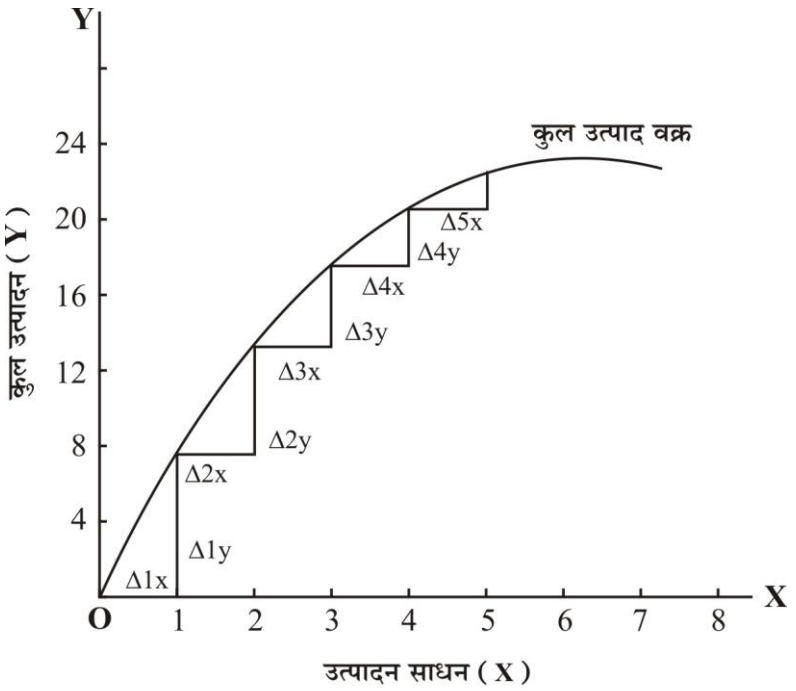

रेखाचित्र 12.2 - ह्रास-दर प्रतिफल का सिद्धांत

उत्पादन साधन (X) रेखाचित्र 12.2 - हास-दर प्रतिफल का सिद्धांत

हास-दर प्रतिफल सिद्धान्त में प्राप्त कुल उत्पाद वक्र उद्गम बिन्दु से अवतल (Concave to the Origin) होती है। हास-दर प्रतिफल की अवस्था में निम्न सम्बन्ध पाये जाते है।

$\frac{\Delta_1 Y}{\Delta_1 X} > \frac{\Delta_2 Y}{\Delta_2 X} > \frac{\Delta_3 Y}{\Delta_3 X} ..... \frac{\Delta_n Y}{\Delta_n X}$ चूँकि $\Delta_1 X = \Delta_2 X = \Delta_3 X ... + \Delta_n X$ अतः Δy की मात्रा निरन्तर कम होती जाती है जिससे AT का अनुपात-साधन की मात्रा बढ़ने के साथ कम होता जाता है।

हास-दर प्रतिफल की अवस्था में निर्णय के नियम के अनुसार अधिकतम लाभ की प्राप्ति के लिए उत्पादन की मात्रा मे उस स्तर तक वृद्धि करते रहना चाहिए जब तक कि अतिरिक्त प्रतिफल की राशि (Marginal Returns or MR) अतिरिक्त लागत की राशि (Marginal Costs or MC) से अधिक होती है। अतिरिक्त प्रतिफल एवं अतिरिक्त लागत की राशि के समतुल्य होने की स्थिति के उपरान्त परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि नहीं करनी चाहिए। इस स्तर पर प्राप्त उत्पादन की मात्रा कृषक को अधिकतम लाभ प्रदान करती है। परिवर्तनशील साधनों के अधिकतम लाभ के स्तर को सूत्र के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है

$$\frac{\Delta Y}{\Delta X} = \frac{PX}{PY}$$

$$= \Delta Y.PY = \Delta X.PX$$

जबकि,

Δ = परिवर्तन Y= उत्पाद X= उत्पादन साधन P= कीमत Δ Y.PY = अतिरिक्त/सीमान्त लाभ Δ X.PX = अतिरिक्त/ सीमान्त लागत

$\frac{\Delta Y}{\Delta X} = \frac{PX}{PY}$ सूत्र –

$$\frac{\text{अतिरिक्त उत्पाद की मात्रा}}{\text{अतिरिक्त उत्पादन साधन की मात्रा}} = \frac{\text{उत्पादन साधन की प्रति इकाई कीमत}}{\text{उत्पाद की प्रति इकाई कीमत}}$$

2. समान-दर प्रतिफल का सिद्धान्त

समान–दर प्रतिफल के सिद्धान्त के अन्तर्गत परिवर्तनशील साधन की अतिरिक्त इकाई जब स्थिर साधन के साथ प्रयोग करते है तो उससे प्राप्त अतिरिक्त/सीमान्त उत्पाद क्रमशः समान होती है अर्थात् परिवर्तनशील उत्पादन साधन की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई उत्पाद के उत्पादन में समान मात्रा में वृद्धि करती है। समान-दर प्रतिफल का सिद्धान्त सारिणी 12.2 में दिखाया गया है।

सारिणी 12.2 समान-दर प्रतिफल का सिद्धान्त

उत्पाद साधनों की इकाइयाँ	कुल उत्पाद की मात्रा	उत्पादन साधन की सीमांत मात्रा	उत्पाद की सीमान्त मात्रा	उत्पाद-उत्पादन साधन की सीमान्त दर का अनुपात	उत्पाद-उत्पादन साधन की कीमतों का विलोम अनुपात
(X)	(Y)	(ΔX)	(ΔY)	$\left(\frac{\Delta Y}{\Delta X}\right)$	$\left(\frac{PX}{PY}\right)$
0	0	-	-	-	-
5	2	5	2	.4	.15
10	4	5	2	.4	.15
15	6	5	2	.4	.15
20	8	5	2	.4	.15
25	10	5	2	.4	.15

सारिणी 12.2 में स्पष्ट है कि परिवर्तशील साधन में पविर्तन उत्पाद में समान मात्रा (2 इकाई) की वृद्धि कर रही है। समान-दर प्रतिफल की अवस्था का रेखीय चित्र के द्वारा रेखाचित्र 12.3 में दिखाया गया है।

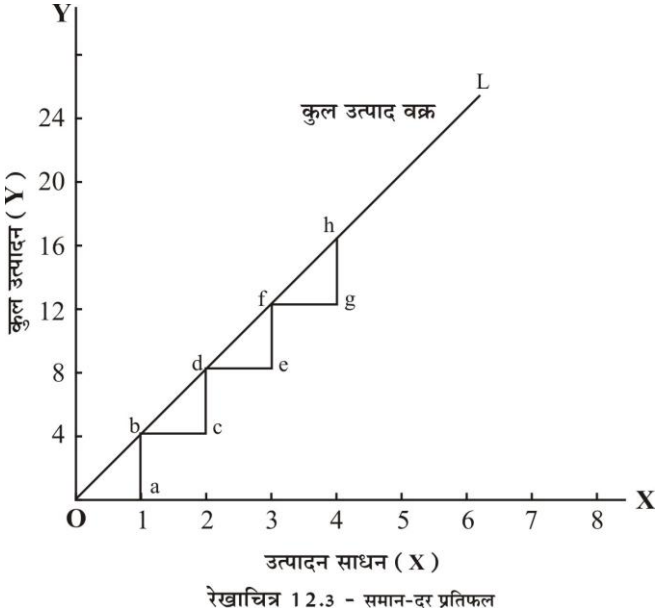

रेखाचित्र 12.3 - समान-दर प्रतिफल

रेखाचित्र 12.3 - समान-दर प्रतिफल रेखाचित्र 12.3 में OL कुल उत्पाद वक्र है। यह सीधी रेखा यह दर्शा रही है कि परिवर्तनशील साधन की प्रत्येक इकाई समान मात्रा में उत्पादन में वृद्धि करती है अर्थात् पवितर्नशील साधन की प्रत्येक इकाई का सीमान्त उत्पादन समान रहता है जैसे रेखाचित्र में

ab=cd=ef-gh यह सीमान्त उत्पादन की समान मात्रा को प्रदर्शित कर रहा है। समान-दर प्रतिफल के सीद्धान्त का वक्र (OL) एक सीधी रेखा होती है तथा वक्र पर ढ़ाल सभी स्थानों पर समान होता है। समान दर प्रतिफल की अवस्था में निम्न सम्बन्ध पाया जाता है।

$$\frac{\Delta_1 Y}{\Delta_1 X} = \frac{\Delta_2 Y}{\Delta_2 X} = \frac{\Delta_3 Y}{\Delta_3 X} = ... \frac{\Delta_n Y}{\Delta_n X}$$

समान–दर प्रतिफल की अवस्था में यदि उत्पादन साधन की प्रत्येक इकाई का प्रयोग लाभप्रद है तो आगे की सभी इकाईयाँ लाभप्रद होगी। यदि उत्पादन-साधन की प्रथम इकाई लाभप्रद नहीं है। तो आगे की कोई भी इकाई लाभप्रद नहीं होगी। अतः ऐसी अवस्था में उत्पादन साधन की किसी भी इकाई का प्रयोग लाभप्रद नहीं होगा।

3. संवृद्धि-दर प्रतिफल का सिद्धान्त

संवृद्धि-दर प्रतिफल सिद्धान्त के अन्तर्गत परिवर्तशील साधन की प्रत्येक इकाई का जब स्थिर साधनों के साथ प्रयोग किया जाता है तो उत्पादन में वृद्धि क्रमशः बढ़ते जाती है अर्थात् परिवर्तनशील साधनों की प्रत्येक इकाई से सीमान्त उत्पादन में वृद्धि, संवृद्धि दर से होती है। इसे सारिणी 12.3 में स्पष्ट किया गया है।

सारिणी 12.3 संवृद्धि दर प्रतिफल का सिद्धान्त

उत्पादन साधन की इकाइयाँ	उत्पाद की कुल मात्रा	उत्पादन साधन की सीमान्त मात्रा	उत्पाद की सीमान्त मात्रा	उत्पाद-उत्पादन साधनों की सीमान्त दर का अनुपात	कीमतों का विलोम अनुपात यदि Px=1.50, Py=10
(X)	(Y)	(ΔX)	(ΔY)	ΔY/ ΔX	(PX/PY)
0	0	-	-	-	-
5	2	5	2	.4	.15
10	5	5	3	.6	.15
15	9	5	4	.8	.15
20	14	5	5	1	.15
25	20	5	6	1.2	.15

सारिणी 12.3 से स्पष्ट है कि परिवर्तनशील साधन की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से कुल उत्पाद में वृद्धि संवृद्धि-दर (2,3,4...) से ही रही है। इस संवृद्धि दर प्रतिफल सिद्धान्त का रेखीय चित्र 12.4 में प्रदर्शित किया गया है।

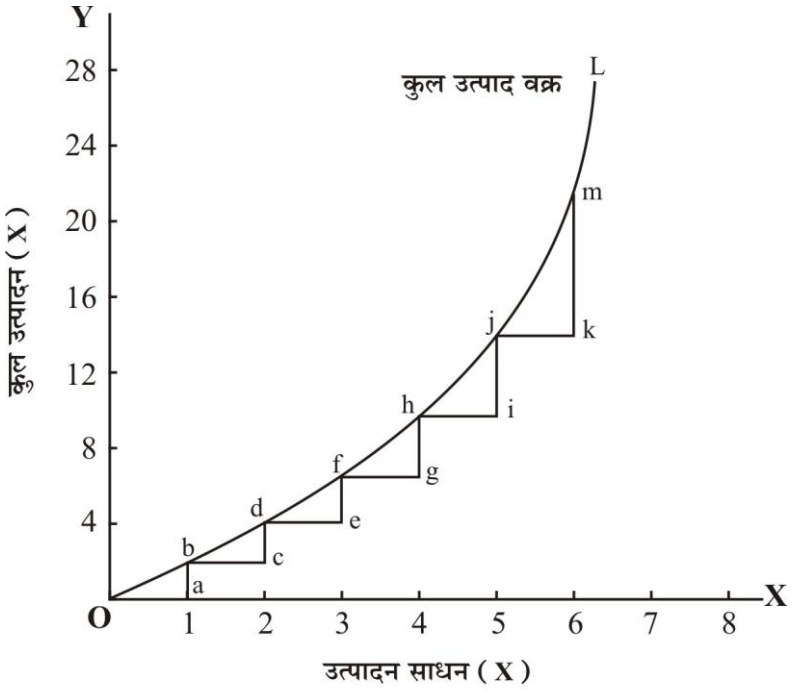

रेखाचित्र 12.4 - संवृद्धि-दर प्रतिफल वक्र

रेखाचित्र 12.4 - संवृद्धि-दर प्रतिफल वक्र रेखाचित्र 12.4 में परिवर्तनशील साधन (X) की मात्रा में वृद्धि से कुल उत्पाद में वृद्धि संवृद्धि-दर से हो रही है। यह संवृद्धि दर रेखाचित्र में स्पष्ट है ab<cdKef<gh<ij<km संवृद्धि-दर प्रतिफल की अवस्था में कुल उत्पाद वक्र का ढ़ाल उद्गम से उत्तल (Convex to the origin) होता है तथा प्राप्त सम्बन्ध निम्न प्रकार से होता है

$\frac{\Delta_1 Y}{\Delta_1 X} < \frac{\Delta_2 Y}{\Delta_2 X} < \frac{\Delta_3 Y}{\Delta_3 X} < .... \frac{\Delta_n Y}{\Delta_n X}$ अर्थात् उत्पादन साधन की इकाईयों में वृद्धि के साथ-साथ (AT) का अनुपात बढ़ता जाता है।

संवृद्धि-दर प्रतिफल सिद्धान्त के अन्तर्गत उत्पादन का निर्णय उसी प्रकार लिया जाता है जिस प्रकार से हासमान दर प्रतिफल सिद्धान्त के अन्तर्गत लिया जाता है अर्थात् जब तक उत्पाद-उत्पादन साधन की सीमान्त दर का अनुपात उनकी विलोम कीमतों के अनुपात से अधिक है, तब तक उत्पादन साधन की मात्रा में वृद्धि करते रहना चाहिए। कृषि क्षेत्र में संवृद्धि-दर प्रतिफल का सिद्धान्त निम्न अवस्थाओं में पाया जाता है

(अ) जब स्थिर या स्थायी साधनों का पूर्ण रुप से प्रयोग नहीं हो रहा है अर्थात् उनमें उत्पाद की अधिक क्षमता होती है

(ब) जब परिवर्तनशील साधन की प्रयोग की गई इकाई की मात्रा बहुत कम होती है।

12.9 पैमाने के प्रतिफल का सिद्धान्त

आप समझ गये होंगे कि परिवर्तनीय अनुपात का नियम अल्पकालीन उत्पादन फलन की व्याख्या करता है जिसमें आप ने देखा कि स्थिर साधन के साथ जब परिवर्तनीय साधन की मात्रा में वृद्धि करते है तो इसका प्रभाव उत्पादन के ऊपर पड़ता है। पैमाने का प्रतिफल दीर्घकालीन उत्पादन फलन की व्याख्या करता है। दीर्घकाल में उत्पाद में वृद्धि उत्पादन के सभी साधनों की वृद्धि के द्वारा लायी जा सकती है क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनीय होते हैं। सभी साधनों की वृद्धि होने पर 'उत्पादन का पैमाना' ही बड़ा हो जाता है और इसलिए इस स्थिति को हम पैमाने का प्रतिफल कहते है अर्थात् प्रतिफल या उत्पादन में वृद्धि जो पैमाने में वृद्धि के परिणामस्वरुप हो। पैमाने के

प्रतिफल के सिद्धान्त में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनीय होते है अथात् कोई भी उत्पादन साधन स्थिर मात्रा में नहीं होता है। पैमाने के प्रतिफल के सिद्धान्त में उत्पादन वृद्धि के लिए आवश्यक सभी उत्पादन साधनों की मात्रा में वृद्धि की दर समान अथवा विभिन्न अनुपात में हो सकती है। पर सामान्यतया "पैमाने के प्रतिफल" से अभिप्राय उत्पादन के साधनों में इस प्रकार के परिवर्तन से है जिससे उनके बीच का अनुपात अपरिवर्तित रहे।

पैमाने के प्रतिफल के सिद्धान्त के अन्तर्गत सभी उत्पादन–साधनों की मात्रा में समान अनुपात मे वृद्धि करने की अवस्था में उत्पादन वृद्धि समान, संवृद्धि दर एवं हास दर से होती है, जिसके कारण पैमाने के प्रतिफल के सिद्धान्त में भी उत्पादन-वद्धि की निम्न दरे होती है :

1. पैमाने का वर्धमान या संवृद्धि प्रतिफल (Increasing Returns to Scale) या ह्रास लागत नियम;
2. पैमाने का सम या समान-दर प्रतिफल (Constant Returns to Scale) या लागत समता नियम;
3. पैमाने का हासमान प्रतिफल (Constant Returns to Scale) या लागत प्रतिफल नियम

1. पैमाने का वर्धमान प्रतिफल नियम: इस नियम के अन्तर्गत जिस अनुपात में आगतों में वृद्धि की जाती है, उससे अधिक अनुपात में निर्गत में वृद्धि होती है। इस स्थिति को रेखाचित्र 12.5 में प्रदर्शित किया गया है।

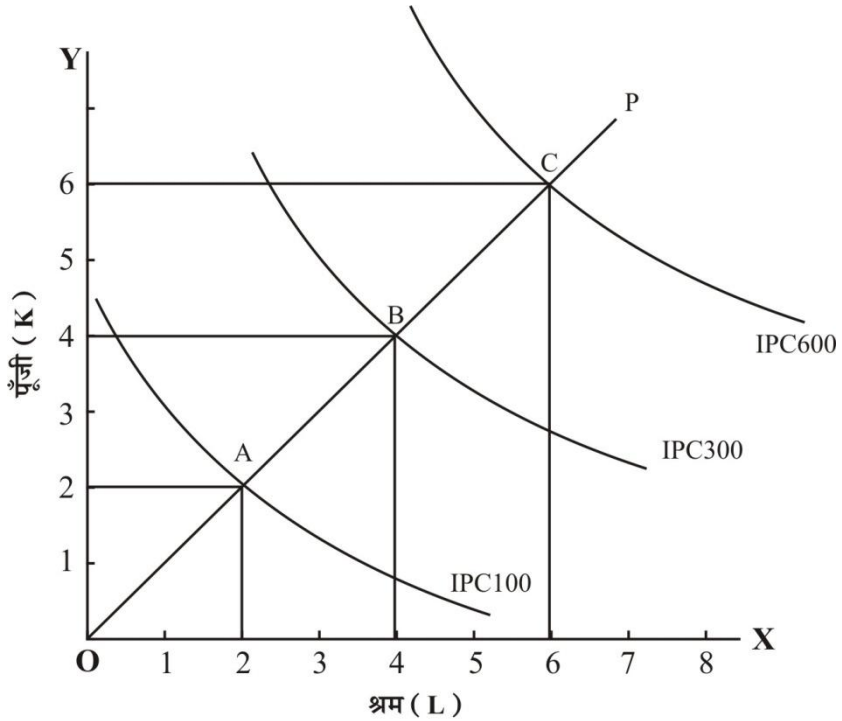

रेखाचित्र 12.5

रेखाचित्र 12.5 इस रेखाचित्र में OP उत्पाद रेखा या पैमाने का रेखा है जिस पर स्थिर AB, BC श्रम तथा पूँजी का अनुपात प्रदर्शित करते है जिससे विभिन्न उत्पाद के स्तर प्राप्त होते है। IPC सम–मात्र वक्र को दर्शाता है। शुरू में A बिन्दु पर 2K तथा 2L साधन की मात्रा के संयोग से उत्पादन की 100 इकाई प्राप्त हो रही है। अब यदि पूँजी की मात्रा 2 गुनी कर दी जाय जैसे 4K और 4L तो उत्पादन में 2 गुना से ज्यादा वृद्धि होती है जिसे IPC 300 से दिखाया गया है। इसी तरह से बिन्दु C पर पूँजी एवं श्रम में तीन गुना वृद्धि करने पर उत्पादन में 6 गुना की वृद्धि होती है जिसे IPC600 से प्रदर्शित किया गया है। रेखाचित्र 12.5 को ध्यान से देखें तो स्पष्ट है कि AB=BC अर्थात् पूँजी का अनुपात समान है परन्तु पैमाने का वर्धमान प्रतिफल उत्पादन में वृद्धि पहले 100 है, फिर 300 है, फिर 600 है।

2. पैमाने का सम प्रतिफल नियम: इस नियम के अन्तर्गत आगत तथा निर्गत में समान आनुपातिक परिवर्तन होता है जिसे रेखाचित्र 12.6 में दिखाया गया है।

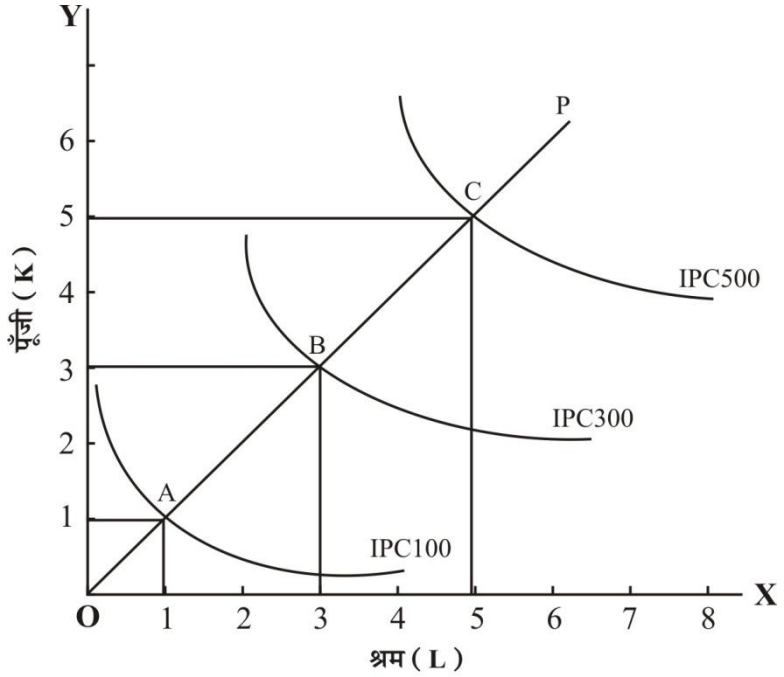

रेखाचित्र 12.6

रेखाचित्र 12.6 OP उत्पाद रेखा है। रेखाचित्र 12.6 में जब श्रम एवं पूँजी की मात्रा में तीन गुना की वृद्धि होती है तो उत्पाद में भी तीन गुना की वृद्धि होती जिसे 3K तथा 3L के बिन्दु B पर IPC300 के द्वारा दर्शाया गया है। AB=BC के अनुपात में ही उत्पादन में भी वृद्धि हो रही है। यहाँ स्पष्ट है कि जिस अनुपात में आगत में वृद्धि हो रही है, उसी अनुपात में निर्गत में भी वृद्धि हो रही है।

3.पैमाने का हासमान प्रतिफल : इसके अन्तर्गत उत्पादन साधनों में एक इकाई मात्रा से वृद्धि करने पर प्राप्त अतिरिक्त उत्पाद की मात्रा क्रमशः पहले की अपेक्षा कम होती जाती है अर्थात् जिस अनुपात में आगत में वृद्धि होती है उससे कम अनुपात में निर्गत में वृद्धि होती है। इसे रेखाचित्र 12.7 में प्रदर्शित किया गया है। रेखाचित्र में 1K तथा 11 से 100 उत्पादन की प्राप्ति होती है। जब दोनों साधनों को तीन गुना कर दिया जाता है 3K तथा 3L तो उत्पादन का स्तर तीन गुना से कम होता है, उत्पादन का स्तर मात्र 200 ही रहता है।

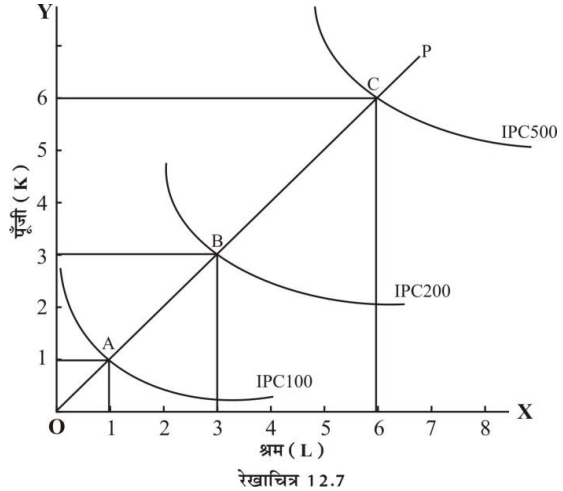

रेखाचित्र 12.7

12.10 पैमाने के प्रतिफल का रेखाचित्रीय प्रदर्शन

इकाई 10 मे आप ने समोत्पाद वक्र या सम उत्पादन वक्र का अध्ययन किया तथा यह देखा कि सम उत्पादन वक्र आगत तथा निर्गत के बीच दीर्घकालीन प्रविधिक तथा फलनात्मक सम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार सम उत्पादन वक्रों से उत्पादन फलन सम्बन्ध की व्याख्या हो जाती है, पर इसकी व्याख्या नहीं होती है कि 'उत्पादन में वृद्धि' तथा 'साधनों की वृद्धि में क्या अनुपात है। पैमाने के प्रतिफल की व्याख्या इसी से सम्बन्धित है। इसके लिए सम उत्पाद वक्रों के साथ 'उत्पादन के विस्तार' (Expansion of Output) का विश्लेषण आवश्यक है। उत्पाद रेखा उत्पाद विस्तार प्रदर्शित करती है उत्पाद रेखा (Product Line) 1. उस समय मूल बिन्दु से प्रारम्भ होकर जायेगी, जबकि दोनों साधन परिवर्तनीय हो तथा 2. आधार अक्ष या लम्ब अक्ष के किसी बिन्दु से प्रारम्भ होगी, जबकि एक साधन स्थिर हो दूसरा परिर्वनीय हो।

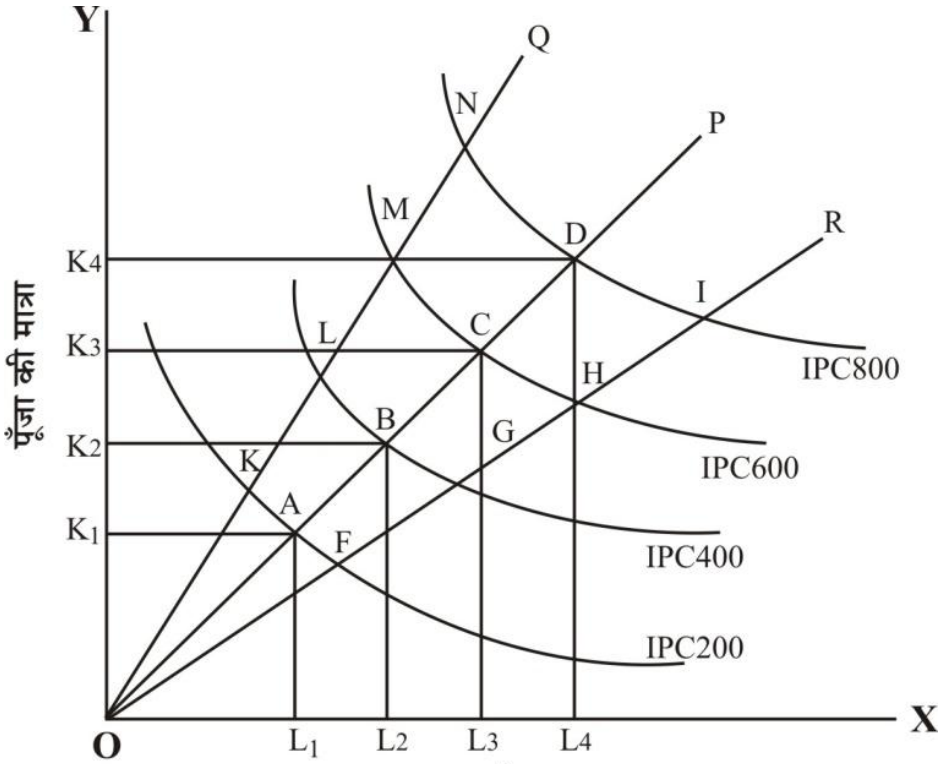

रेखाचित्र 12.8

3. उत्पाद रेखा जबकि दोनों साधन, श्रम तथा पूँजी परिवर्तनीय हो- इस स्थिति में उत्पाद रेखा सम-उत्पाद मानचित्र पर मूल बिन्दु से प्रारम्भ होगी और इस के प्रत्येक बिन्दु दोनों साधनों के परिवर्तन के अनुपात प्रदर्शित करेंगे जिससे सम्बन्धित उत्पादन का स्तर प्राप्त किया जा सके। इस स्थिति में उत्पाद रेखा का स्पष्टीकरण रेखाचित्र 12.8 में किया गया हैरेखाचित्र 12.8 में मूल बिन्दु से मूलतः खींची गयी OP रेखा उत्पाद रेखा या पैमाने का रेखा (Scale Line) है। IPC सम-उत्पाद वक्र है। उत्पाद रेखा OP पर बिन्दु AB,BC,CD के बीच समान अनुपात है अर्थात् इस उत्पाद रेखा के A बिन्दु पर श्रम तथा पूँजी का अनुपात या OL1 तथा OK1 के बीच का अनुपात वहीं होगा जो बिन्दु D पर OL4 तथा OK4 के बीच या बिन्दु C पर OL3 तथा OK3 के बीच होगा। परन्तु उत्पाद रेखा OQ तथा OR पर क्रमशः K,L,M,N तथा F,G,H,I पर वही अनुपात नहीं होगा जो उत्पाद रेखा OP पर है, अर्थात् एक उत्पाद रेखा पर जब दोनों साधनों में परिवर्तन होता है तो सामान्यतः समान अनुपात रहता है। जबकि दूसरे उत्पाद रेखा पर अलग या भिन्न अनुपात प्रदर्शित होता है। उल्लेखनीय यह है कि एक उत्पाद रेखा के सभी

बिन्दुओं पर श्रम तथा पूँजी का अनुपात रेखाओं पर यह अनुपात अलग-अलग होगा। 1. उत्पाद या पैमाना रेखा जब एक साधन स्थिर हो तथा दूसरा परिवर्तनीय– यदि

उत्पादन प्रक्रिया में एक उत्पाद साधन स्थिर हो तथा दूसरा परिवर्तनीय हो तो उत्पाद रेखा आधार या लम्ब अक्ष के समानान्तर होगी। इस प्रकार की उत्पाद रेखा परिवर्तनीय साधन के सन्दर्भ में उत्पादन विस्तार प्रदर्शित करेगी जैसा कि रेखाचित्र 12.9 में दिखाया गया है।

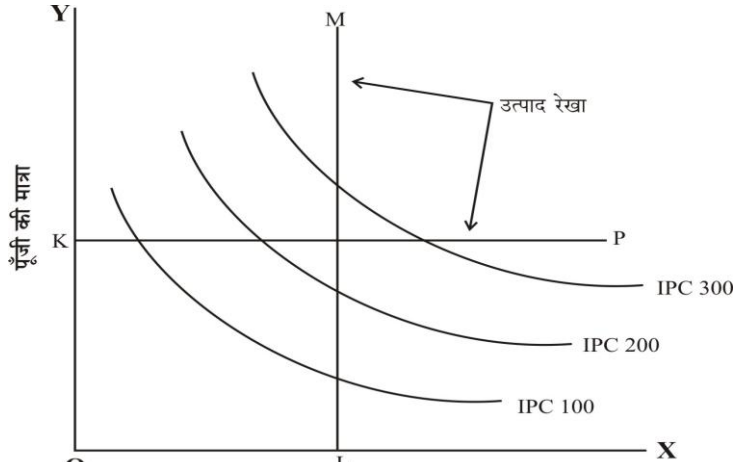

रेखाचित्र 12.9

LM उत्पाद रेखा श्रम की स्थिर मात्रा के साथ तथा KP पूँजी की स्थिर मात्रा के साथ उत्पाद विस्तार प्रदर्शित करती है। यदि सभी साधन परिवर्तनीय हो तो उत्पाद रेखा उद्गम बिन्दु 0 से हो कर जायेगी। ऐसी उत्पाद रेखा जो विभिन्न सम-उत्पाद रेखाओं के ऐसे बिन्दु से जाय जिन पर साधनों के बीच प्राविधिक प्रतिस्थापन की सीमान्त दर स्थिर हो तो इन सम-उत्पाद रेखाओं की समनतिक (isoc lines) कहते हैं। यदि उत्पादन फलन सहजातीय हो तो ऐसी उत्पादन रेखाये मूल बिन्दु से जाने वाली सीधी रेखा के रुप में होगी। किसी एक ऐसी उत्पाद रेखा पर K/L अनुपात तथा साथ ही MRTSLK स्थिर होगा, पर यह अनुपात अलग-अलग उत्पाद रेखाओं पर अलग-अलग होगा जैसा कि रेखाचित्र 12.10 में प्रदर्शित है। परन्तु यदि उत्पदन फलन असहजातीय हो तो समनतिक उत्पाद रेखायें सीधी रेखा के रुप में नहीं होगी, यद्यपि मूल बिन्दू से जायेगी तथा सम-उत्पाद वक्रों के उन बिन्दुओं से जायेगी जिन पर प्राविधिक सीमान्त प्रतिस्थापन दर (MRTS) स्थिर है, पर यह उत्पाद रेखा टेढ़ी मेढ़ी होगी तथा प्रत्येक उत्पाद रेखा पर K/L अनुपात परिवर्तित होता रहेगा जैसे कि रेखाचित्र 12.11 में दिखाया गया है।

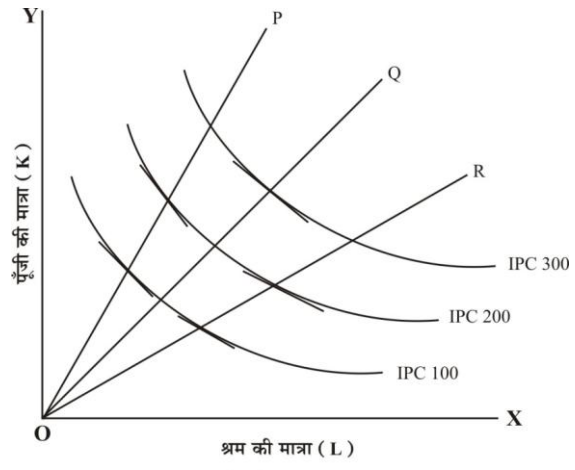

रेखाचित्र 12.10

रेखाचित्र 12.10 एवं 12.11 में IPC सम उत्पाद वक्र है तथा OP,OQ,OR उत्पाद रेखा है।

12.11 अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) परिवर्तनीय अनुपात के नियम की प्रथम अवस्था में उत्पादन वृद्धि की स्थिति क्यों प्राप्त होती है।

(ख) उत्पादन क्षेत्र III में कृषक को किस प्रकार की हानियाँ होती है?

(ग) हास-दर प्रतिफल की अवस्था में उत्पादन सम्बन्धित निर्णय को स्पष्ट कीजिए।

2. सत्य/असत्य बताइये

(क) परिवर्तनीय अनुपात सिद्धान्त के दूसरी अवस्था में औसत उत्पाद वक्र, सिमान्त उत्पाद वक्र के ऊपर होता है।

(ख) MPn=TPn-TPn-1

(ग) सीमान्त उत्पाद का औसत उत्पाद के समतुल्य होने पर औसत उत्पाद अधिकतम होता है।

(घ) परिवर्तनीय अनुपात नियम में मोड़ के बिन्दु के बाद कुल उत्पाद में वृद्धि घटती दर से होती है तथा सीमान्त उत्पादन अधिकतम होता है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) संवृद्धि दर प्रतिफल में निम्न संबन्ध प्राप्त होता है

(i) $\frac{\Delta_1 Y}{\Delta_1 X} = \frac{\Delta_2 Y}{\Delta_2 X} = \frac{\Delta_3 Y}{\Delta_3 X} \ldots \frac{\Delta_n Y}{\Delta_n X}$ (ब) $\frac{\Delta_1 Y}{\Delta_1 X} > \frac{\Delta_2 Y}{\Delta_2 X} > \frac{\Delta_3 Y}{\Delta_3 X} \ldots \frac{\Delta_n Y}{\Delta_n X}$ (स) $\frac{\Delta_1 Y}{\Delta_1 X} < \frac{\Delta_2 Y}{\Delta_2 X} < \frac{\Delta_3 Y}{\Delta_3 X} \ldots \frac{\Delta_n Y}{\Delta_n X}$

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(ख) सम-उत्पाद वक्र व्याख्या करता है

(अ) समान उत्पादन

(ब) उत्पादन फलन सम्बन्ध

(स) दोनों

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

(ग) परिवर्तनीय अनुपात के नियम के लागू होने के कारण हैं

(अ) एक परिवर्तनीय साधनों के साथ अन्य साधनों का स्थिर होना

(ब) साधनों की अविभाज्यता

(स) साधनों की सीमितता एवं दुर्लभता

(द) उपर्युक्त सभी

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द वाले प्रश्न

(क) फार्म व्यवस्थापन किसे कहते है?

(ख) मोड़ का बिन्दु किसे कहते है?

(ग) परिवर्तनीय अनुपात सिद्धान्त में तृतीय अवस्था में ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था के कारण बताइये।

(घ) समान-दर प्रतिफल की अवस्था में कौन सा सम्बन्ध पाया जाता है?

5. रिक्त स्थान भरिए

(क) पैमाने का प्रतिफल सिद्धान्त उत्पादन फलन के ..... उत्पादन फलन की व्याख्या करता है।

(ख) परिवर्तनीय अनुपात नियम में एक साधन ..... होता है जबकि अन्य साधन ..... होते है।

(ग) आगत तथा निर्गत के बीच का सम्बन्ध ..... कहलाता है।

12.12 सारांश

उत्पादन की क्रिया को पूरा करने के लिए विभिन्न साधनों की आवश्यकता पड़ती है, जिसे आगत कहते है। इस आगत के सहयोग से जिस वस्तु का उत्पादन किया जाता है उसे निर्गत कहते है। आगत तथा निर्गत के बीच का सम्बन्ध उत्पादन फलन कहलाता है। पर उत्पादन फलन की प्रकृति अथवा किस प्रकार से साधनों के संयोगों में परिवर्तन से उत्पादन प्रभावित होता है, उस बात का कथन उत्पादन का नियम कहलाता है। इस प्रकार उत्पादन फलन तथा उत्पादन के नियम की व्याख्या के अन्तर्गत आप आगत-निर्गत सम्बन्ध की व्याख्या करते है और यह व्याख्या समय तत्व पर आधारित होती है। उत्पा की अल्पकालीन व्याख्या 'परिवर्तनीय अनुपात के नियम' के अन्तर्गत करते है, जिसमें एक साधन परिवर्तनीय होता है तथा अन्य साधन स्थिर होते है। उत्पादन फलन की दीर्घकालीन व्याख्या "पैमाने का प्रतिफल' के अन्तर्गत करते है जिसमें सभी साधन परिवर्तनीय होते है। परिवर्तनीय अनुपात नियम में प्रतिफल तीन दर से होता है :

(1) संवृद्धि-दर प्रतिफल,
(2) सामान दर प्रतिफल एवं
(3) हास-दर प्रतिफल।

इसी प्रकार 'पैमाने का प्रतिफल नियम' में भी तीन दरे होती है :

(1) संवृद्धि-दर से पैमाने का प्रतिफल,
(2) समान दर से पैमाने का प्रतिफल एवं
(3) हास-दर से पैमाने का प्रतिफल

12.13 शब्दावली

- **उत्पाद रेखा या पैमाना रेखा :** उत्पाद रेखा एक सम उत्पाद वक्र से दूसरे सम उत्पाद वक्र पर जाने की गति प्रदर्शित करती है, जब हम सभी साधन या एक साधन में परिवर्तन लाते है। इस प्रकार 'उत्पाद रेखा' उत्पादन के विस्तार के सम्भावित प्राविधिक पथ प्रदर्शित करती है।
- **सम उत्पाद वक्र :** सम-उत्पाद वक्र दोनों साधनों के उन संभावित विभिन्न संयोग को प्रदर्शित करता है, जहाँ पर उत्पादक को समान उत्पादन प्राप्त होता है। सम-उत्पाद मानचित्र : एक से अधिक सम-उत्पाद वक्र के समूह को सम-उत्पाद मानचित्र कहते है।
- **समनतिक (Isoclines) :** ऐसी उत्पाद रेखा जो विभिन्न सम-उत्पाद रेखाओं के ऐसे बिन्दु से जाये जिन पर स्थिर साधनों के बीच प्राविधिक प्रतिस्थापन की सीमान्त दर स्थिर हो तो इन सम-उत्पाद रेखाओं को समनतिक कहते है।

12.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1(क). प्रथम अवस्था में साधनों का पूर्ण विदोहन नहीं हुआ होता है, फलस्वरूप, परिवर्तनशील साधनों की अतिरिक्त इकाइयों के प्रयोग से साधनों का पूर्ण विदोहन सम्भव हो पाता है। इसी कारण आरम्भ में कुल उत्पादकता, औसत उत्पादकता एवं सीमांत उत्पादकता तीनों बढ़ते हैं।

1(ख). उत्पादन III क्षेत्र में कृषक को दो प्रकार की हानियाँ होती है- जो निम्नलिखित है

(i) उत्पादन साधन की अतिरिक्त मात्रा की लागत की हानि, एवं
(ii) उत्पादन साधन के प्रयोग से कुल उत्पाद में कमी होने (बिन्दु D के बाद की स्थिति, रेखाचित्र 12.1) से लाभ की राशि नकरात्मक होती है। अर्थात् सीमान्त उत्पादन नकरात्मक होने लगता है (रेखाचित्र 12.1 में बिन्दु G के बाद की स्थिति का अवलोकन करें)

1(ग) हास-दर प्रतिफल की अवस्था में निर्णय के नियम के अनुसार अधिकतम लाभ की प्राप्ति के लिए उत्पादन की मात्रा मे उस स्तर तक वृद्धि करते रहना चाहिए जब तक कि अतिरिक्त प्रतिफल की राशि (Marginal Returns or MR) अतिरिक्त लागत की राशि (Marginal Costs or MC) से अधिक होती है। अतिरिक्त प्रतिफल एवं अतिरिक्त लागत की राशि के समतुल्य होने की स्थिति के उपरान्त परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि नहीं करनी चाहिए। इस स्तर पर प्राप्त उत्पादन की मात्रा कृषक को अधिकतम लाभ प्रदान करती है।

2. (क) सत्य, (ख) सत्य, (ग) असत्य, (घ) सत्य 3. (क) स, (ख) अ, (ग) द

(क) फार्म व्यवस्थापन विज्ञान का मुख्य उद्देश्य अधिकतम उत्पादन की भौतिक मात्रा प्राप्त करना न होकर अधिकतम लाभ की राशि प्राप्त करना होता है।

(ख) जिस बिन्दु पर सीमान्त उत्पादकता अधिकतम होती है (रेखाचित्र 12.1 में बिन्दु E) उस बिन्दु से सम्बन्धित कुल उत्पादन का बिन्दु (बिन्दु B) मोड़ का बिन्दु कहलाता है। यही वह बिन्दु है जिसके बाद कुल उत्पादकता में घटती दर से वृद्धि होती है।

(ग) इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन, स्थिर साधन की तुलना में अत्यधिक होने के कारण सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है।

(घ) $\frac{\Delta 1y}{\Delta 1x} = \frac{\Delta 2y}{\Delta 2x} = \frac{\Delta 3y}{\Delta 3x} ..... \frac{\Delta ny}{\Delta nx}$

4. रिक्त स्थान भरिए।

(क) दीर्घकालीन,
(ख) परिवर्तनीय, स्थिर
(ग) उत्पादन फलन

12.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अग्रवाल, एन0 एल (1977), 'भारतीय कृषि का अर्थतंत्र", राजस्था हिन्दी ग्रन्थ __ अकादमी, जयपुर, पृ0 141-155
- मिश्रा, जे0 पी0; पन्त, जे0 जी0, (2009)", व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण," साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0 200
- लाल, एस0 एन0 (2003), "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त,' शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद,पृ0 137-140
- मिश्रा, जे0 पी0 (2008),” कृषि अर्थशास्त्र," साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0 200

12.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- सोनी, आर0 एन0 (2008) “कृषि अर्थशास्त्रा के मुख्य विषय," विशाल पब्लिशिंग कं0, जालन्धर न्यू दिल्ली।

- Tyagi, B.P., (1998), "Agricultural Ecomomics and Rural Development," A.D. offset printers, Meerut
- 3.पंत, जे0 सी0, एवं मिश्रा, जे0 पी0 (2010) "व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

12.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. परिवर्तनीय अनुपात नियम की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. पैमाने के प्रतिफल सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

इकाई 13- लेविस का कृषि विकास प्रारुप
(Lewis's Agricultural Development Model)

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 लेविस का कृषि विकास प्रारूप
13.4 लेविस के कृषि विकास प्रारूप की मान्यताएं
13.5 लेविस के कृषि विकास प्रारूप की व्याख्या
13.5.1 द्वि-क्षेत्र अर्थव्यवस्था
13.5.2 असीमित श्रमपूर्ति
13.5.3 पूंजी निर्माण पूंजीवादी अतिरेक पर निर्भर करता है
13.5.4 राज्य तथा निजी पूँजीपतियों की भूमिका
13.5.5 बैंक साख द्वारा पूँजी निर्माण
13.5.6 वृद्धि प्रक्रिया का अंत
13.5.7 खुली अर्थव्यवस्था में लेविस का सिद्धान्त
13.5.8 लेविस के कृषि विकास प्रारूप की आलोचनाएं
13.6 अभ्यास प्रश्न
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने कृषि उत्पादन नियम के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में हम लेविस के कृषि विकास प्रारूप की चर्चा करेंगे। प्रो० डब्ल्यू आर्थर लेविस ने पिछड़े देशों के आर्थिक विकास का मॉडल तैयार किया। लेविस ने अपने प्रसिद्ध लेख श्रम की असीमित पूर्ति के साथ आर्थिक विकास (1954) में इस बात पर बल दिया कि अल्पविकसित देशों मे श्रम की असीमित पूर्ति होती है जो कृषि क्षेत्र में कार्य करते हुए दिखायी तो देती है परन्तु उनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है। जिनकों जीवन निर्वाह मजदूरी प्राप्त होती है। लेविस के अनुसार अतिरिक्त श्रम की मात्रा आर्थिक विकास में मददगार हो सकती हैं। यदि इस अतिरिक्त श्रम को कृषि क्षेत्र से निकाल कर पूंजीवादी क्षेत्र में लगाकर अधिक पूंजी निर्माण किया जायें। इस प्रकार प्रक्रिया में धीरे-धीरे जीवन निर्वाह क्षेत्र का अतिरेक समाप्त हो जायेगा और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विकसित हो जायेगा। लेविस ने अतिरेक या निवेश योग्य अतिरेक की भूमिका पर विशेष बल दिया

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप लेविस के कृषि विकास प्रारूप का विश्लेषण कर सकेंगे।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान सकेंगे कि-

- ✓ लेविस का कृषि विकास प्रारूप से सम्बन्धित मॉडल क्या है।
- ✓ समझा सकेंगे कि विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र तथा पूँजीवादी क्षेत्र के बीच क्या सम्बन्ध होता है।
- ✓ विशद् विश्लेषण कर सकेंगे कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया किस प्रकार से कार्य करती हैं। -
- ✓ लेविस को मॉडल मे बैंक की भूमिका क्या हैं।
- ✓ अल्पविकसित देशों मे श्रम की असीमित पूर्ति से आशय क्या हैं।

13.3 लेविस का कृषि विकास प्रारूप

बहुत से अर्थशास्त्रियों की तरह आर्थर लेविस ने अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास के लिए कृषि की भूमिका को बहुत अधिक महत्व दिया है। लेविस का मत है कि कृषि उत्पादन तथा बाजार की दशायें अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। अल्प विकसित देशों में अधिकतर छिपी बेरोजगारी पाई जाती है। छिपी बेरोजगारी का यह अभिप्राय है कि किसी कार्य को करने के लिए जितने व्यक्ति चाहिए, उससे अधिक व्यक्ति काम पर लगे हुए हैं। यदि कुछ व्यक्तियों को काम पर से हटा दिये जाए तो कुल उत्पादन में कमी नहीं होगी। इस प्रकार इन श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है। इसे आपको एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता हैं। जैसे एक हेक्टेयर खेत की जुताई करने के लिए तीन व्यक्तियों की आवश्यकता है। यदि उस खेत में पांच व्यक्ति काम पर लगे हुए हैं तो दो व्यक्ति छिपी बेरोजगारी को व्यक्त करते है। अल्प विकसित देशों में छिपी या अदृश्य बेरोजगारी की समस्या बहुत गंभीर है।

अल्प विकसित देशों में छिपी बेरोजगारी को पूंजी निर्माण हेतु प्रयोग करने के लिए प्रो० लेविस ने एक सिद्वांत का प्रतिपादन किया था, जिसे लेविस का कृषि विकास प्रारूप कहा जाता है। प्रो० आर्थर लेविस ने अपने एक लेख Economic Development with Unlimited Supply of Labour' (1954) में इस तथ्य को स्पष्ट किया कि

अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास हेतु अल्पविकसित देश अपनी असीमित श्रम शक्ति का उपयोग पूंजी-निर्माण के लिए करके आर्थिक विकास की गति को तीव्र कर सकते हैं।

अल्प विकसित देशों में पूंजी की कमी पाई जाती है। इन देशों में निवेश की दर 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक होती है जबकि आर्थिक विकास की उचित दर प्राप्त करने के लिए 15 से 20 प्रतिशत की निवेश दर आवश्यक है। इन अर्थव्यवस्थाओं में श्रम की पूर्ति असीमित होती है। श्रम की पूर्ति का उचित उपयोग करके निवेश की दर में वृद्धि की जा सकती है।

13.4 मॉडल की मान्यताएं

लेविस के कृषि विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताएं निम्नलिखित है:

(क) अल्प विकसित देशों में जनसंख्या घनत्व अधिक होने के कारण बहुत से लोग छिपी हुयी बेरोजागरी से पीड़ित हैं। इनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य होती हैं।

(ख) जीवन निर्वाह स्तर पर मजदूरों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है।

(ग) अर्थव्यवस्था में दो प्रमुख क्षेत्र हैं- (1) पूंजीवादी क्षेत्र (2) पिछड़ा प्राथमिक क्षेत्र

(घ) पूंजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की दर अधिक होती है, जबकि प्राथमिक क्षेत्र में मजदूरी की दर कम होती है। यह जीवन निर्वाह के बराबर होती है।

13.5 लेविस के कृषि विकास प्रारूप की व्याख्या

लेविस के कृषि विकास प्रारूप की व्याख्या निम्नांकित शीर्षकों में बाँट कर सकते हैं

13.5.1 द्वि-क्षेत्र अर्थव्यव्स्था

लेविस अपना कृषि विकास प्रारूप एक द्वैत अर्थव्यवस्था की मान्यता पर करते हैं जिसमें दो क्षेत्र हैं।

(a) आधुनिक विनिमय क्षेत्र या पूँजीवादी क्षेत्र तथा

(b) जीवन निर्वाह क्षेत्र।

पूंजीवादी क्षेत्र वह क्षेत्र है जो पुर्नउत्पादनीय पूँजी प्रयोग में लाता है। पूँजी के प्रयोग पर नियंत्रण करता है। पूँजीवादी क्षेत्र उत्पादन के लिए श्रमिकों को किराये पर लेता है। दूसरी ओर जीवन निर्वाह क्षेत्र वह है जो पुर्नउत्पादनीय पूँजी का प्रयोग नहीं कर रहा है। इसे घरेलू परम्परागत क्षेत्र या स्व रोजगार क्षेत्र कहा जा सकता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति उत्पादन का स्तर पूँजीवादी क्षेत्र से बहुत ही कम है।

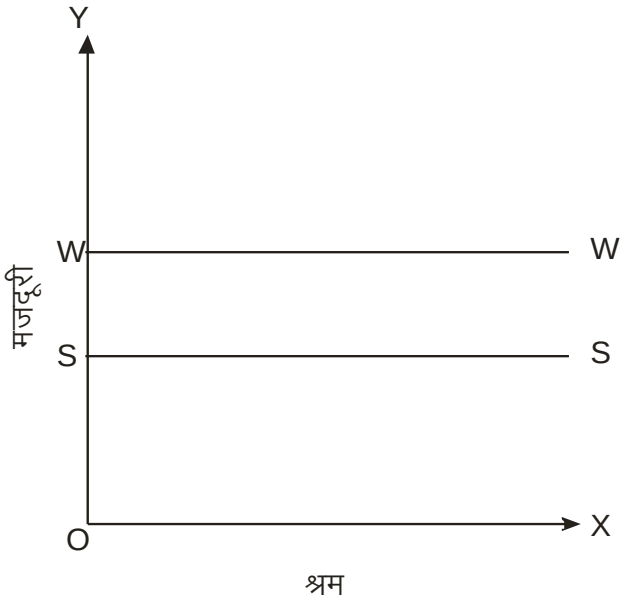

चित्र 1

चित्र में अक्षैतिक अक्ष OX रोजगार पर लगे श्रम को मात्रा को मापता है और अनुलम्ब अक्ष OY श्रम की मजदूरी तथा सीमान्त उत्पादकता को मापता है। SS औसत निर्वाह आय को तथा WW पूँजीवादी मजदूरी को प्रकट करता है। चित्र से स्पष्ट है कि पूँजीवादी क्षेत्र में आय का स्तर जीवन निर्वाह क्षेत्र के आय स्तर से कम है। अर्थशास्त्रियों के अनसार दोनों क्षेत्रों की आय का यह अन्तर 30 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक हो सकता है। प्रो0 लुइस ने इस अन्तर को 30 प्रतिशत अगणित किया था।

13.5.2 असीमित श्रमपूर्ति

लेविस माडल इस महत्वपूर्ण मान्यता पर आधारित है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रम की असीमित पूर्ति होती है जिसका अर्थ यह है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र में प्रचलित जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी दर पर श्रम की पूर्ति श्रम की मांग से अधिक है और इस श्रमाधिक्य को जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी दर पर दूसरी जगह रोजगार दिया जा सकता है। श्रमिकों का सीमान्त उत्पादन जीवन-निर्वाह मजदूरी से नीचे है जिससे कि श्रमिकों को दूसरी जगह रोजगार दिये जाने के कारण श्रमिक के औसत उत्पादन में कमी नही आयेगी, बल्कि इसमें वृद्धि होगी।

लेविस ने '**श्रमतिरेक**' को स्पष्ट करते हुए यह तर्क रखा कि अल्पविकसित देशों में श्रमिक सीमान्त उत्पादन विकास के अल्पस्तर पर भी शून्य या ऋणात्मक हो सकता है। कृषि क्षेत्र में भूमि की प्राविधिक गुणांक में परिवर्तनशीलता के अभाव के कारण उत्पादन हास नियम लागू होने लगता है। अब यदि जनसंख्या में तेज वृद्धि हो और भूमि के अतिरिक्त रोजगार का कोई अन्य अवसर नहीं हो तो जैसा ए०के० सेन ने कहा भूमि पर लगे श्रमिक अपने कार्य के घण्टों में कमी ला देंगे। श्रम के सीमान्त उत्पादन में तेजी से गिरावट आयेगी और एक स्थिति में शून्य भी हो जायेगी और जब सीमान्त उत्पादन शून्य या नगण्य हो जाता है तो इन अर्थव्यवस्थाओं में मजदूरी की दर जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी दर के बराबर हो जाती है। इस स्थिति में श्रम की पूर्ति जब तक अपरिमित रहेगी जब तक कि श्रम की पूर्ति इस मजदूरी दर पर श्रम की माँग से अधिक होगी। इस स्थिति की व्याख्या हम चित्र द्वारा निम्न प्रकार कर रहे है

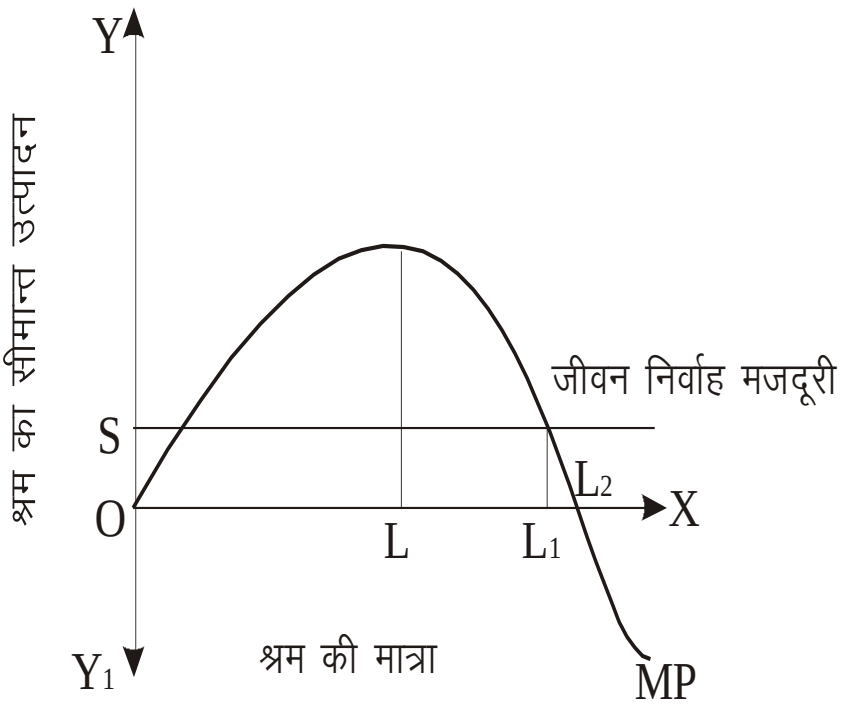

चित्र- इस रेखाचित्र में भूमि की स्थिर मात्रा के साथ श्रम की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयाँ लगायी गयी हैं; OL श्रम के बाद श्रम के सीमान्त उत्पादन में गिरावट शुरू हो जाती है और जब इसकी मात्रा OLI होती है तो इसका मूल्य जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी के बराबर हो जाता है। OLD के बाद श्रम की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है। OL1 के बाद जितने भी श्रमिक कृषि क्षेत्र में लगेंगे वें सभी अतिरेक श्रमिक होंगे। यदि इस अतिरेक श्रम को जिनको जीवन निर्वाह मजदूरी से भी कम आय प्राप्त हो रही हैं जीवन निर्वाह क्षेत्र से निकाल कर पूँजीवादी क्षेत्र में लगा दिया जाये तो निश्चित ही अतिरेक श्रम को जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी से अधिक आय प्राप्त होगी। आपको हम पहले ही बता चुके है कि पूंजीवादी क्षेत्र में मजदूरी जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी से अधिक है। औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति की लोच पूर्णतया लोचदार होगी, अर्थात् उद्योगपति दी हुयी मजदूरी दर पर जितने श्रमिक चाहे, उतने क्रय कर सकता है।

13.5.3 पूंजी निर्माण पूंजीवादी अतिरेक पर निर्भर करता है

लेविस जिस द्वैत व्यवस्था की बात करते है उसमें पूँजीवादी क्षेत्र तथा जीवन निर्वाह क्षेत्र इस अर्थ से परस्पर सम्बन्धित हैं कि जब पूँजीवादी क्षेत्र विकसित होता है श्रम हेतु रोजगार के अवसर अधिक होते है। यह जीवन निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को निकालता है तथा पूँजीवादी क्षेत्र में लगाता है और जैसा हम पहले ही देख चुके है कि नये उद्योग खोले जा सकते है या बिना सीमा के पुराने उद्योगों का विस्तार वर्तमान मजदूरी दर पर किया जा सकता है। हम लोगों ने उपयुक्त चित्र में देखा कि OL1 के बाद सभी श्रमिक दी हुयी औद्योगिक मजदूरी पर असीमित पूर्ति के रूप में औद्योगिक क्षेत्र के लिए उपलब्ध हैं।

पूँजीपति श्रमिक को तब तक रोजगार देता जायेगा, जब तक कि श्रम को दी जाने वाली मजदूरी उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर नहीं हो जाती। पूँजीपति जो निर्वाह क्षेत्र से आये हुये अकुशल श्रमिकों को मजदूरी देगा वह उस आय द्वारा बहुत अधिक सीमा तक निर्धारित होगी जिसे वे श्रमिक जीवन-निर्वाह क्षेत्र में अर्जित कर रहे थे। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब इन श्रमिकों की जीवन निर्वाह क्षेत्र में सीमान्त उत्पादकता शून्य थी।

इसीलिये वहाँ इनकी आय शून्य थी फिर इसके आधार पर पूँजीवादी क्षेत्र में इसकी मजदूरी का निर्धारण कैसे होगा? इस सम्बन्ध में लेविस यह प्रतिपादित करते हैं कि यद्यपि इनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य है पर

वास्तविकता यह है कि एक किसान परिवार कुल उत्पादन को आपस में बाँटता है, इसीलिए प्रत्येक सदस्य औसत उत्पाद के बराबर आय प्राप्त करेगा, जो शून्य से अधिक होगा, पर सीमान्त उत्पादन के बराबर नहीं प्राप्त करता। हॉ इतना अवश्य है कि यदि पूँजीवादी क्षेत्र में मिलने वाली मजदूरी उसको प्राप्त होने वाले औसत उत्पादन से कम है तो जीवन निर्वाह क्षेत्र में ही बना रहेगा। लेविस यह प्रतिपादित करते है कि सामान्यतया जीवन निर्वाह आय तथा पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी में 30 प्रतिशत का अन्तर होगा। इस प्रक्रिया को निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया गया है

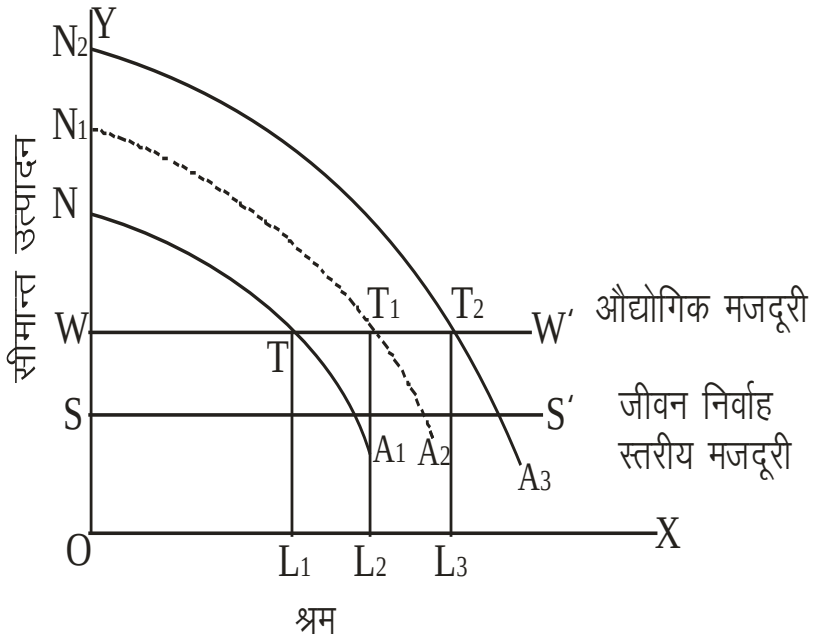

चित्र-3

यह रेखाचित्र पूँजीवादी या औद्योगिक क्षेत्र को प्रदर्शित करता है, रेखाचित्र नं० 2 में हम लोगों ने देखा कि OL1 के अतिरिक्त जो भी श्रमिक जीवन निर्वाह क्षेत्र में है वे सभी औद्योगिक क्षेत्र में लिए किसी भी औद्योगिक मजदूरी पर (जो निश्चित रूप से श्रमिक के औसत उत्पादन या जीवन-निर्वाह से ऊपर होगी) 'पूर्ण लोचदार पूर्ति' के रूप में हैं। औद्योगिक मजदूरी WW पूर्णयता लोचदार रेखा के रूप में प्रदर्शित है जिससे यह स्पष्ट होता है कि OW मजदूरी पर पूँजीपति जितना श्रमिक चाहे जीवन निर्वाह क्षेत्र से प्राप्त कर सकता है। रेखाचित्र में श्रम की सीमान्त उत्पादकता वक्र मूलतः NA से प्रदर्शित है। यदि हम यह मान लें कि पूँजीपति रोजगार देते समय अपने लाभ को अधिकतम करेगा, तो यह श्रम को वहीं तक रोजगार देगा, जबकि उसकी सीमान्त उत्पादकता औद्योगिक मजदूरी के बराबर हो जाये। रेखाचित्र 3 में वह OL2 श्रमिकों को रोजगार देगा जिस पर सीमान्त उत्पादन LT = मजदूरी (OW)। हम जानते हैं कि सीमान्त उत्पादन के नीचे का सम्पूर्ण भाग जो वस्तुतः श्रम की प्रति इकाई पर प्राप्त उत्पादन प्रदर्शित करता है, कुल उत्पादन प्रदर्शित करेगा। (यदि हम प्रत्येक इकाई से प्राप्त उत्पादन को एक साथ जोड़ दे तो योग ही कुल उत्पादन होगा)।

रेखाचित्र में OL1 श्रमिको से प्राप्त कुल उत्पादन ONTL1 है। अब यदि हम इसमें से श्रमिकों को दी गयी मजदूरी जो OL1 x OW = OWTLI घटा दे तो शेष ONTLI – OWTL1 = WNT पूँजीपति को प्राप्त लाभ होगा।

यदि इस अतिरेक (WNT) को पूँजीपति द्वारा विनियोजित कर दिया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप अतिरिक्त पूँजी निर्माण होगा, श्रम उत्पादकता में वृद्धि होगी, सीमान्त उत्पादकता वक्र ऊपर विवर्तित होकर NA1 हो जायेगा। अब पूँजीवादी अतिरेक और रोजगार पहले से अधिक हो जाता है।

रोजगार की मात्रा OL1 से OLहो जाती है तथा पूँजीवादी अतिरेक भी WNT से बढकर WN.T1 हो जाता है। इस पूँजीवादी अतिरेक (WNT1) को पुनः निवेशित किया जाता है तो सीमान्त उत्पादकता का वक्र ऊपर को सरक कर NZA, हो जाता है। अब पूँजीवादी अतिरेक और रोजगार पहले से अधिक हो जाते है जो कि क्रमश: WN.T, तथा OL3 है। इस पूँजवादी अतिरेक को पुनः निवेश किया जाता है और यह तब तक चलता रहता है, जब तक कोई अतिरेक श्रम न बचे।

इस प्रकार पूँजीपतियों द्वारा कमायें गये लाभों में से पूँजी का निर्माण होता है। प्रो० लेविस तकनीकी ज्ञान और उत्पादक पूँजी की वृद्धि के बीच कोई भेद नही करता है और दोनों को एक ही तत्व मानता है जिसका परिणाम यह है कि तकनीकी प्रगति लाभों को बढ़ाती है और पूँजीवादी क्षेत्र में रोजगार में वृद्धि करती है।

विकास की इस प्रक्रिया में लेविस पूरी अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी क्षेत्र के सापेक्षिक आकार से ज्यादा सम्बन्धित हैं। जितना ही यह आकार बढ़ता जायेगा उत्पादन में पूँजीपति का हिस्सा बढ़ता जायेगा क्योंकि यह हिस्सा जितना ही बढ़ेगा राष्ट्रीय आय में लाभ का हिस्सा बढ़ता जायेगा। लेविस कहते भी है कि अल्पविकसित देशों में इतने गरीब इसलिए हैं क्योंकि उनमें पूँजीवादी क्षेत्र का आकार अत्यन्त कम है। अल्पविकसित देशों का आर्थिक विकास पूँजीवादी क्षेत्र के विस्तार पर निर्भर करेगा।

13.5.4 राज्य तथा निजी पूँजीपतियों की भूमिका

लेविस के सिद्वांत में विस्तार की प्रक्रिया में पूँजी आधिक्य या संचयन की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। लेविस के अनुसार आर्थिक विकास के सिद्धान्त में सबसे महत्वपूर्ण समस्या उस प्रक्रिया को समझने की है जिसमें कोई समाज जो पहले अपनी राष्ट्रीय आय का 4 से 5 प्रतिशत या इससे कम बचत तथा निवेश करता था, वह अपने आप को एक ऐसी अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करता है, जहाँ ऐच्छिक बचत राष्ट्रीय आय की लगभग 12 से 15 प्रतिशत या इससे भी अधिक हो रही है। यही प्रमुख समस्या है कि क्योंकि आर्थिक विकास का सबसे प्रमुख तथ्य तीव्र पूँजी संचय है। जिसमें पूँजी के साथ ज्ञान और कौशल भी शामिल है।

अर्थव्यवस्था में पूँजीसंचयन कितना होगा या पूँजीपति के पास पुनर्विनियोजन योग्य आधिक्य कितना होगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि राष्ट्रीय उत्पाद में पूँजीपति को लाभ के रूप में कितना भाग मिलता है और लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि राष्ट्रीय उत्पाद में पूँजीवादी क्षेत्र का हिस्सा कितना है। लेविस के अनुसार जैसे-जैसे पूँजीवादी क्षेत्र का विस्तार होता है मजदूरी-मूल्य अनुपात स्थिर होने की स्थिति में, राष्ट्रीय आय में लाभ का हिस्सा बढ़ता जाता है और चूँकि बचत का प्रमुख स्रोत लाभ ही है। इसलिए राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में बचत एवं पूँजी-निर्माण का भी भाग बढ़ता जाता है। अतिरेक श्रम वाले अल्पविकसित देशों में अधिक आय वाले 10 प्रतिशत लोग, जो राष्ट्रीय आय का 40 प्रतिशत प्राप्त करते है, वही बचत करते है। वेतन एवं मजदूरियां प्राप्त करने वाला वर्ग कठिनाई से राष्ट्रीय आय का 3 प्रतिशत बचाते है। परन्तु मुख्य वर्ग में भूमिपति, व्यापारी, पुजारी, राजे-महाराजे आदि उत्पादक निवेशों की अपेक्षा व्यर्थ उपभोग में लगे रहते है। राज्य पूँजीपति और देशीय निजी पूँजीपति कमायें गये लाभों में से पूँजी निर्माण करते है। प्रो० लेविस इस तथ्य का जोरदार समर्थन करते है कि राज्य पूँजीपति, निजी पूँजीपति की अपेक्षा शीघ्रता से पूँजी संचय कर सकता है। तकनीकी के सन्दर्भ में प्रो० लेविस कहते है कि यदि बहुत कम तकनीकी विकास का स्तर है तो अतिरेक केवल धीरे-धीरे ही वृद्धि करेगा परन्तु यदि किसी भी कारण पूँजी उत्पादकता के प्रयोग के अवसरों में शीघ्रता से वृद्धि होती है तो अतिरेक तेजी से बढ़ेगा और उसके साथ पूँजीवादी वर्ग भी।

13.5.5 बैंक साख द्वारा पूँजी निर्माण

लेविस ने पूँजी-सृजन के सम्बन्ध में पूँजीपति के लाभ या अतिरेक पर बल दिया। परन्तु वह यह भी स्वीकार करते हैं कि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि या बैंक साख के द्वारा भी पूँजी का सृजन हो सकता है। इस प्रकार से पूँजी

सृजन का महत्व अल्पविकसित देशों में विशेष रूप से होगा जहाँ पूँजी की कमी के कारण श्रमातिरेक है। इस स्थिति में बिना अन्य प्रयोगों से संसाधनों की निकासी के ही पूँजी सृजन सम्भव होगा। बैंक साख द्वारा लायी गयी विस्तार की इस प्रक्रिया में प्रमुख कठिनाई होगी- स्फीतिक दबाव की। क्योंकि अतिरिक्त मुद्रा के सृजन के कारण मौद्रिक आय तथा उसके परिणामस्वरूप वस्तुओं की माँग तत्काल बढ़ जायेगी पर वस्तुओं की पूर्ति उसी के साथ नही बढ़ेगी, पूर्ति को माँग की वृद्धि के साथ समायोजित करने में समय लगेगा। पर इसके सम्बन्ध में लेविस यह मत प्रकट करते है कि स्फीतिक दबाव की यह स्थिति स्वतः समाप्त हो जायेगी क्योंकि उत्पादन की धीरे-धीरे वृद्धि के साथ वांछित बचत जो लाभ पर निर्भर करेगी, बढ़ने लगेगी और पुनः एक ऐसी स्थिति आ जायेगी जब विकास की प्रक्रिया की वित्तीय व्यवस्था पूँजीपति के लाभ या बचत से हो जायेगी, बैंक साख की आवश्यकता नहीं होगी।

13.5.6 वृद्धि प्रक्रिया का अंत

लेविस का कृषि विकास प्रारूप स्पष्ट करता हैं कि आर्थिक विकास की ऐसी प्रक्रिया अपरमित सीमा तक नहीं चल सकती, यह प्रक्रिया उस समय रूक जायेगी जब जीवन निर्वाह क्षेत्र में अब श्रमातिरेक शेष ही न रहे जिसे रोजगार में लेना हो। जब यह श्रमातिरेक समाप्त हो जाता है तो औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति पूर्ण लोचदार नहीं रह जाती। इस स्थिति में श्रम के लिए पूँजीवादी क्षेत्र तथा कृषि क्षेत्र के बीच प्रतियोगिता शुरू होगी। जब यह स्थिति आ जाये तो कृषि क्षेत्र का व्यापारीकरण हो जायेगा। निम्नांकित परिस्थितियों मे विकास की यह प्रक्रिया पूर्ण परिपक्वता से पहले बिना सम्पूर्ण श्रमातिरेक को रोजगार दिए ही रूक सकती है क्योंकि

(A) यदि पूँजी निर्माण के परिणामस्वरूप कोई अतिरेक श्रम न बचे।

(B) यदि पूँजी क्षेत्र इतनी तेजी से विकास करे कि निर्वाह क्षेत्र में जनसंख्या बिल्कुल घट जाये और उस (निर्वाह) क्षेत्र में श्रम की औसत उत्पादकता बढ़ जाएं क्योंकि उत्पादन को बाँटने वाले बहुत कम लोग रह गये है और इस प्रकार पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी बढ़ जाये।

(C) यदि निर्वाह क्षेत्र की सापेक्षता में पूँजीवादी क्षेत्र का विस्तार होने के परिणामस्वरूप व्यापार की स्थितियां पूँजीवादी क्षेत्र के विरूद्ध जाएं, और कच्चे माल तथा अन्न की चढ़ती कीमतों के साथ पूँजीपति को श्रमिकों को अधिक ऊँची मजदूरी का भुगतान करना पड़े।

(D) यदि निर्वाह क्षेत्र उत्पादन की नई तकनीकें अपना ले, जिससे पूँजीवादी क्षेत्र में वास्तविकता मजदूरी बढ़ जाये तथा इस प्रकार पूँजीवादी अतिरेक कम हो जाएं।

(E) यदि पूँजीवादी क्षेत्र में श्रमिक पूँजीवादी ढंग का जीवन अपना लें तथा अधिक ऊँची मजदूरी के लिए संघर्ष करें और अपनी मजदूरी बढ़वाने में सफल हो जाएं तो पूँजी-निर्माण की दर और पूँजीवादी अतिरेक कम हो जाएंगे।

13.5.7 खुली अर्थव्यवस्था में लेविस का सिद्धान्त

जब इन साधनों में से कोई भी वृद्वि की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, तो या तो आप्रवास को प्रोत्साहन देकर या उन देशों को, जिनमें निर्वाह मजदूरी पर अधिक श्रम प्राप्त होता हैं, पूँजी का निर्यात करके पूँजी संचय जारी रखा जा सकता है। परन्तु ये सम्भावनाऐं लेविस द्वारा स्वयं की रद्द की गयी। क्योंकि अकुशल श्रम का आप्रवास सम्भव नहीं तथा भगतान शेष के विपरित होने के कारण देश में कठिनाईयां उत्पन होती है। अतः ऐसी अर्थव्यवस्थाओं के लिए लेविस विनिमय नियंत्रण की सलाह देते है।

13.5.8 लेविस का कृषि विकास प्रारूप की आलोचनाएं

यदि हम प्रो० नर्स तथा प्रो० लेविस द्वारा प्रतिपादित पूँजी निर्माण सम्बन्धी इस प्रकार के दृष्टिकोणों की तुलना करें तो पायेंगे कि दोनों ही यह मानते है कि अल्पविकसित देशों में, विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में, श्रमातिरेक

पाया जाता है, जिसे बिना कुल उत्पादन में किसी कमी के निकाला जा सकता है तथा इस प्रकार पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि की जा सकती है। पर दोनों इसके सम्बन्ध में कि इन श्रमिकों को वहाँ से निकालने के लिए क्या आवश्यक दशा हों, भिन्न मत रखते हैं। प्रो० लेविस इस मत के है कि संगठन के बिना किसी सुधार अथवा नयी पूँजी को लाये हुए इस प्रकार के श्रमातिरेक को निकाला जा सकता है। इसके विपरीत नर्क्स अथवा उनके अनुमोदकों के दृष्टिकोण के अनुसार, संगठन में उन्नति जैसे- कृषि जोतों में सुधार, इस प्रकार के श्रमिकों को निकालने के लिये

आवश्यक दशा है, यद्यपि प्राविधिक प्रगति इसकी मान्यता में नही है अर्थात् प्राविधिक प्रगति नही होनी चाहिए। इस प्रकार दोनों के बीच का अन्तर संगठन सम्बन्धी परिवर्तनों का ही

प्रो० लेविस का यह दृष्टिकोण अनेक अव्याहावारिक मान्यताओं पर आधारित है। लेविस के कृषि विकास प्रारूप की निम्नलिखित आलोचनायें की जाती है

1. श्रम की गतिशीलता आसान नहीं - ऊँची पूँजीवादी मजदूरी होने से अतिरेक-श्रम निर्वाह क्षेत्र से पूँजीवादी क्षेत्र में नही चला जाएगा। लोगों को अपनी भूमिका एवं परिवार से इतना अधिक लगाव होता है कि वह अपने रिश्तेदारों और घर को छोड़ना पसन्द नही करते। इसके अतिरिक्त पूँजीवादी क्षेत्र में भाषा एवं रीति-रिवाज की विभिन्नताएं तथा भीड़-भाड़, मकान एवं महंगाई की समस्याएं निर्वाह क्षेत्र से इस क्षेत्र में श्रम की गतिशीलता के रास्ते में महत्वपूर्ण रूकावटें है। यह इस मॉडल की एक प्रमुख कमी है।
2. सीमिति क्षेत्र- इस सिद्धान्त का क्षेत्र सीमित है क्योंकि यह सिद्धान्त अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति की मान्यता पर आधारित है। परन्तु कई अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं जैसे दक्षिणी अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में श्रम की पूर्ति असीमित नहीं है। इसलिए यह सिद्धान्त उन अर्थव्यवस्थाओं पर लागू नहीं होता।
3. कुशल श्रमिकों की कमी– लुईस का यह निष्कर्ष भी ठीक नही है कि अल्प विकसित देशों में अकुशल श्रमिकों को प्रशिक्षण देकर आसानी से कुशल बनाया जा सकता है। इसलिए श्रम की कुशलता को वे आर्थिक विकास के लिए कोई बड़ी बाधा नहीं मानते थे। परन्तु अल्प विकसित देशों में कुशल श्रम की पूर्ति थोडी होती हैं। कौशल निर्माण एक गम्भीर समस्या हैं अत वास्तव मे अकुशल श्रमिकों को प्रशिक्षण देकर कुशल बनाने में बहुत अधिक समय लगता है।
4. स्थिर जीवन निर्वाह मजदूरी संभव नही- इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र मे मिलने वाली मजदूरी जीवन-निर्वाह स्तर के बराबर स्थिर रहेगी तथा उसमें कोई वृद्धि नहीं होगी। वास्तव में आर्थिक विकास के फलस्वरूप जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रमिकों का दबाव कम होने के कारण उनकी औसत तथा सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाती है तथा वे अधिक मजदूरी की मांग करते है।
5. उद्यमियों का अभाव- लुईस के सिद्धान्त की यह मान्यता भी उचित नहीं है कि अल्प विकसित देशों में उद्यमी पर्याप्त संख्या में होते हैं, इसलिए असीमित श्रम शक्ति का पूर्ण उपयोग किया जा सकता है। वास्तव मे अल्पविकसित देशों में योग्य उद्यमियों का अभाव पाया जाता है। इनके अभाव में आर्थिक विकास की प्रक्रिया तेजी से नहीं हो पाती।
6. सीमान्त उत्पादकता शून्य नहीं होती- प्रो० सेन एवं शुल्टज के अनुसार लुईस के माडल की यह धारणा भी गलत है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है। वास्तव में सीमान्त उत्पादकता शून्य नहीं होती हैं। इसलिए यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि कृषि में कितने लोग छिपे रूप से बेरोजगारी हैं।

7. निवेश गुणक का क्रियाशील न होना- इस माडल की यह मान्यता भी उचित नहीं है कि अल्प विकसित देशों में उद्यमी अपने लाभ को निवेश नहीं करते। इसलिए निवेश गुणक क्रियाशील होता है। परन्तु वास्तव में जैसा डॉ० राव तथा प्रो० दास गुप्ता मत है कि अल्प विकसित देशों में निवेश गुणक क्रियाशील नहीं होता। निवेश गुणक के क्रियाशील न होने के कारण श्रम का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता।
8. धन की असामनता- कुजनेट्स ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि यह माडल धन की असामनता को प्रोत्सहित करता है। परन्तु वास्तव में यह आवश्यक नहीं है। धन की असमानता के कारण धनी वर्ग अपने धन को उत्पादक कार्यों में निवेश करके पूंजी निर्माण करे। अल्प विकसित देशों में धनी वर्ग अधिकतर अनुत्पादक कार्यों में अपने धन को खर्च कर देते है। इस कारण धन की असमानता के होते हुए भी इन देशों का आर्थिक विकास नहीं हो पाता।
9. कुल मांग की अवेहलना- लुईस ने अपने माडल में कुल मांग की अवेहलना की है। लुईस के माडल की यह धारणा है कि पूंजीवादी क्षेत्र द्वारा जितना भी उत्पादन होता है उसका या तो पूंजीवादी क्षेत्र द्वारा उपभोग कर लिया जाता है या उसका निर्यात कर दिया जाता है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। वास्तव में पूंजीवादी क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं की जीवन निर्वाह क्षेत्र द्वारा भी मांग की जाती है। यदि जीवन निर्वाह क्षेत्र द्वारा की जाने वाली मांग कम हो जाती है तो कुल मांग कम हो जाएगी तथा विकास प्रक्रिया रुक जायेगी।
10. पूंजीवादी क्षेत्र द्वारा ही बचत नहीं होती- लुईस के माडल की यह धारणा भी गलत है कि अल्पविकसित देशों में केवल पूंजीवादी क्षेत्र ही बचत करता है। इन देशों में घरेलू क्षेत्र द्वारा भी काफी बचत की जाती है। इसीलिए आर्थिक विकास की प्रक्रिया केवल पूंजीवादी क्षेत्र पर ही निर्भर नहीं करती।
11. मुद्रास्फीति स्वयं विनाशक नहीं होती- प्रो० ओलवर्स के अनुसार प्रो० लेविस के मॉडल की यह धारणा भी उचित नहीं है कि मुद्रास्फीति स्वयं होती है। वास्तव में भारत जैसे अल्प विकसित देशों के उदाहरण से ज्ञात होता है जब एक बार मुद्रास्फीति आरम्भ हो जाती है तो उस पर नियंत्रण करना कठिन हो जाता है। इसका कारण यह है कि इन देशों की संरचनात्मक कठिनाइयों के कारण उत्पादन उतनी शीघ्रता से नहीं बढ़ता जितनी शीघ्रता से इन देशों में मुद्रास्फीति फैलती है।

हालांकि लेविस के सिद्वांत की कड़ी आलोचना की गई है परन्तु यह सिद्वांत आर्थिक विकास की उचित व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह स्पष्ट करता है कि उन अल्पविकसित देशों में पूँजी संचय किस प्रकार होता है, यहाँ श्रम की अधिकता और पूँजी की दुर्लभता हो। इस सिद्वांत में जनसंख्या वृद्धि, मुद्रास्फीति, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, पूंजी निर्माण आदि तत्वों का उपयोगी विश्लेषण किया गया है।

13.6 बहुविकल्पीय प्रश्न

1. लेविस का कृषि विकास प्रारूप कितने क्षेत्रों में आपसी सम्बन्ध की व्याख्या करता है?

(i) दो क्षेत्र
(ii) तीन क्षेत्र
(iii) चार क्षेत्र
(iv) उपर्युक्त में से कोई नही

2. लेविस के अनुसार जीवन निर्वाह क्षेत्र एवं पूँजीवादी क्षेत्र के श्रमिकों की मजदूरी में कितने प्रतिशत का अन्तर होता है?

(i) 10 प्रतिशत
(ii) 20 प्रतिशत

(iii) 30 प्रतिशत

(iv) 40 प्रतिशत

3. प्रो0 लेविस द्वारा निम्न में से कौन सा सिद्धान्त दिया गया है?

(i) श्रम की सीमित पूर्ति का सिद्धान्त

(ii) श्रम की असीमित पूर्ति का सिद्धान्त

(iii) पूँजी की सीमित पूर्ति का सिद्धान्त

(iv) पूँजी की असीमित पूर्ति का सिद्धान्त

4. पूँजी-निर्माण किसके अतिरेक पर निर्भर करता है? __

(i) लाभ के अतिरेक पर

(ii) समाजवादी अतिरेक पर

(iii) श्रम के अतिरेक पर

(iv) उपर्युक्त में से कोई नही

5. अदृश्य बेरोजगारी की स्थिति में श्रमिकों की उत्पादकता कितनी होती है?

(i) एक के बराबर

(ii) एक से कम

(iii) शून्य

(iv) उपर्युक्त में से कोई नही

13.7 सारांश

इस इकाई में आपने प्रो0 लेविस के श्रम की असीमित पूर्ति सिद्धान्त की बिन्दुवार जानकारी प्राप्त की। प्रो0 लेविस ने, जीवन निर्वाह (कृषि क्षेत्र) के अतिरेक श्रम को प्रशिक्षित कर पूंजीवादी क्षेत्र (उद्योग क्षेत्र) में रोजगार देकर पूंजी निर्माण को बढ़ाकर आर्थिक विकास की बात करते है परन्तु पूँजी निर्माण की यह प्रक्रिया अनन्त काल तक नही चलती है। हमने इस तथ्य का भी विश्लेषण किया है कि बैंक किस प्रकार से पूंजी निर्माण में भूमिका निभाते है। आपने यह भी जानने की कोशिश की कि पूंजी निर्माण की इस प्रक्रिया में स्फीतिक दबाव की यह स्थिति स्वतः किस प्रकार समाप्त हो जाती है। अन्त में हमने उन स्थितियों पर चर्चा की जब यह नियम लागू नहीं होता हैं।

13.8 शब्दावली

- **जीवन निर्वाह मजदूरी -** न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राप्त होने वाली मजदूरी पूर्णतया लोचदार- x -अक्ष के सामानान्तर लोच, इसमें लोच अन्नत होती है।
- **पूंजीवादी क्षेत्र-** वह क्षेत्र जिसके पास पर्याप्त पूंजी होती है तथा जो पूंजी का निवेश करता है।
- **पुर्नउत्पादनीय**– पुनः उत्पादन हेतु प्रयुक्त उत्पादन ह्रास नियम- इकाईयों का निरन्तर प्रयोग करने पर जब उत्पादन घटती दर से प्राप्त होता है।

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(i) दो क्षेत्र (ii) 30 प्रतिशत (iii) श्रम की असीमित पूर्ति का सिद्धान्त (iv) श्रम के अतिरेक पर (v) शून्य

लघु उत्तरीय प्रश्न 1. द्वि-क्षेत्र अर्थव्यवस्था को परिभाषित कीजिए।

2. पूँजी निर्माण, पूँजीवादी अतिरेक द्वारा होता है, समझाइए।

3. पूँजी निर्माण में बैंक साख की भूमिका बताइए।
4. प्रो0 लेविस के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यतायें लिखिए।
5. प्रो0 लेविस के सिद्धान्त में पूँजी निर्माण की प्रक्रिया किस प्रकार रूकती है?

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन एम०एल, विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा०लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस0एन0 एवं एस0के0 लाल, आर्थिक विकास तथा आयोजन, शिव पबिलशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- गुप्ता पी0के0, कृषि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा०लि0, नई दिल्ली।

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रो0 लेविस के श्रम के असीमित पूर्ति सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?
2. आर्थर लेविस के कृषि विकास प्रारूप का विश्लेषण करते हुए यह भी बताइये कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे कहाँ तक सफल हो सकता है?
3. प्रो0 लेविस के सिद्धान्त में किस तरह बैंक साख द्वारा पूँजी निर्माण होता है?

इकाई 14- फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारुप
(Fei-Ranis Development Model)

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 फाई-रेनिस का कृषि प्रारूप
14.3.1 फाई-रेनिस कृषि प्रारूप की मान्यताएं
14.3.2 अतिरेक श्रम के स्थानान्तरण की अवस्थाएं
14.3.3 सन्तुलित विकास
14.3.4 फाई-रेनिस कृषि प्रारूप की आलोचनाएं
14.4 अभ्यास प्रश्न
14.5 सारांश
14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.8 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में लेविस के कृषि विकास प्रारूप की चर्चा की गई। इस इकाई में हम फाई-रेनिस के कृषि विकास प्रारूप का विश्लेषण करेंगे। फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारूप आपको तब ही समझ आयेगा जबकि आपने इससे पहले की इकाई में लेविस के कृषि विकास प्रारूप को अच्छी प्रकार से समझा होगा। फाई-रेनिस का सिद्धान्त एक ऐसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था है जो संसाधनहीन हैं, श्रम का अतिरेक है, जो कृषि पर आधारित है। ज्यादातर लोग परम्परिक कृषि व्यवसायों में लगे हुए है। एक तरह से कृषि आधारित यह अर्थव्यवस्था बंद एवं गतिहीन है।

फाई-रेनिस ने इस तथ्य पर बल दिया कि संक्रमणकाल से गुजर रही एक विकासशील अर्थव्यवस्था अपने अतिरेक श्रम का प्रयोग कर किस प्रकार से गतिहीनता की अवस्था से स्वयं-पोषण आत्म वृद्धि (Self Sustained Growth) की तरफ जाने का प्रयत्न करती है। जहाँ वह अपना विकास स्वयं कर सके।

आपको यह बताना आवश्यक है कि लेविस एवं फाई-रेनिस दोनों का ही कृषि विकास प्रारूप असीमित श्रम शक्ति को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर प्रवाहित कर विकास करने का समर्थन करते है परन्तु फाई-रेनिस का सिद्धान्त लेविस के सिद्धान्त से श्रेष्ठ है क्योंकि फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारूप लेविस के कृषि विकास प्रारूप की कमियों को दूर करते हुए उसमें सुधार करता है।

फाई-रेनिस ने अपने कृषि विकास प्रारूप सिद्धान्त का विश्लेषण करते हए यह बताने का प्रयत्न किया कि कृषि क्षेत्र से अतिरेक श्रम के हस्तांतरण के बाद औद्योगिक क्षेत्र में किस प्रकार के परिवर्तन होंगे तथा कृषि क्षेत्र किस प्रकार से औद्योगिक क्षेत्र को प्रभावित करेगा। यहीं जानने का प्रयत्न हम इस इकाई में करेंगे।

14.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह बता सकेंगे कि

- ✓ फाई-रेनिस ने अपने कृषि विकास प्रारूप में अतिरेक श्रम का प्रयोग कृषि क्षेत्र से उद्योग क्षेत्र में किस प्रकार से करने का सुझाव देते है।
- ✓ फाई-रेनिस के कृषि विकास प्रारूप की अवस्थायें कौन-कौन सी है।
- ✓ संस्थानिक मजदूरी का अर्थ क्या है।
- ✓ बंद अर्थव्यवस्था किसे कहते है।
- ✓ वास्तविक मजदूरी के अर्थ को समझेंगे।
- ✓ विषद् विश्लेषण कर सकेंगे कि फाई-रेनिस की तीनों अवस्थाओं का प्रमुख आधार क्या है तथा तीनों में अन्तर बता सकेंगे।

14.3 फाई-रेनिस का कृषि प्रारूप

फाई-रेनिस ने 1961 में छपे 'A Theory of Economics Development' शीर्षक वाले एक लेख मे यह विश्लेषण किया है कि किस प्रकार संक्रमण काल में एक विकासशील अर्थव्यवस्था गतिहीनता की स्थिति से आत्मजनक वृद्धि की ओर जाने का प्रयत्न करती है। इस सिद्धान्त का सम्बन्ध एक ऐसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था से है जो संसाधनहीन कृषि पर आधारित अर्थव्यस्था है। इसमें श्रम का अतिरेक होता है। जिसमें अधिकतर जनसंख्या, विस्तृत बेरोजगारी और जनसंख्या की ऊँची वृद्धि दरों के बीच कृषि में कार्यरत है। कृषि अर्थव्यवथा बंद एवं गतिहीन है। लोग पारम्परिक कृषि व्यवसायों में लगे होते है। इसमें एक सक्रिय तथा गत्यात्मक

औद्योगिक क्षेत्र भी है। विकास से अभिप्राय कृषि अतिरेक श्रमिकों का औद्योगिक क्षेत्र को पुनः आवंटित करना है, जिनका कृषि उत्पादन में योगदान शून्य अथवा नगण्य है, जहाँ वे कृषि में संस्थानिक मजदूरी के बराबर मजदूरी पर उत्पादक बन जाते है। इस सिद्धान्त के विश्लेषण को विस्तृत रूप से समझते हुए इसकी मान्यताओं को समझना होगा।

14.3.1. फाई-रेनिस कृषि प्रारूप की मान्यताएं

आर्थिक विकास के सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए फाई तथा रेनिस ने निम्नांकित मान्यताएं दी है

1. यह एक दोहरी अर्थव्यवस्था है जिसमें प्रथम परम्परागत तथा गतिहीन कृषि क्षेत्र है और द्वितीय एक सक्रिय औद्योगिक क्षेत्र।
2. कृषि क्षेत्र का उत्पादन केवल भूमि तथा श्रम का फलन है।
3. भूमि के सुधार के अतिरिक्त कृषि में पूँजी का संचय नही होता है।
4. भूमि की पूर्ति स्थिर है।
5. यदि जनसंख्या उस मात्रा से अधिक होती है जहाँ श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य बन जाती है तो श्रम को कृषि उत्पादन में हानि के बिना औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण किया जा सकता है।
6. कृषि कार्य में पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाए जाते हैं जिनमे श्रम एक परिवर्ती साधन है।
7. औद्योगिक क्षेत्र का उत्पादन केवल पूँजी तथा श्रम का फलन है। भूमि की उत्पादन के साधन के रूप में कोई भूमिका नही है।
8. जनसंख्या वृद्धि को एक बहिर्जात तत्व के रूप में माना गया है।
9. औद्योगिक क्षेत्र में वास्तविक मजदूरी स्थिर रहती है। यह कृषि क्षेत्र की प्रारम्भिक वास्तविक आय के बराबर होती है। इसे संस्थानिक मजदूरी कहते है।
10. दोनों क्षेत्रों में श्रमिक केवल कृषि उत्पादों का उपभोग करते है।

14.3.2. अतिरेक श्रम के स्थानान्तरण की अवस्थाएं

उपुर्यक्त मान्यताओं के आधार पर फाई-रेनिस के अनुसार श्रम का अतिरेक निम्न अवस्थाओं
से होता हुआ विकास की ओर अग्रसर होता है।

I. प्रथम अवस्था- इस अवस्था में कृषि क्षेत्र के अतिरेक श्रमिकों को जिनका कुल उत्पादन में कोई योगदान नहीं है अर्थात् जो अदृश्य बेरोजगार है, संस्थानिक मजदूरी पर कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। निम्न चित्र में अदृश्य बेरोजगार अथवा अतिरेक श्रम को दिखाया गया हैं 0 चित्र 1 में कृषि की प्रक्रियां को दर्शाया गया है। जिसमें x अक्ष पर श्रम शक्ति को y अक्ष पर चित्र A में भूमि को तथा B चित्र में कुल उत्पादन दर्शाया गया है। OR रेखा कृषि वस्तुओं के उत्पादन की रेखा है। कोण ABC कृषि वस्तुओं की उत्पादन परिधि रेखा हैं। भूमि को OZ पर स्थिर मानकर अधिकतम ON1 श्रमिकों को लगाने पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है। चित्र B में TP वक श्रमिकों की कुल उत्पादकता को बताता है कि यदि N1 के बाद अधिक श्रमिकों को लगाया जाता है तो उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती है क्योंकि TP वक के M बिन्दु के बाद श्रम की कुल उत्पादकता स्थिर हो जाती है। ONI के बाद अधिक श्रमिकों को रोजगार दिया जाए तो उनका कुल उत्पादन स्थिर ही रहेगा। अतः ON1 के बाद यदि NI N2 अतिरिक्त श्रमिको को रोजगार दिया जाता है तो कुल

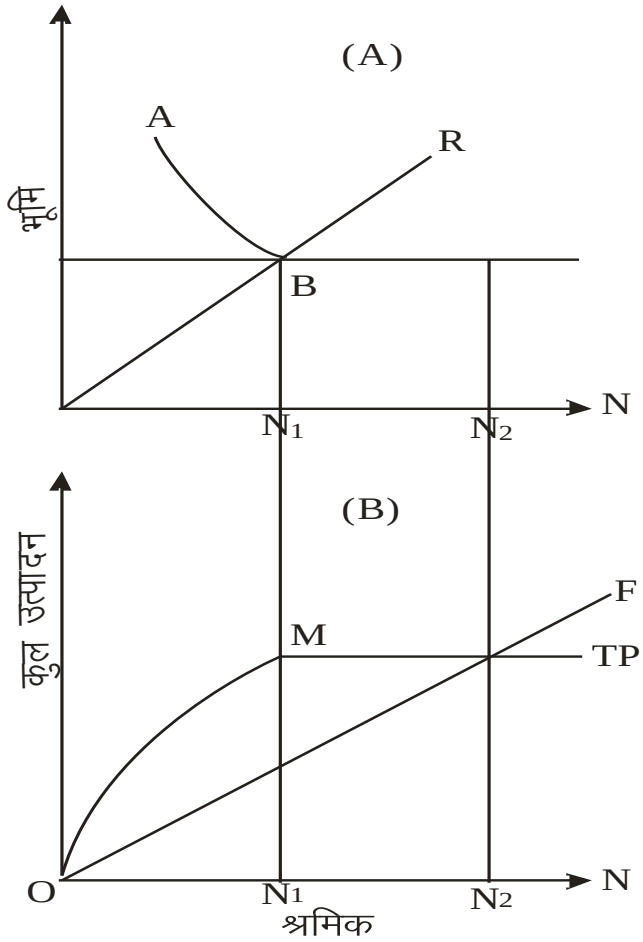

उत्पादन बढने के स्थान पर घट जायेगा क्योंकि श्रमिकों का सीमान्त उत्पादन घटने लगती हैं। इस प्रकार आप समझ गये होगें कि N. N2 श्रमिक अदृश्य बेरोजगार है। इन मजदूरों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में तीन अवस्थाओं में स्थानान्तरित कर दिया जाय तो आर्थिक विकास होता है। जिसे निम्न चित्र द्वारा दिखाया गया है।

II. द्वितीय अवस्था- इस अवस्था में कृषि क्षेत्र के ऐसे श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेजा जाता है जो कृषि क्षेत्र में उत्पादन कार्य में तो संलग्न है परन्तु उनका उत्पादन संस्थानिक मजदूरी से कम है। ऐसे श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित करने से कृषि क्षेत्र पर दबाव कम हो जायेगा जिससे कृषि क्षेत्र मे श्रमिको की मजदूरी संस्थानिक मजदूरी के बराबर हो जाती हैं।

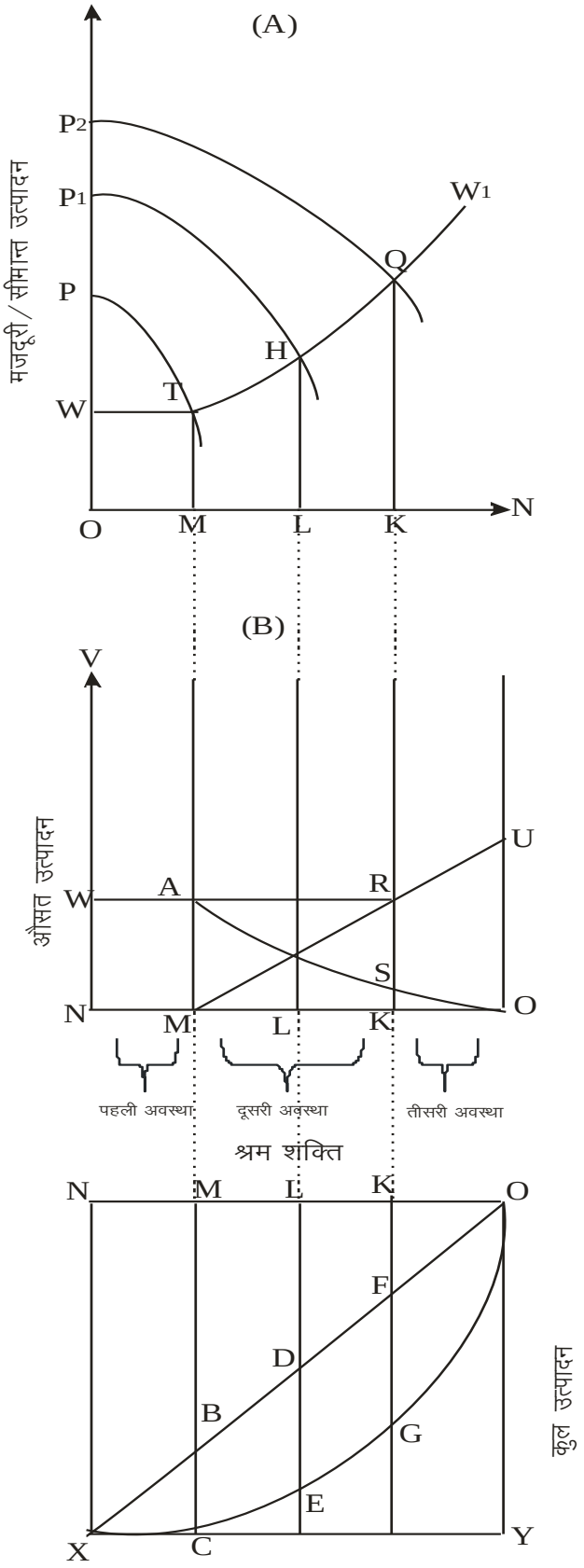
(A)
P2
P1
P
W
W1
Q
H
T
मजदूरी / सीमान्त उत्पादन
O
M
L
K
N
(B)
V
औसत उत्पादन
W
A
R
U
S
N
M
L
K
O
पहली अवस्था
दूसरी अवस्था
तीसरी अवस्था
श्रम शक्ति
N
M
L
K
O
F
D
B
G
E
X
C
Y
कुल उत्पादन

III. तृतीय अवस्था- यह अवस्था उत्कृषता (take off) की अन्तिम अवस्था है। इस अवस्था में कृषि श्रमिक संस्थानिक मजदूरी से अधिक उत्पादन करने लगते है। श्रम अतिरेक समाप्त हो जाता है। कृषि का व्यापारीकरण हो जाता है। फाई-रेनिस ने इसे ही आत्मजनक वृद्धि (Self Sustained Growth) का प्रारम्भ कहा है। फाई-रेनिस की इन अवस्थाओं द्वारा आपको यह समझाने का प्रयत्न किया जायेगा कि यदि इन अदृश्य श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित कर दिया जाये तो किस प्रकार से आर्थिक विकास होता है। जिसे चित्र 2 में दिखाया गया है। चित्र (A) औद्योगिक क्षेत्र को चित्र (B) तथा चित्र (C) कृषि क्षेत्र को दर्शाते है। पहले हम भाग (C) पर विचार करते है। वहां श्रम शक्ति को दाई ओर से बाई और क्षैतिज अक्ष (ON) पर तथा कृषि के कुल उत्पादन को 0 से नीचे की ओर अनुलम्ब अक्ष OY पर मापा गया है। वक्र OCX कृषि क्षेत्र की ओर कुल भौतिक उत्पादकता का वक्र (TPP) है। CX वक्र का सामान्तर भाग यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में कल उत्पादकता स्थिर है, अतः MN श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य है। इस प्रकार MN अतिरेक श्रम है तथा इसे औद्योगिक क्षेत्र मे लाने पर पर कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नही पड़ेगा। यद्यपि यह मान लिया जाता है कि सम्पूर्ण श्रम-शक्ति ON कृषि क्षेत्र में लगी हुई है तो यह कृषि उत्पादन उत्पादित करती है। यह मानते हुए कि समस्त उत्पादन NX कुल श्रम शक्ति ON द्वारा उपभोग कर लिया जाता है, वास्तविक मजदूरी NX/ON अथवा किरण OX की ढ़ाल है। यह संस्थानिक मजदूरी है। इस संस्थानिक मजदूरी को चित्र B में दिखाया गया है। जहाँ कुल श्रम शक्ति को दाई ओर से बाई ओर अनुलम्ब अक्ष ON पर तथा औसत उत्पादन को क्षैतिज अक्ष NV पर मापा गया है। वक्र NMRU श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को दर्शाता है। NW संस्थनिक मजदूरी है जिस पर कि मजदूरों को इस क्षेत्र में लगाया जाता है।

चित्र (B) की पहली अवस्था में NM श्रमिक अदृश्य बेरोजगार है। उनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य है जिसे चित्र (B) में NMRU वक्र के अंश NM अथवा TPP वक्र के अंश CX द्वारा चित्र (C) में दर्शाया गया है। अतिरिक्त श्रम शक्ति NM जिसे चित्र (A) के OM द्वारा दर्शाया गया है, उसी संस्थानिक मजदूरी OW (=NW) पर स्थानान्तरित की गयी है।

दूसरी अवस्था में NMRU पर MK कृषि मजदूरों की सीमान्त भौतिक उत्पादकता MR रेंज में धनात्मक है लेकिन यह संस्थानिक मजदूर KR (=NW) जो वे प्राप्त करते है जैसा कि चित्र B में दिखाया गया है। इसलिए वे कुछ सीमा तक अदृश्य बेरोजगार है जिनको औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित किया जा सकता है, किन्तु इस अवस्था में सामान्य मजदूरी औद्योगिक क्षेत्र में संस्थानिक मजदूरी के बराबर नहीं होती। ऐसा इसलिए है क्योंकि श्रम के औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण से कृषि उत्पादन कम होता है। परिणामस्वरूप, कृषि वस्तुओं की कमी हो जाती है जिससे औद्योगिक वस्तुओं की सापेक्षता में उनकी कीमतें बढ़ जाती है। उससे औद्योगिक क्षेत्र में व्यापार की शर्ते खराब हो जाती हैं, इससे औद्योगिक क्षेत्र की सामान्य मजदूरी में वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है। सामान्य मजदूरी OW से LH तथा KQ तक संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ जाती है। यह श्रम के पूर्ति वक्र WT से H तथा Q से ऊपर W1 तक जाते हुए चित्र (A) में दर्शाया गया है, जब ML तथा LK मजदूरी धीरे-धीरे औद्योगिक क्षेत्र मे स्थानान्तरित हो जाते है। T से ऊपर की ओर श्रम की पूर्ति वक्र WTW पर ही लुइस का मोड़ बिन्दु है।

जब तीसरी अवस्था प्रारम्भ होती है, तो कृषि मजदूर कृषि उत्पादन को संस्थानिक मजदूरी के बराबर उत्पादित करना शुरू कर देते हैं, और अन्ततः संस्थानिक मजदूरी से अधिक प्राप्त करते हैं। यह उत्कृष का अन्त है तथा आत्मजनक वृद्धि का प्रारम्भ है। वह भाग (B) में वक्र MPP के बढ़ रहे भाग RU से दर्शाया गया है, जो कि

संस्थानिक मजदूरी KR (=NW) से ऊंचा है। परिणामस्वरूप KO श्रम को चित्र (A) में KQ से ऊपर बढ़ती हुई सामान्य मजदूरी पर कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जायेगा। यह कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम को समाप्त करता है जिसका पूरी तरह व्यापारिककरण हो जाता है। इस अतिरेक श्रम की समाप्ति को श्रम शक्ति की भौतिक कमी की अपेक्षा मुख्य तौर से बाजार का तत्त्व माना जाना चाहिए। यह पूर्ति के स्रोत पर वास्तविक मजदूरी में वृद्धि द्वारा व्यक्त किया जाता है।

फाई तथा रेनिस का मत है कि जब कृषि श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है तो कृषि वस्तुओं का अतिरेक प्रारम्भ हो जाता है। इससे कृषि क्षेत्र मे कुल कृषि अतिरेक हो जाता है। संस्थानिक मजदूरी पर कृषि शक्ति की उपभोग आवश्यकता से अधिक कुल कृषि उत्पादन का अतिभाग कुल कृषि अतिरेक कहा जाता है। कुल कृषि अतिरेक की मात्रा विकास प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था में औद्योगिक क्षेत्र में भेजे गये श्रमिकों की संख्या पर निर्भर करती है। कुल कृषि अतिरेक को चित्र (C) में रेखा OX तथा TPP वक्र OCX के बीच अनुलम्ब दूरी से मापा गया है। पहली अवस्था मे जब NM श्रम को स्थानान्तरित किया जाता है जो कुल कृषि अतिरेक है, BC दूसरी अवस्था में जब ML तथा LK श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित किया जाता है तो कुल कृषि अतिरेक की DE तथा FG राशियां उत्पन्न होती है। कुल कृषि अतिरेक को कृषि मजदूरों के पुनः आवंटन द्वारा बाजार में छोड़े गए कृषि संसाधनों के रूप में देखना चाहिए। ऐसे संसाधनों को भूमिपति वर्ग की निवेश क्रियाओं अथवा और सरकारी कर नीति द्वारा निकालकर नई औद्योगिक वस्तुओं के लिए उपयोग किया जा सकता है।

इसके अलावा औसत कृषि अतिरेक भी होता है। औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित प्रति श्रमिक को उपलब्ध कुल कृषि अतिरेक ही औसत कृषि अतिरेक है। औसत कृषि अतिरेक वक्र को WASO वक्र के रूप में चित्र (B) में दर्शाया गया है। पहली अवस्था में औसत कृषि अतिरेक वक्र संस्थानिक मजदूरी के वक्र (WA) के साथ समरूप है। दूसरी अवस्था में जब (MK) श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में भेज दिया जाता है। तब औसत कृषि अतिरेक चित्र के भाग (B) में A से S तक गिरने लगता है, जबकि कुल कृषि अतिरेक चित्र (C) में BC से DE से FG तक बढता जाता है।

तीसरी अवस्था में औसत कृषि अतिरेक अधिक तेजी से चित्र (B) में S से 0 तक कम होता है तथा चित्र (C) में क्षेत्र FG से 0 तक सुकड़ने से कुल कृषि अतिरेक भी कम हो जाता है। औसत कृषि अतिरेक तथा कुल कृषि अतिरेक दोनों में कमी कृषि श्रमिकों की MPP संस्थानिक मजदूरी से अधिक बढ़ने के कारण है जो कि अन्ततः बचे हुए अतिरिक्त श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में ले जाती है।

फाई तथा रेनिस पहली अवस्था तथा दूसरी अवस्था के बीच की सीमा को 'दुलर्भता बिन्दु" कहते है, जब कृषि वस्तुओं की कमियाँ प्रारम्भ होती है जो कि औसत कृषि अतिरेक (WASO वक्र का AS भाग) के न्यूनतम संस्थानिक मजदूरी (NW) से नीचे गिरने द्वारा दिखाया गया है। द्वितीय अवस्था तथा तीसरी अवस्था के बीच की सीमा व्यापारिककरण बिन्दु है जो कि कृषि में संस्थानिक मजदूरी तथा MPP के बीच समानता के प्रारम्भ को प्रकट करता है। इस प्रकार लुइस का मोड़ बिन्दु फाई तथा रेनिस के दुर्लभता बिन्दु के समान होता है तथा व्यापारिककरण बिन्दु पर औद्योगिक मजदूरी की वृद्धि तीव्र होती है।

फाई तथा रेनिस प्रदर्शित करते है कि यदि कृषि उत्पादकता बढ़ती है तो दुलर्भता बिन्दु तथा व्यापारिककरण बिन्दु मिल जाते है। यह इसलिए होता है कि कृषि की उत्पादकता की वृद्धि के कारण MPP में वृद्धि उत्पादन को संस्थानिक मजदूरी के स्तर तक अधिक शीघ्रता से बढ़ने के योग्य बनाती है। चित्र (B) में वक्र MRU वक्र के ऊपर बाई तरफ स्थानान्तरित होते समझा जा सकता है। दूसरी ओर कुल भौतिक उत्पादकता में वृद्धि के साथ औसत कृषि अतिरेक में भी वृद्धि होती है। इसका अभिप्राय यह है कि चित्र (B) में वक्र ASO दाई ओर

ऊपर स्थानान्तरित हो जाता है यदि उत्पादकता में वृद्धि पर्याप्त है तो चित्र (B) में MRU तथा ASO वक्र ऊपर की ओर इस प्रकार से स्थानान्तरित हो जायेंगे कि दुर्लभता बिन्दु A तथा व्यापारिककरण बिन्दु R मिल जाएंगे तथा दूसरी अवस्था समाप्त हो जायेगी। जहाँ तक औद्योगिक क्षेत्र का प्रश्न है, कृषि उत्पादकता की वृद्धि का प्रभाव यह होता है कि मोड़ बिन्दु के बाद औद्योगिक पूर्ति वक्र को ऊपर उठा देगी। चित्र (A) में इसे WTW1 के नीचे दाई ओर बिन्दु T के नीचे दिखाया गया है।

फाई तथा रेनिस के अनुसार, द्वितीय अवस्था के समाप्त होने का आर्थिक महत्व यह है कि यह अर्थव्यवस्था को आत्मजनक वृद्धि में सरलता से चलने की योग्यता प्रदान करती है।

14.3.3. सन्तुलित विकास

फाई तथा रेनिस ने बताया है कि उनका कृषि विकास प्रारूप उत्कर्ष प्रक्रिया के दौरान की शर्तों को पूरा करता है। सन्तुलित वृद्धि में व्यवस्था में कृषि तथा औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में एक साथ निवेश आवश्यक है। यदि कोष का एक भाग कृषि क्षेत्र को आवंटित किया जाता है तो कृषि उत्पादकता मे वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार जब निवेश कोष का बचा हुआ भाग औद्योगिक क्षेत्र को आवंटित किया जाता है। तो औद्योगिक माँग भी बढ़ जाती है। सन्तुलित वृद्धि पथ के कारण कृषि क्षेत्र की अतिरेक श्रम शक्ति औद्योगिक क्षेत्र द्वारा काम मे लगा ली जाती है। इस प्रकार, जब काल पर्यन्त निवेश कोष दोनों क्षेत्रों को लगातार आवंटित किये जाते हैं, तो अर्थव्यवस्था सन्तुलित वृद्धि पथ पर चलेगी, किन्तु प्रायः यह संभावना रहती है कि समय-समय पर वास्तविक वृद्धि पथ सन्तुलित पथ से विचलित हो जाता है। फिर भी इस प्रकार का विचलन बराबर करने वाली सन्तुलन शक्तियां इसे सन्तुलित वृद्धि पर लाने की प्रवृत्ति रखती है। वास्तव में, यह पथ सन्तुलित वृद्धि पथ के इर्द-गिर्द घूमने की सम्भावना रखता है। यदि औद्योगिक क्षेत्र में अति निवेश के फलस्वरूप श्रम की माँग बढ जाती है। जिसके परिणामस्वरूप कृषि वस्तुओं मे कमी आएगी तथा औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार शर्तों में गिरावट आएगी तथा इस क्षेत्र मे मजदूरी की दर मे बढ़ोत्तरी होगी। इससे औद्योगिक क्षेत्र में निवेश हतोत्साहित होगा तथा कृषि क्षेत्र में निवेश प्रोत्साहित होगा। इसके द्वारा वास्तविक पथ सन्तुलित वृद्धि पथ के स्तर पर आ जायेगा।

14.3.4. फाई-रेनिस के कृषि विकास प्रारूप की आलोचनाएं

फाई तथा रेनिस का कृषि विकास प्रारूप लेविस के कृषि विकास प्रारूप का एक सुधरा हुआ रूप हैं लेविस का कृषि विकास प्रारूप कृषि क्षेत्र के विकास को ध्यान में न रखते हुए केवल औद्योगिक क्षेत्र पर ही केन्द्रित रहता है। जबकि फाई तथा रेनिस का कृषि विकास प्रारूप आर्थिक विकास को प्रारम्भ तथा तीव्र करने में दोनों क्षेत्रों के परस्पर प्रभाव को दर्शाता है। फिर लेविस के मोड़ बिन्दु को समझाने का फाई-रेनिस का ढंग अधिक वास्तविक है। इस सिद्धान्त की मुख्य श्रेष्ठता यह है कि यह अल्पविकसित देशों में पूँजी संचय के लिए कृषि वस्तुओं के महत्व को प्रकट करता है। इन श्रेष्ठता के बावजूद यह फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारूप भी आलोचना से अछूता नहीं है, जिनकी नीचे विवेचना की गई है

1. **भूमि की पूर्ति पर स्थिर न होना**- फाई तथा रेनिस यह धारणा लेकर चलते हैं कि विकास प्रक्रिया के दौरान भूमि की पूर्ति स्थिर रहती है। परन्तु विभिन्न अध्ययनों यह पाया गया है कि भूमि की पूर्ति स्थिर नहीं रहती है।
2. **संस्थानिक मजदूरी सीमान्त भौतिक उत्पादकता से अधिक नही होती हैं** - इस सिद्धान्त के अनुसार संस्थानिक मजदूरी स्थिर रहती है और वह सीमान्त भौतिक उत्पादकता से अधिक होती है। फाई-रेनिस की पहली एवं दूसरी अवस्था में संस्थानिक मजदूरी स्थिर होती है तथा MPP से ऊँची होती है। इस

मान्यता के पक्ष में कोई आनुभाविक प्रमाण नहीं है। वास्तविकता यह है कि श्रम अतिरेक अल्पविकसित देशों में कृषि श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी सीमान्त भौतिक उत्पादकता से काफी कम होती है।

3. **कृषि क्षेत्र में संस्थानिक मजदूरी का स्थिर न होना**- इस सिद्धान्त की धारणा है कि कृषि उत्पादकता मे वृद्धि होने के बावजूद पहली दो अवस्थाओं में संस्थानिक मजदूरी स्थिर रहती है। यह अत्यधिक अवास्तविक स्थिति है क्योंकि कृषि उत्पादकता में सामान्य वृद्धि के कारण फार्म मजदूरी का बढ़ना सुनिश्चित है। उदाहरणार्थ, पंजाब में हरित-क्रान्ति (1967-72) के दौरान किये गय फार्म सर्वेक्षण से यह प्रमाणित होता है कि विभिन्न कृषि वर्गों के लिए श्रमिकों की दैनिक वास्तविक मजदूरी में परिवर्तन हो गया था तथा यह बढ़ गयी थी।
4. **बन्द मॉडल**-यह विश्लेषण बंद अर्थव्यवस्था की धारणा पर आधारित है जहाँ विदेशी व्यापार नही होता। यह मान्यता इस कारण से अयथार्थ है क्योंकि अल्पविकसित देश बन्द अर्थव्यवस्थायें न होकर खुली अर्थव्यवस्थायें है जहाँ कमी आने पर कृषि वस्तुओं को आयतित किया जाता है।
5. **कृषि का व्यापारिककरण स्फीति को उत्पन्न करता है**- इस सिद्धान्त के अनुसार, जब कृषि क्षेत्र तृतीय अवस्था में प्रवेश करता है तो कृषि का व्यापारिकरण हो जाता है किन्तु अर्थव्यवस्था की सरल आत्मजनक वृद्धि की ओर जाने की संभावनायें नही रहती क्योंकि स्फीतिकारी दबाव प्रारम्भ हो जाते है। जब अनेक श्रमिक औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरित हो जाते है तो कृषि क्षेत्र श्रमिकों की कमी महसूस करता है। इसी दौरान संस्थानिक मजदूरी श्रमिकों की सीमान्त भौतिक उत्पादकता के बराबर होती है तथा इस प्रकार कृषि वस्तुओं की कमी हो जाती है। ये सभी तथ्य अर्थव्यवस्था मे स्फीतिकारी दबाव पैदा करते है।
6. **सीमान्त भौतिक उत्पादकता शून्य नही होती है**- फाई-रेनिस के कृषि विकास प्रारूप में कुछ श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है परन्तु श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता कभी शून्य नही होती है।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारूप श्रम अतिरेक देशों के आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण प्रारूप तैयार करता है। यह सिद्धान्त अल्पविकसित देशों के कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों के परस्पर प्रभावों की विकास प्रक्रिया का उत्कर्ष से आत्मजनक वृद्धि तक व्यवस्थित ढंग से विश्लेषण भी करता है।

14.4 बहुविकल्पीय प्रश्न

1. फाई-रेनिस का सिद्धान्त कितने क्षेत्रों सम्बन्धित है?
   (i) दो क्षेत्र
   (ii) तीन क्षेत्र
   (iii) चार क्षेत्र
   (iv) उपर्युक्त में से कोई नही
2. फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारूप कितनी अवस्थाओं का सिद्धान्त है?
   (i) एक
   (ii) दो
   (iii) तीन
   (iv) चार
3. अदृश्य बेरोजगार किसे माना जाता है?
   (i) जिसकी सीमान्त उत्पादकता एक के बराबर होती है।

(ii) जिसकी सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।

(iii) जिसकी सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक होती है।

(iv) जिसकी सीमान्त उत्पादकता धनात्मक होती है।

4. फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारूप किसका फलन है?

(i) पूँजी एवं श्रम का

(ii) ब्याज एवं लाभ का

(iii) भूमि एवं पूंजी का

(iv) भूमि एवं श्रम का

5. संस्थानिक मजदूरी किस क्षेत्र की मजदूरी से सम्बन्धित है?

(i) कृषि क्षेत्र

(ii) उद्योग क्षेत्र

(iii) सेवा क्षेत्र

(iv) उपर्युक्त में से कोई नही

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संस्थानिक मजदूरी का अर्थ लिखिये।
2. फाई-रेनिस के कृषि विकास प्रारूप की मान्यतायें बताइए।
3. औसत कृषि अतिरेक एवं कुल कृषि अतिरेक में अन्तर समझाइए।
4. बन्द अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते है?
5. वास्तविक मजदूरी का अर्थ बताइए।

14.5 सारांश

आप इस इकाई के अध्ययन के बाद समझ गये होंगे कि फाई-रेनिस का सिद्धान्त वास्तव में लेविस के श्रम अतिरेक सिद्धान्त के ऊपर एक सुधार है। फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारूप तीन अवस्थाओं में वर्गीकृत है। प्रथम चरण में कृषि क्षेत्र के ऐसे श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानान्तरित करता है जिनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य है जो कृषि क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगार है। इससे कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन नही होगा। दूसरे चरण में फाई-रेनिस ऐसे श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानान्तरित करने की बात करते है। जो उद्योग क्षेत्र की संस्थानिक मजदूरी से भी कम प्राप्त कर रहे है। इसका प्रमुख प्रभाव यह होता हैं कि कृषि क्षेत्र में उत्पादन कम होने से तथा औद्योगिक क्षेत्र की व्यापार की शर्ते प्रतिकूल होने के कारण औद्योगिक मजदूरी में वृद्धि हो जायेगी जो संस्थानिक मजदूरी से अधिक होगी।

फाई-रेनिस के तीसरे चरण में कृषि श्रमिक धीरे-धीरे प्रगति करते हुए न सिर्फ संस्थानिक मजदूरी के बराबर उत्पादन करना शुरू कर देते है बल्कि संस्थानिक मजदूरी से भी अधिक प्राप्त करने लगते है। इसे ही फाई-रेनिस ने आत्म जनक वृद्वि की शुरूआत कहा हैं। आप समझ गये होगें कि फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारूप किस प्रकार संक्रमण प्रक्रिया से गुजरते हुए अपने क्षेत्र की स्वयं वृद्धि हेतु अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करता है।

14.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर- (i) दो क्षेत्र (ii) तीन (iii) जिसकी सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है (iv) भूमि एवं श्रम (v) उद्योग क्षेत्र

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन एम०एल, विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा०लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस0एन0 एवं एस0के0 लाल, आर्थिक विकास तथा आयोजन, शिव पबिलशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- गुप्ता पी0के0, कृषि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा०लि0, नई दिल्ली।

14.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. फाई-रेनिस के कृषि विकास प्रारूप सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
2. फाई-रेनिस का कृषि विकास प्रारूप, लेविस के कृषि विकास प्रारूप से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
3. फाई-रेनिस के कृषि विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यतायें क्या है? इस सिद्धान्त के मोड़ बिन्दु को भी समझाइये।

इकाई 15- मिलर का कृषि विकास प्रारुप
(Miller's Agricultural Development Model)

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मिलर का कृषि विकास प्रारूप
15.4 विकास के सोपान
15.4.1 पारंपरिक खेती
15.4.2. प्रौद्योगिक रूप से गतिशील खेती व कम पूँजी पर आधारित प्रौद्योगिकी
15.4.3.प्रौद्योगिक रूप से गतिशील खेती व अधिक पूँजी पर आधारित प्रौद्योगिकी
15.5 मिलर के कृषि विकास प्रारूप सिद्वांत का आलोचनाएं
15.6 अभ्यास प्रश्न
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 अभ्यास प्रश्न
15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में फाई-रेनिस के कृषि विकास प्रारूप का विस्तार से अध्ययन किया। इस इकाई में हम मिलर के कृषि विकास प्रारूप का अध्ययन करेंगे। मिलर ने कृषि क्षेत्र को अर्थव्यवस्था की रीढ़ बताया है। आप जानते है कि प्रकृतिवादियों ने कृषि एवं भूमि को सर्वाधिक महत्व दिया था। इसी प्रकार मिलर भी इसी तथ्य को स्वीकारते है कि सभी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थओं में सम्पूर्ण विकास की प्रक्रिया कृषि के विकास से ही प्रारम्भ होती है। वह तो यहाँ तक मानते है कि विकास के लिए संसाधनों का प्रवाह कृषि क्षेत्र से गैर कृषि क्षेत्र की ओर होना चाहिए। गैर कृषि क्षेत्र के विस्तार के लिए कृषि क्षेत्र से पूँजी, श्रम और विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। इसके अलावा गैर कृषि क्षेत्र में लगे श्रमिकों के लिए खाद्यान्न और कच्चा माल भी कृषि से ही मिलता है। इसलिए कृषि क्षेत्र का विकास अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार मिलर का कृषि विकास प्रारूप तीन चरणों से होकर गुजरता हुआ पारंपरिक खेती से प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की ओर जाता है। इस सिद्धान्त के अध्ययन के बाद आप यह समझ सकेंगे कि मिलर ने किन विधियों का वर्णन किया है जिसके द्वारा परम्परागत कृषि को आधुनिक कृषि में हस्तांतरित किया जाता है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल होंगे कि

- ✓ कृषि ही अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है।
- ✓ पारंपरिक खेती की अवधारणा से परिचित होंगे।
- ✓ यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार संसाधनों का प्रवाह कृषि क्षेत्र से गैर कृषि की ओर होता है।
- ✓ कृषि विकास प्रारूप के तीन चरणों का अध्ययन करेंगे।
- ✓ परम्परागत कृषि आधुनिक कृषि में हस्तान्तरण की प्रक्रिया की समीक्षा कर सकेंगे।

15.3 मिलर का कृषि विकास प्रारूप

मिलर की पुस्तक "कृषि विकास का अर्थशास्त्र" (The Economics of Agricultural Development) 1966 मे प्रकाशित हुई जबकि शुल्ज की पुस्तक परम्परागत कृषि का रूपान्तरण दो साल पहले प्रकाशित हुई थी। अपनी पुस्तक में मिलर ने उन तौर तरीकों का वर्णन किया जिनके द्वारा परम्परागत कृषि को आधुनिक खेती में हस्तांतरित किया जाता है। इस प्रकार कुछ हद तक वह शुल्ज के विचारों से सहमत है। फिर भी मिलर का सिद्धांत अधिक विस्तृत एवं उचित है।

कृषि के विकास में मिलर का महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक योगदान है। मिलर की मान्यता है कि सभी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में सम्पूर्ण विकास की प्रक्रिया कृषि के विकास से ही प्रारम्भ होती है। उसके अनुसार आर्थिक विकास के लिए संसाधनों का प्रवाह कृषि के विकास से प्रारम्भ होता है। जब कृषि क्षेत्र विकास के सोपान पर चढ जाता है तो आर्थिक विकास के लिए संसाधनों का प्रवाह कृषि क्षेत्र से गैर कृषि क्षेत्र की ओर होना लगता हैं। गैर कृषि क्षेत्र के विस्तार के लिए कृषि क्षेत्र से पूंजी, श्रम और विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। इसके अलावा गैर-कृषि क्षेत्र में लगे श्रमिक के लिए खाद्यान्न और कच्चा माल भी कृषि से मिलता है। इसके लिए कृषि क्षेत्र का विकास अत्यन्त आवश्यक है।

15.4 विकास के सोपान

मिलर ने कृषि के विकास के लिए खेती की तीन चरणों में विभाजित किया

15.4.1. पारंपरिक खेती

15.4.2. प्रौद्योगिक रूप से गतिशील खेती व कम पूंजी पर आधारित प्रौद्योगिकी

15.4.3. प्रौद्योगिक रूप से गतिशील खेती व अधिक पूंजी पर आधारित प्रौद्योगिकी

15.4.1. पारंपरिक खेती- पारंपरिक खेती की मिलर की परिभाषा शुल्ज द्वारा दी गयी परिभाषा से भिन्न है। उनके अनुसार पारंपरिक कृषि पिछड़ी और श्रम पर आधारित होती है जिसमें पूंजी कच्चे तौर पर इस्तेमाल होती है। मिलर के अनुसार पारंपरिक खेती में अलग-अलग देशों में सामाजिक, आर्थिक और भौतिक कारणों की विभिन्नता के बावजूद कुछ समानताएं पायी जाती है। ज्यादातर खेतों में किसान अपने परिवार के श्रमिकों द्वारा आनाज पैदा करते है। पूंजी भी किसान अपने स्रोतों से लगाते है। खेतों का आकार छोटा होता है। उच्च आय वाले देशों की तुलना में इन देशों में खेतों की उत्पादकता और आय कम होती है।

मिलर के अनुसार भूमि और श्रम इस खेती के प्रमुख कारक होते है। पूंजी कच्चे रूप में उपस्थित रहती है। चूंकि भूमि और पूंजी सीमित होते हैं, इसलिए अतिरिक्त श्रम ही द्धि का साधन होता है। श्रम के घटते प्रतिफल नियम के अनसार प्रति व्यक्ति आय और उत्पादकता में गिरावट आती है क्योंकि ज्यादा उपज के लिए अधिक से अधिक श्रम की खपत होती है। मिलर मानते हैं कि पारंपरिक खेती में कुछ गैर-पारंपरिक साधन जैसे उर्वरक का इस्तेमाल किया गया है। लेकिन उनका मानना है कि इनके इस्तेमाल से कुल उत्पादन पर ज्यादा प्रभाव नही पड़ा है क्योंकि अन्य पूरक साधन उर्वरक के साथ इस्तेमाल नहीं किए जाते। मिलर का मानना है कि पारंपरिक खेती में अल्परोजगार अधिक मात्रा में पाया जाता है लेकिन यह जरूरी नहीं कि ऐसा शून्य श्रम के कारण हो। मुख्यतः यह पारंपरिक खेती वाले समाज में भूमि के असमान वितरण के कारण होता है। छोटे खेतों में अल्प रोजगार शून्य श्रम के कारण हो सकता है जबकि बड़े खेतों पर इसका कारण अलग होता है। मिलर के अनुसार पारंपरिक कृषि में उपभोग का तरीका काफी कट्टर होता आय है।

मिलर ने ऊपरलिखित वर्णन की व्याख्या निम्न विश्लेषण के द्वारा की जा सकती है

(i) उत्पादन सभावना वक्र: मिलर ने इस उत्पादन संभावना वक्र का प्रयोग आगतोंऔर निर्गतों के संबंध में किया है। कुल उत्पादन को कृषि तथा गैर कृषि उत्पाद के मूल्यों के रूप में व्यक्त किया गया है। जैसे घटते सीमान्त प्रतिफल का नियम कृषि में प्रारम्भ से ही लागू हो जाता है तो कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है और अपनी उच्चतन सीमा पर पहुंच जाता है। जहाँ श्रम की सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है। यह सर्वभौमिक सत्य है चाहे खेत का आकार छोटा हो या बड़ा। केवल मात्र अन्तर यह है कि खेत का आकार बड़ा होने से उत्पादन संभावना वक्र भी ऊंचा होगा। सब खेतों के संभावना वक्रों को नीचे रेखाचित्र में दर्शाया गया है। सभी उत्पादन वक्र A से लेकर G तक, C बिन्दु से आरम्भ होते है और मूल बिन्दु 0 की ओर अवतल होते हैं। निम्न चित्र में A उत्पादन संभावना वक्र सबसे नीचे है जो यह बताता है कि खेत का आकार छोटा है जबकि G उत्पादन संभावना वक्र सबसे ऊपर है जो यह बताता है कि खेत का आकार भी बड़ा है। A वक्र पारंपरिक कृषि का द्योतक है क्योंकि इसमें निम्न स्तरीय तकनीकी का प्रयोग हो रहा है। इसके विपरीत G उत्पादन संभावना वक्र उच्च स्तरीय तकनीक को बताता है।

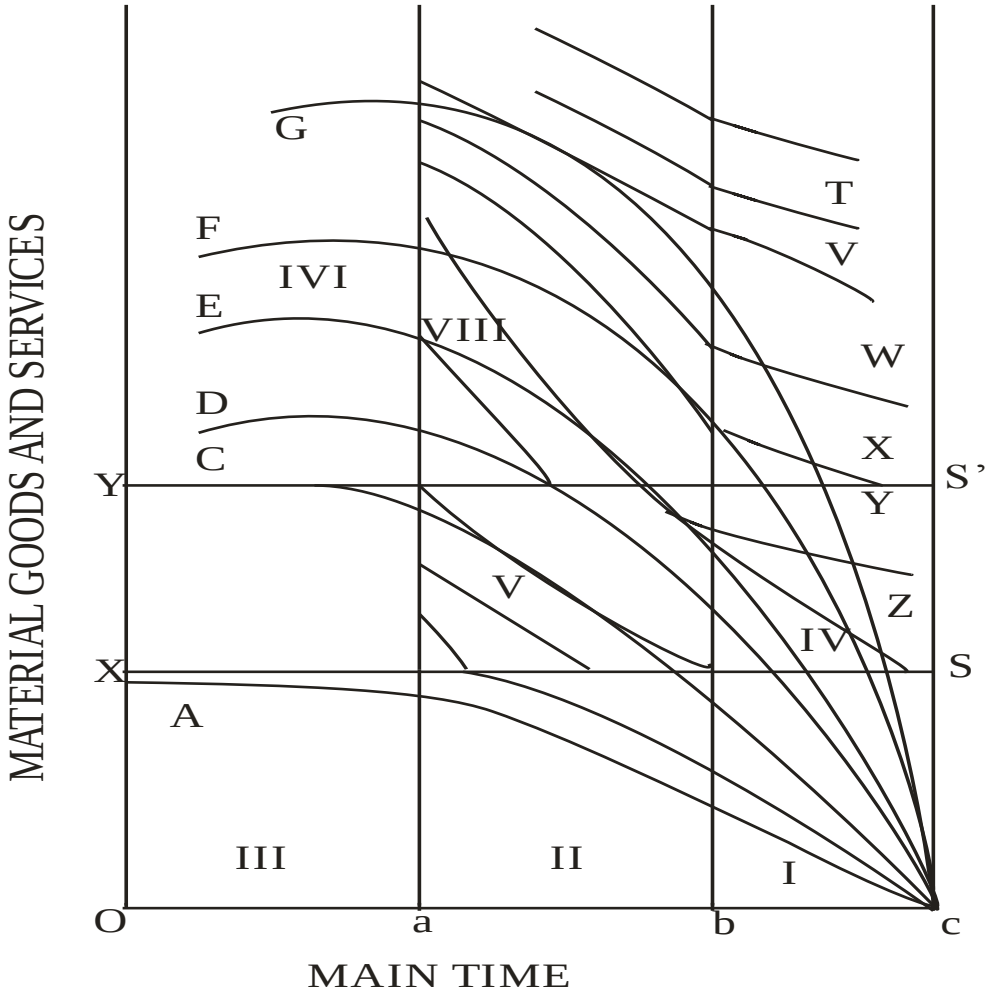

चित्र में X -अक्ष पर कार्य दिवस को तथा Y -अक्ष पर भौतिक वस्तुओं तथा सेवाओं को प्रदर्शित किया गया हैं। OX अक्ष पर O बिन्दु का अभिप्राय है पूर्ण कार्य तथा शून्य आराम जबकि C बिन्दु सम्पूर्ण आराम तथा शून्य कार्य को दर्शाते है अर्थात् कार्य की तुलना मे आवकाश पर रहना अधिक पसन्द करते है।

(ii) समसन्तुष्टि वक्र - समसन्तुष्टि वक्र कार्य दिवस सन्तुष्टि वक्र भौतिक वस्तुओं तथा सेवाओं एवं कार्य दिवस के उन विभिन्न संयोगों को दर्शातें है जो किसान को एक समान सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। वस्तुओं तथा सेवाओं की अतिरिक्त इकाईयां पारंपरिक खेती में कम सन्तष्टि प्रदान करती हैं तथा काम की अतिरिक्त इकाई को भी भौतिक वस्तुओं तथा सेवाओं के साथ जोड़ना होगा यदि सन्तुष्टि के स्तर को समान रखना है। T से Z तक समसन्तुष्टि वक्र है जो मूल बिन्दु की ओर उत्तल होते है। प्रत्येक सम सन्तुष्टि वक्र कार्य दिवस एवं वस्तुओं तथा सेवाओं के समान अनुपात को दिखाता है। अनेक समसन्तुष्टि वक्र के होने का प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक समसन्तुष्टि वक्र खेत के आकार अलग-अलग तकनीकी स्तर द्वारा कार्य दिवस एवं सेवाओं के प्रयोग से प्राप्त होने वाले अलग-अलग उत्पादन स्तर को बताता है। T से लेकर Z तक सभी वक्रों को मिलाकर समसन्तुष्टि रेखा मानचित्र बनता है। चित्र की व्याख्या : A तथा B उत्पादन संभावना वक्र पारंपरिक खेती के संभावना वक्र है। मिलर के अनुसार पारंपरिक खेत में खेतों को मुख्यतः दो भागों में बांटा जाता है। एक वे खेत जो केवल जीवन निर्वाह आय प्रदान करते है तथा दूसरे वे खेत जो जीवन निर्वाह से अधिक आय प्रदान करते है। जीवन निर्वाह आय के अन्तर्गत पारिवारिक श्रम का प्रयोग तब तक किया जाता रहेगा जब तक श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य न हो जाए। इस स्थिति में रोजगार अधिक मात्रा में पाया जाता है जबकि बड़े खेतों में सन्तुलन का स्तर वहाँ पर निर्धारित होता है जहाँ पर उत्पादन

संभावना वक्र समसंतुष्टि रेखा मानचित्र के किसी एक वक्र को छूता हो। प्रत्येक किसान का यह उद्देश्य होता है कि वह ऊँचे से ऊँचे संतुष्टि वक्र पर पहुँचने की कोशिश करता है। मिलर ने OX तक उन उत्पादन संभावना वक्रों को रखा है जो केवल जीवन निर्वाह आय प्रदान करते है जबकि XY में उन उत्पादन संभावना वक्रों को रखा है जो जीवन निर्वाह से अधिक आय प्रदान करते है। मिलर के इस चित्र में हमें तीन प्रकार के आय-स्तर देखने को मिलते है

(अ) आय का वह स्तर जो केवल जीवन-निर्वाह की वस्तुएं प्रदान करता है जैसे- रोटी, कपड़ा और मकान और अन्य आवश्यक वस्तुएं। रेखाचित्र में OX आय-स्तर जीवन निर्वाह आय का स्तर है। इसमें पारिवारिक श्रम का उपयोग होता है।

(ब) दूसरा सांस्कृतिक जीवन निर्वाह स्तर है। चित्र में Y अक्ष पर XY स्तर इस आय स्तर की उच्चतम सीमा है। मिलर के अनुसार पारंपरिक खेती में Y स्तर इस ऊंचे आय स्तर को व्यक्त करता है जिसमें पारंपरिक आवश्यकताओं को आसानी से पूरा किया जा सकता है।

(स) तीसरा गत्यात्मक समाज के लिए आय स्तर Y से अधिक आय स्तर का संबंध

गत्यात्मक समाज के साथ है जिसमें रहन-सहन के स्तर में निरंतर परिवर्तन आता रहता है। इस आधार पर मिलर ने यह सुझाव दिया है कि पारंपरिक खेती में श्रम का उपयोग आय के Y स्तर तक ही ठीक होगा।

यहाँ उल्लेखनीय है कि मिलर के सिद्धान्त में कृषि पदार्थों का पूर्ति वक्र पीछे की ओर मुड़ी हुयी रेखा होती है। यह इसलिए होता है कि आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव विपरीत दिशाओं में कार्य करते हैं। कृषि कीमतों में वृद्धि से किसान अधिक उत्पादन करने के लिए प्रेरित होता है और वह अधिक मेहनत करता है। यह धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव

है।

15.4.2. प्रौद्योगिक रूप से गतिशील खेती व कम पूंजी पर आधारित प्रौद्योगिकी : मिलर के अनुसार जब कृषि इस चरण में पहुंच जाती है तब वह गैर कृषि क्षेत्र के विकास के लिए संसाधन उपलब्ध करवा सकती है। इस चरण में नए साधनों का प्रयोग होता है, जिनकी सीमान्त उत्पादकता अधिक हो। नए साधनों में पूंजी का अधिक प्रयोग नहीं होता है और श्रम से प्रतियोगिता करने की बजाय ये उसके पूरक की तरह कार्य करते हैं। इस अवस्था में भी कृषि आय का प्रमुख स्रोत बनी रहती है और साथ-साथ जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि उत्पादों की मांग लगातार बढ़ती जाती हैं। गैर कृषि क्षेत्र की धीमी प्रगति के कारण खेतो का आकार छोटा ही रहता है जबकि सस्ता श्रम उपलब्ध होने के कारण कृषि क्षेत्र में मशीनरी का प्रयोग न के बराबर होता है। मिलर के अनुसार, पारंपरिक कृषि के विकास के इस दौरे में आने के लिए कुछ आधारभूत परिवर्तन आवश्यक हैं। विकास के लिए जरूरी प्रोत्साहन सृजित करने के लिए संस्थागत परिवर्तन अनिवार्य हैं। मिलर का दृढ़विश्वास है कि भूमि सुधारों जैसे संस्थागत परिवर्तनों से किसान को अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। इसके अतिरिक्त, संस्थागत सुधारों के बाद ही प्रौद्योगिकीय परिवर्तन प्रभावी होंगे।

इस चरण में शोध कार्यों को बढ़ावा देकर कृषि की अवस्था को सुधारा जा सकता है। इसके अतिरिक्त नये और संशोधित भौतिक साधनों की आपूर्ति से भी खेती की प्रकृति सुधारी जा सकती है। उदाहरण के तौर पर बीजों और फसलों की उन्नत किस्में, बेहतर पशु चारा, उर्वरकों, कीटनाशकों आदि की मदद से कृषि को उन्नत बनाया जा सकता है। मिलर का विश्वास है कि इनमें से कुछ बीजों को बाहर से आयात करना पड़ता है क्योंकि उनके देश में उत्पादन और विकास के लिए पूरा तंत्र विकसित करना होगा। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई कदम उठाए जा सकते हैं जैसे- प्रेरणा प्रदान करने के लिए संस्थानों को बढ़ावा देना, शोधकार्यों को बढ़ाना, नई तथा सुधरी हुई

भौतिक आगतों की पूर्ति, कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए संस्थानों की स्थापना, किसानों की मदद के लिए संचार के साधनों का विकास आदि।

15.4.3. प्रौद्योगिक रूप से गतिशील खेती व अधिक पूंजी पर आधारित प्रौद्योगिकी: मिलर का मानना है कि जब कृषि का विकास दूसरे चरण में पहुंच जाता है तो गैर-कृषि क्षेत्र को भी विकसित होने का मौका मिलेगा। कुछ समय पश्चात् दोनों क्षेत्र परस्पर सहयोग से विकसित होने लगेंगे और कृषि स्वतः अपने विकास के तीसरे दौर में पहुंच जाएगी। यानि उसमें उच्च पूँजी वाली प्रौद्योगिकी का प्रयोग होने लगेगा। कृषि क्षेत्र में मशीनरी का अधिक प्रयोग होने से खेतिहरी श्रमिकों को गैर-कृषि क्षेत्र में स्थानांतरित किया जा सकेगा। उन्नत कृषि क्षेत्र में खपने वाली मशीनरी गैर-कृषि क्षेत्र में बनने से उसका भी विकास होगा। विकसित कृषि क्षेत्र में पूंजी निर्माण निरंतर बढ़ता रहेगा। इसके साथ गैर-कृषि क्षेत्र अपनी बचत को निवेश के लिए इस्तेमाल करेगा तो उसे कृषि क्षेत्र से पूँजी की आवश्यकता नहीं होगी।

मिलर के अनुसार कृषि क्षेत्र के विकास की ये तीनों अवस्थाएं उपरोक्त क्रम में ही अमल में लाई जानी चाहिए। इससे संसाधनों का लम्बे समय तक ठीक प्रयोग होता रहेगा। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह अधिक उचित है। केवल संयुक्त-अमेरिका में तीसरी अवस्था पहले आ गई थी क्योंकि औद्योगिक विकास के कारण मशीनें आसानी से प्राप्त हुयी थीं लेकिन बाकी चीजें शीघ्र प्राप्त नहीं हो सकीं।

15.5 मिलर के कृषि विकास प्रारूप सिद्वांत का आलोचनाएं

अन्य सिद्वांतों की भांति मिलर का कृषि विकास प्रारूप आलोचना रहित नहीं है। इस मॉडल की प्रमुख आलोचनाएं निम्नलिखित है:

1. साधारण परिभाषा: मिलर की पारंपरिक खेती की परिभाषा अत्याधिक साधारण है। मिलर के अनुसार पारंपरिक खेती का संबंध पिछड़ी खेती से होता है जहां श्रम पर उत्पादन का एक मुख्य साधन होता है।

2. साधनों का पूर्ण आवंटन: शुल्ज की भांति मिलर कृषि क्षेत्र में संसाधनों का आबंटन पूर्ण मानते है। वह यह भी मानते हैं कि यदि इस क्षेत्र से श्रम को निकाल लिया जाये तो निःसंदेह कृषि उत्पादन में भारी गिरावट आयेगी। परन्तु साथ-साथ वह इस बात से भी इन्कार नही करते कि कृषि क्षेत्र में छिपी हुई बेरोजगारी विद्यमान होती है। तथ्य यह है छिपी हुई बेरोजगारी जनसंख्या आधिक्य वाले देशों की एक सामान्य विशेषता है।

3. संस्थागत परिवर्तनों पर अधिक बल: मिलर का यह सुझाव है कि पारंपरिक खेती का रूपांतर करने के लिए संस्थागत परिवर्तन जैसे: कृषि सुधार, साख सुविधाएं, सेवाओं का विस्तार, विपणन सुधार आदि अनिवार्य हैं। हालांकि मिलर ने सरकारी हस्तक्षेप की अवहेलना की परन्तु सरकार का सहयोग धनात्मक होना चाहिए।

4. श्रम की भूमिका: मिलर के अनुसार विकास की प्रक्रिया में श्रमिकों तथा अन्य उपकरणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उदाहरण के लिए पारंपरिक खेती में उत्पादन में वृद्धि तब तक होती है जब तक श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता शून्य से अधिक होती है। परन्तु गत्यात्मक कृषि में श्रमिकों का प्रतिस्थापन्न आगतों से किया जाता है।

मिलर का सिद्धांत ज्यादा व्यावहारिक और सही लगता है। कुछ विषयों पर वह शुल्ज से सहमति अवश्य दर्शातें हैं लेकिन शून्य श्रम के मामले में उनकी राय भिन्न है। सभी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के बारे में उपलब्ध ऐतिहासिक जानकारी से मिलर के तीन चरणीय विकास सिद्धांत की पुष्टि होती है।

15.6 अभ्यास प्रश्न

1. मिलर की पुस्तक 'कृषि विकास का अर्थशास्त्र' किस वर्ष प्रकाशित हुई थी?

(i) 1965
(ii) 1966
(iii) 1967
(iv) 1968

2. मिलर के कृषि विकास प्रारूप को कितने चरणों में बांटा गया है
(i) तीन
(ii) चार
(iii) पाँच
(iv) इनमें से कोई नही

3. मिलर ने अपने सिद्धान्त में सर्वाधिक महत्व निम्न में से किसको दिया है
(i) उद्योग क्षेत्र
(ii) सेवा क्षेत्र
(iii) कृषि क्षेत्र
(iv) सभी क्षेत्रों को

4. निम्न में से कौन-सा चरण मिलर के सिद्धान्त में नहीं है
(i) पारंपरिक कृषि
(i) प्रौद्योगिक रूप से गतिशील कृषि एवं कम पूंजी पर आधारित प्रौद्योगिकी
(iii) प्रौद्योगिक रूप से गतिशील कृषि एवं अधिक पूंजी पर आधारित प्रौद्योगिकी
(iv) सेवा क्षेत्र

5. क्या भारत कृषि क्षेत्र के विकास की तृतीय अवस्था में पहुंच चुका है
(i) हाँ
(ii) नही
(iii) कुछ निश्चित नही

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पारंपरिक खेती की अवधारणा को समझाइए।
2. कृषि के अन्तर्गत किये जाने वाले संस्थागत सुधार कौन-कौन से है?
3. 'प्रौद्योगिकी कृषि पर निर्भर है' मिलर के दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
4. 'शोध कार्यों से कृषि अवस्था को सुधारा जा सकता है' स्पष्ट कीजिए।

15.7 सारांश

प्रारूप में अर्थव्यवस्था के विकास की कहानी कृषि के विकास से ही प्रारम्भ की है। मिलर दृढता से स्वीकार करते हैं कि कृषि विकास के प्रथम चरण के बाद कृषि क्षेत्र इतना सक्षम हो जाता है कि वह गैर कृषि क्षेत्र के विकास के लिए संसाधन उपलब्ध करवा सकता है। जिसके परिणामस्वरूप संस्थागत सुधार, शोध कार्य, प्रौद्योगिकीय परिवर्तन आदि होने लगते है। कृषि के साथ-साथ उद्योग क्षेत्र भी विकसित होने लगता है। अर्थव्यवस्था दूसरे चरण से तीसरे चरण में पहुँच जाती है। विकसित कृषि क्षेत्र में पूँजी-निर्माण निरन्तर बढ़ता जाता है। अंततः दोनों क्षेत्र विकास के नये पायदान पर पहुँच जाते है। इस सिद्धान्त के अध्ययन के बाद आप मिलर के कृषि विकास प्रारूप का विश्लेषण तीन चरणों के अन्तर्गत आसानी से कर सकेंगे।

15.8 शब्दावली

- **उत्पादन सभावना वक्र**-दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दिखाने वाला वक्र
- **समसंतुष्टि**- समान संतुष्टि
- **संस्थागत परिवर्तन**- पुरातन प्रवृत्तियों में होने वाला परिवर्तन
- **पारम्परिक खेती**-पुरानी विधियों पर आधारित कृषि
- **निर्वाह आय स्तर**-न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राप्त होने वाली आय

15.9 अभ्यास प्रश्न उत्तर-

(i) 1966 (ii) तीन (iii)कृषि क्षेत्र (iv) सेवा क्षेत्र (v) नहीं

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन एम0एल, विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा०लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस0एन0 एवं एस0के0 लाल, आर्थिक विकास तथा आयोजन, शिव पबिलशिंगहाऊस, इलाहाबाद।
- गुप्ता पी0के0, कृषि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा०लि0, नई दिल्ली।

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मिलर के कृषि विकास प्राप्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. मिलर द्वारा बतायी गयी कृषि की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए। इसकी प्रमुख सीमायें क्या है?
3. मिलर द्वारा कृषि विकास प्रारूप की दूसरी अवस्था में पायी जाने वाली कीमत अनिश्चितता का वर्णन कीजिए।

इकाई 16- शुट्ज और बोसरेज का कृषि विकास प्रारुप
(Schultz and Boserup Model of Agricultural Development)

16.1 प्रस्तवना
16.2 उद्देश्य
16.3 शुल्ज का कृषि विकास प्रारूप
16.3.1 पारंपरिक कृषि की अवधारणा
16.3.2 पारंपरिक कृषि की विशेषतायें
16.3.3 पारंपरिक कृषि एवं आर्थिक विकास
16.4 रूपान्तरण की प्रक्रिया
16.4.1 नये साधनों की पूर्ति
16.4.2 नये साधनों की मांग
16.5 शुल्ज के कृषि विकास प्रारूप की आलोचनायें
16.6 बोसरप का कृषि विकास प्रारूप
16.6.1 बोसरप का दृष्टिकोण एवं माल्थस
16.6.2 कृषि विकास प्रारूप की अवस्थाएं
16.6.3 जनसंख्या वृद्धि एवं अन्य परिवर्तन
16.6.4 बोसरप के कृषि विकास प्रारूप सिद्वांत की आलोचनायें
16.7 अभ्यास प्रश्न
16.8 सारांश
16.9 शब्दावली
16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.12 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तवना

पिछली इकाई में मिलर के कृषि विकास प्रारूप का विस्तार से अध्ययन किया। इस इकाई में हम शुल्ज एवं बोसरप के कृषि विकास प्रारूप का विस्तार से अध्ययन करेंगे। शुल्ज के अनुसार परम्परावादी अर्थव्यवस्था के रूपान्तरण हेतु कृषि का रूपान्तरण आवश्यक है। शुल्ज का मत हैं कि यदि किसान परम्परागत तरीके से खेती करता है तो वह पैदावाद में अधिक वृद्धि नही कर पायेगा, इसके विपरीत यदि आधुनिक तरीके से खेती करता है तो वह अधिक उपज पैदा करता है। परम्परागत तरीके से की गयी कषि से किसानों की आर्थिक स्थिति निम्न स्तर की ही बनी रहती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि परम्परावादी कृषि का रूपान्तरण कर कृषि को लाभदायक क्षेत्र बनाया जाये। कृषि भी आर्थिक विकास का एक शक्तिशाली स्रोत बन सकती है बशर्ते इसमें सुनियोजित ढंग से निवेश किया जाये जिससे कृषक इस क्षेत्र में विकास के प्रति आकर्षित हो।

परम्परागत कृषि पद्धति के बदलाव में कृषि फार्म का आकार, कुशल कृषि कार्य, कृषकों को प्रोत्साहन आदि क्षेत्र में निवेश किया जाये। कृषि संसाधनों के विकास के साथ-साथ विक्रय व्यवस्था को प्रभावी बनाया जाये। कृषकों को नयी जानकारी एवं प्रशिक्षण दिया जाये। ये सभी कदम आधुनिक कृषि के विकास में योगदान देंगे।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि शुल्ज का कृषि विकास प्रारूप परम्परावादी कृषि से आधुनिक कृषि की ओर रूपान्तरण है। अब हम इस इकाई के दूसरे भाग में बोसरप के कृषि विकास का अध्ययन करेंगे।

बोसरप का मत है कि बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण कृषि का विकास भी होने लगता है। समय के साथ-साथ बढ़ती जनसंख्या के कारण कृषि विकास भी होता हैं जो पांच अवस्थाओं से होकर गुजरता है। बोसरप ने तो यहाँ तक स्वीकार किया है कि जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ कृषि का ही विकास नही होता बल्कि तकनीकी का भी विकास होने लगता है जिसके परिणामस्वरूप कृषि के स्वरूप में ही परिवर्तन आने लगता है जिससे बाद में सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन आने लगते हैं जो अन्ततः निवेश को भी बढ़ाते है। अब हम बोसरप के कृषि विकास प्रारूप की व्याख्या करेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल होंगे कि

- ✓ कृषि विकास का इंजन है।
- ✓ कृषि में निवेश कर उसकी लाभदायकता कैसे बढ़ायी जा सकती है।
- ✓ पारंपरिक खेती की अवधारणा से परिचित होंगे।
- ✓ शून्य श्रम के अर्थ को समझेंगे।
- ✓ अदृश्य बेरोजगारी की परिभाषा जानेंगे।
- ✓ कृषि के रूपान्तरण की प्रक्रिया की समीक्षा कर सकेंगे।
- ✓ कृषि विकास की प्रमुख अवस्थायें कौन-कौन सी है।
- ✓ बढ़ती जनसंख्या से कृषि विकास किस प्रकार प्रभावित होता है।
- ✓ विभिन्न अवस्थाओं का अर्थ तथा उनमें आपस के अन्तर को भी जानेंगे।
- ✓ कृषि समुदाय का सामाजिक ढांचा, जनसंख्या वृद्धि से कैसे प्रभावित होता है।

16.3 शुल्ज का कृषि विकास प्रारूप

प्रो. शुल्ज ने पारम्परिक खेती के सन्दर्भ में एक विस्तृत विचारधारा प्रस्तुत की है जिसका वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक 'ट्रांसफॉर्मेशन ट्रेडीशनल एग्रीकल्चर' में (Transformation of Traditinal of Agriculture) (1964 में प्रकाशित) वर्णन किया है जिसमें कृषि का रूपान्तरण है। रूपान्तरण से अभिप्राय है सामन्वाद से पूंजीवाद की ओर रूपान्तरण। इस पुस्तक में उन्होंने खेती की आधुनिकरण के कई तरीके सुझाए हैं। इस पुस्तक में पिछड़ी खेती की उन्नत बनाने पर चर्चा की गई थी।

किसी भी अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के लिए कृषि का विकास एक अनिवार्य पूर्व निर्धारित शर्त है। यदि किसान अपने पूर्वजों की भांति कृषि करेंगे तो वे अधिक उत्पादन करने में सक्षम नहीं होंगे चाहे उनकी भूमि अधिक उपजाऊ क्यों न हो और उस पर कृषक कितनी ही मेहनत क्यों न करें। केवल वही किसान जिनकों आधुनिक तकनीकी का ज्ञान है और जो खेती में विज्ञान तथा नई तकनीक का प्रयोग करते हैं अधिक उत्पादन करने में सफल होंगे, चाहे उनकी भूमि घटिया ही क्यों न हो और किसान द्वारा भी कम मेहनत की जाती हो। कृषक सदियों से चली आ रही जिस तकनीक का प्रयोग पीढ़ी दर पीढ़ी करते आ रहे हैं, उस कृषि को पारंपरिक कृषि कहा जाता है। जो देश पारंपरिक कृषि पर निर्भर करता है वह अवश्यमेव निर्धन देश होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार पारंपरिक खेती का उच्च उत्पादक आधुनिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन किया जाए। शुल्ज के अनुसार कृषि में निवेश कर के स्वरूप को बदला जा सकता है। यदि कृषि में निवेश किया जाए तो इस क्षेत्र की क्रिया प्रणाली में सुधार होगा तथा कृषि को लाभदायक बनाया जा सकता हैं। शुल्ज का सिद्धान्त कृषि को आर्थिक विकास का एक स्रोत मानता है। कृषि को विकास का एक इंजन बनाने के लिए यह अनिवार्य है कि इस क्षेत्र में निवेश किया जाए जो किसानों को दिशा-निर्देश के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। जब एक बार कृषि में निवेश के अवसर तथा किसनों को कुशल प्रेरणा दी जाए तो किसान मिट्टी को सोने में बदल देंगे। शल्ज के सिद्धान्त को समझने हेत हमें पहले पारम्परिक खेती की अवधारणा को समझना होगा।

16.3.1 पारंपरिक कृषि की अवधारणा

पारंपरिक खेती को परिभाषित करने से पूर्व शुल्ज ने इस बारे में प्रचलित कुछ भ्रान्तियों का निराकरण करने की कोशिश की है। उसके अनुसार

(अ) पारंपरिक खेती की उस समाज की परंम्परओं से कुछ लेना देना नही होता। खेती किसी भी समाज की परम्पराओं और रीतियों से प्रभावित हुए बगैर पारंपरिक हो सकती है। यह आवश्यक नहीं कि केवल एक संकीर्ण, अन्धविश्वासी समाज ही पारंपरिक ढंग की खेती पर अमल करे। एक उन्नत समाज में भी खेती का ढंग पारंपरिक हो सकता है। शुल्ज का मानना है कि पूंजी का संचालन या अधिक श्रम का प्रयोग आर्थिक कारकों द्वारा निर्धारित होता है न कि सांस्कृतिक कारणों से।

(ब) पारंपरिक खेती का उस देश की संस्थागत व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नही होता। किसी भी तरह की संस्थागत व्यवस्था के बावजूद खेती पारंपरिक हो सकती है। अधिकतर लोग यह मानते है कि पारंपरिक खेती का संबंध छोटी जोतों से होता है। जबकि शुल्ज के अनुसार वास्तविकता यह नही है। जापान में जोतों का आकार छोटा होने के बावजूद वहां की खेती की पारंपरिक नहीं कहा जा सकता। हालैंड में खेती को काश्तकारों द्वारा करवाने का प्रचलन आम है लेकिन वहां की खेती पारंपरिक नहीं है।

शुल्ज के अनुसार पारंपरिक खेती एक आर्थिक अवधारणा है। यह एक किस्म का सन्तुलन है जिसके लिए आवश्यक कारक निम्न है:

1. कलाओं की स्थिति स्थिर रहती है।
2. आय के स्रोतों की प्राप्ति और संचयन के उद्देश्य और प्राथमिकताओं की स्थिति भी स्थिर रहती है।

3. ये दोनों स्थितियां तब तक स्थिर रहती हैं जब तक कृषि कारकों का आय का स्रोत मानने वाली सीमान्त प्राथमिकताएं इनकी सीमान्त उत्पादकता के सन्तुलन में नही आ जाती।

शुल्ज का मानना है कि जब कृषि क्षेत्र में प्रयोग की जाने वाली प्रौद्योगिकी में लम्बे समय तक परिवर्तन नहीं होता और जब इसके सब घटकों का प्रयोग वह कर लेते है तो एक समय ऐसा आ सकता है जब इन अवयवों की सीमान्त उत्पादकताएं और उनकी लागतें एक-दूसरे के बराबर हो जाएं। यह सन्तुलन की स्थिति है। ऐसी हालत में इन अवयवों में निवेश समाप्त हो जाएगा। अलबत्ता इनके इस्तेमाल का स्तर नही बदलेगा। इस स्थिति में बचत भी समाप्त हो जायेगी। यहीं वह अवस्था है जब खेती का चरित्र पारंपरिक हो जाता है। ऐसी स्थिति में खेती गतिशील नहीं होगी। उसमें तब तक ठहराव बना रहेगा जब तक उत्पादन के तरीके नही बदलते। यह बात स्मरणीय है कि शुल्ज की परिभाषा के अनुसर प्रौद्योगिकी वाली खेती भी पारंपरिक हो सकती है जबकि अधिकांश लोगों का मानना है कि केवल पिछड़ी और श्रम आधारित कृषि ही पारंपरिक कृषि होती है।

16.3.2. पारंपरिक खेती की विशेषताएं।

पारंपरिक खेती की मुख्य विशेषताएं निम्न है

(1) आबंटनात्मक कुशलता : एक सामान्य अवधारणा यह है कि पारंपरिक खेती में संसाधनों का आवंटन ठीक नही होता है। शुल्ज ने इस कथन का खंडन किया है। शुल्ज की परिभाषा से यह निष्कर्ष निकलता है कि पारंपरिक खेती में संसाधनों का आवंटन उचित होता है। इसका कारण यह है कि फसलों को पैदा करने का तरीका और तदनानुसार उत्पादन के तमाम कारकों के प्रति प्राथमिकताएं अपरिवर्तित रहती हैं। जब किसानों को इन हालातों के अन्तर्गत साल-दर-साल एक जैसी प्राप्ति होती है तो वे अपने निवेश का प्रत्येक कारक में इस प्रकार सामयोजित करते है कि हर कारक की सीमान्त उत्पादकता उसके मूल्य के साथ सन्तुलन में हो। यह सन्तुलन तब तक जारी रहेगा जब तक उपजाने की कला में परिवर्तन न हो। **शुल्ज** के अनुसार "***पारंपरिक खेती में उत्पादन के कारकों के आबंटन में अपेक्षाकृत कम सार्थक अकुशलताएं है***।' पारंपरिक खेती में सन्तुलन बनाये रखने के लिए शुल्ज ने कुछ मान्यताएं स्थापित की जो कि निम्न है:

(i) पहली मान्यता उत्पादन के कारकों की प्रकृति के बारे में है। इनको लम्बे समय तक बिना परिवर्तन के इस्तेमाल किया जाता रहा है। यदि ये कारक बदलते रहे तो उनकी प्राप्तियां भी बदलती रहेंगी और एक स्थायी सन्तुलन नहीं बन सकता। शुल्ज के अनुसार खेती की तो पारंपरिक कहा ही नहीं जा सकता अगर उत्पादन के कारकों की प्रकृति निरन्तर बदलती रहे।

(ii) सड़क निर्माण या नहर खोदने जैसा कोई काम नहीं होना चाहिए। इन गतिविधियों से सन्तुलन बिगड़ने का खतरा बना रहता है।

(iii) युद्ध विभाजन और क्षेत्र में श्रमिकों की भर्ती से भी खेती का सन्तुलन अस्थायी तौर पर गड़बड़ा जाता है।

(iv) उत्पादन के सभी कारकों और कृषि उत्पादों की कीमतें स्थिर रहनी चाहिए।

(v) चूंकि कलाओं की स्थिति में बदलाव नहीं होता इसलिए किसी दौर में प्रौद्योगिकी परिवर्तन की पारंपरिक खेती में कोई जगह नहीं होती।

(2) निर्धन किन्तु योग्य परिकल्पना : संसाधन के आबंटन सम्बन्धी मान्यताओं से शुल्ज ने एक और परिकल्पना स्थापित की है। उनका मानना था कि पारंपरिक खेती में संलग्न लोग संसाधनों के आबंटन के दृष्टिकोण से योग्य होने के बावजूद निर्धन होते है। संसाधनों के संतोषजनक आबंटन से किसानों को ज्यादा आय नहीं होती है। इसका कारण यह है कि उपलब्ध संसाधनों से प्राप्तियां काफी कम होती हैं और वे सीमित संसाधनों से अधिकतम प्रतिफल ले रहे होते है। पारंपरिक खती में कोई भी संसाधन बेरोजगार नही है। इस शुल्ज अदृश्य बेरोजगारी की अवधारणा का खंडन करते है। शुल्ज इस तथ्य का भी समर्थन करते है कि पारंपरिक कृषि में भी

योग्य उद्यमियों की कोई कमी नहीं है। शुल्ज के अनुसार संसाधनों का समुचित आवंटन तभी होगा जब पारंपरिक खेती में भी किसान मूल्यों के प्रति क्रियाशील होते है।

3. शून्य श्रम की अनुपस्थिति-नर्कसे जैसे अर्थशास्त्रियों के अनुसार कृषि क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी विद्यमान होती है जिसे अल्पविकसित देशों में औद्योगिक विकास और पूंजी निर्माण में लगाया जा सकता है। जबकि शुल्ज अदृश्य बेरोजगारी की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते है। उनका मत है कि पारंपरिक कृषि में काम के इच्छुक हर व्यक्ति को अपने श्रम का मूल्य मिल जाता है जिससे उसकी सीमान्त उत्पादकता कभी भी शून्य नहीं होती है। अदृश्य बेरोजगारी की अनुपस्थिति को ही शुल्ज ने शून्य श्रम कहा है। अतः पारंपरिक कृषि में कोई शून्य श्रम नहीं होता है।

16.3.3. पारंपरिक खेती एवं आर्थिक विकास

प्रो0 शुल्ज के अनुसार पारंपरिक खेती आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह दो धारणाओं पर निर्भर करता है :

(क) आज्ञा प्रस्ताव- आज्ञा प्रस्ताव राजनैतिक शक्ति पर आधारित है जिसमें कृषि उत्पादन को नहीं पहचाना जाता परन्तु खेती की क्रियाओं को प्रशासित किया जाता है।

(ख) बाजार प्रस्ताव- बाजार प्रस्ताव आर्थिक प्रेरणाओं पर आधारित है जो किसान का मार्गदर्शन करता है कि वह उत्पादन संबंधी निर्णय ले और उनकों उनकी आबंटित कुशलता के आधार पर पारितोषिक दे।

शुल्ज ने इन दोनों प्रस्तावों में अन्तर को स्पष्ट किया है- वे हैं कुशलता की अनुपस्थिति और कृषकों की खेती से संबंधित निर्णय लेने की योग्यता। ऐतिहासिक अनभव का वर्णन करते हए यह कहा जा सकता है कि बार-बार लोगों ने विशेष पारंपरिक खेती का रूपान्तरण नए साधनों को अपनाकर तथा उसका प्रयोग करके किया है। अन्य शब्दों में तकनीक परिवर्तन पारंपरिक किसानों को आसानी से उपलब्ध कराया जाना चाहिए तथा आसानी से स्वीकार भी किया जाना चाहिए। तभी पारंपरिक कृषि को आर्थिक विकास का स्रोत बनाया जा सकता है। इसके लिए कृषि का रूपान्तरण किया जाना चाहिए। रूपान्तरण का अभिप्राय है पारंपरिक कषि उत्पादन में वद्धि। इस सन्दर्भ में आपकों यह अवगत कराना आवश्यक है कि शुल्ज अल्पविकसित देशों की इस परिकल्पना की आलोचना करतें हैं कि अल्पविकसित देशों में साधनों का उचित ढग से इस्तेमाल न होने के कारण कृषि अकुशल होती हैं। शुल्ज का मत हैं कि भूमि के भूमि के अन्तर का महत्व कम होता है और खेतों में काम कर रहे लोगों की योग्यता का अन्तर महत्वपूर्ण होता है। आज इस आधार पर भूमि के अन्तर का महत्व कम होता है और खेत में काम कर रहे लोगों की योग्यता का अन्तर महत्वपूर्ण होता है आज इस आधार पर कृषि उत्पादन में अन्तर पाया जाता है। भारत की अपेक्षा मैक्सिकों और जापान की कृषि सौ गुणा अच्छी है। यह इसलिए नहीं है कि मैक्सिको और जापान की जमीन अच्छी है बल्कि सुधरी हुई तकनीकी निपुणता, अच्छे बीज, अच्छी साख सुविधाओं के कारण हुआ है।

प्रो0 शल्ज ने असन्तलन के तीन मख्य कारण बताए हैं जो इस प्रकार हैं :

(क) परम्परागत- कृषि क्षेत्र में कला, रुचियां और उद्देश्य दीर्घकाल तक लगभग स्थिर रहते हैं। साधनों के मांग एवं पूर्तिकर्ता दीर्घकाल के पश्चात् सन्तुलन में आते है। इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि कृषि से प्राप्त होने वाली स्थायी आय का स्रोत उच्च कीमते है।

(ख) आधुनिक- इस अवस्था में किसान प्रायः खेती करने के लिए आधुनिक साधनों का प्रयोग करते हैं। उत्पादन के नए साधन खोजने तथा उन्हें लाभदायक बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्न किये जाते है। ताकि कृषि उत्पादकता मे वृद्धि हो। इस अवस्था में रुचियां और उद्देश्य स्थिर आय को प्राप्त करने वाले स्रोत दीर्घकालीन सन्तुलन से प्राप्त नहीं होते हैं। जैसा कि बहुत से देशों के सन्दर्भ में देखा गया है कि जब वे अपने रूपान्तरण की स्थिति में थे तो स्रोतों की

कीमतें कम थी तथा कृषि उत्पादन कम था। परिवर्तिता- इन दोनों परिस्थितियों को आर्थिक सन्तुलन की अवस्था कहा जाता है। यह परिस्थिति उत्पादन के साधनों की कीमतों मंक विषमता, जो उत्पादन की कीमत से अधिक होती है। यह असन्तुलन न तो कृषि पदार्थों की कीमत असमानताओं के कारण और न ही पारंपरिक और आधुनिक समय के अन्तर के कारण पैदा होता है परन्तु परिवर्तन की अवस्था तब प्राप्त होती है जब एक और अधिक साधनों की पूर्ति लाभदायक होती है।

16.4 रूपान्तरण की प्रक्रिया

एक बार जब यह पता चल जाता है कि वे कौन-कौन से तत्व है जिनके द्वारा तकनीकी परिवर्तन लाकर पारंपरिक कृषि को हस्तांतरित किया जाता है तब भी हमारें सामने मुख्य समस्या यह आती है कि इन तकनीकी परिवर्तनों को किस प्रकार ग्रहण कर किसानों को इसके अनुरूप ढाला जाए और कैसे किसानों को इनका प्रयोग करने तथा स्वीकार करने के लिए तैया किया जाए। शुल्ज के अनुसार रूपान्तरण की इस सारी प्रक्रिया का वर्णन साधनों की मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा किया जाता है। यह बात सुनिश्चित की जानी चाहिए कि नए उत्पादन के साधन पारंपरिक उत्पादन के साधनों की उपेक्षा अधिक लाभदायक है और किसान भी इन उत्पादन को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, तभी कृषि उत्पादन में इन साधनों का प्रयोग किया जाएगा। सबसे पहले हम उन तत्वों का उल्लेख करेंगे जिनका संबंध पूर्ति की समस्या से है तथा इन समस्याओं को दूर करने के लिए क्या-क्या सुझाव दिए जा सकते हैं।

16.4.1. नए साधनों की पूर्ति-

पूर्ति पक्ष की ओर से यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि नए साधनों की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में हो और उनकी कीमते भी उचित होनी चाहिए। यह दोनों परिस्थितियां प्रभावशाली लाभ के लिए अनिवार्य है।

शुल्ज के अनुसार उत्पादन के साधनों की पूर्ति एवं उनकी पूर्ति संबंधी प्रक्रिया में तीन मुख्य कदम अनिवार्य रूप से उठाये जाने चाहिएं जो इस प्रकार है .

(अ) अनुसंधान एवं विकास

(ब) कृषकों को आगतों का वितरण

(स) नए ज्ञान का विस्तार इनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

(अ) अनुसंधान एवं विकास- शुल्ज के अनुसार पारंपरिक खेती को आधुनिक बनाने में विज्ञान तकनीक का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शुल्ज का यह भी मानना है कि पारंपरिक खेती में उत्पादन की विधियां लम्बे समय तक स्थिर रहती हैं और इस अवस्था में नए साधन का विकास इसके अन्दर से नहीं हो सकता है। इस प्रकार यह अनिवार्य हो जात है कि नए साधनों तथा तकनीक का आयात उन देशों से किया जाए जिन्होंने अपने कृषि क्षेत्र का आधुनिकीकरण किया है। यह उत्पादन के साधनों को प्राप्त करने की सस्ती विधि है।

इन साधनों को प्राप्त करने के बाद इन साधनों को आयात किए जाने वाले देश की परिस्थितियों के अनुकूल ढ़ाला जाना चाहिए। क्योंकि भौतिक तत्व जैसे मिट्टी, जलवायु इत्यादि अलग-अलग देशों में अलग-अलग होते हैं। अन्य शब्दों में इन साधनों का एकदम सीधा प्रयोग न तो उत्पादक होता है और न ही लाभदायक। अनुसंधान तथा विकास की सुविधाएं विस्तृत स्तर तक दी जानी चाहिए ताकि आयात की गई आगतों का ठीक ढंग से उपयोग हो सके।

(ब) कृषकों को नई आगतों का वितरण- यदि यह मान भी लिया जाये कि नई आगतों को कृषि की भौतिक परिस्थितियों के अनुकूल बना दिया गया है तो अगला कदम इनके वितरण के लिए अधोसंरचना की स्थापना है। यहां शुल्ज फिर गंभीर है कि इन आगतों के वितरण का दायित्व किसको दिया जाना चाहिए। यह प्रश्न तब पैदा नहीं होता जब उत्पादकों को इन आगतों के प्रयोग की जानकारी पहले से ही प्राप्त होती है। इस

अवस्था में कोई भी संस्था वितरण कार्य अपने हाथ में ले सकती हैं। नई आगतों का वितरण करते समय कई प्रकार की कठिनाइयां आ सकती हैं। शुरू में आगतों की मांग बहुत सीमित हो सकती है और बाजार में प्रवेश की लागत बहुत ऊंची हो सकती है। बाजार लागत सीमित हो सकती है और बाजार में प्रवेश की लागत बहुत ऊंची हो सकती है। बाजार लागत में निम्नलिखित लागतें शामिल हो सकती है

(1) आगतों को परिस्थितियों के अनुकूल ढालने की लागतें।

(2) इन आगतों की सूचना पहुंचाने की लागत।

(3) प्रवेश की अन्य लागते जैसे सामाजिक तथा राजनैतिक विरोध आदि।

(स) नये ज्ञान का विस्तार–भौतिक आगतों की उपलब्धिता का तब तक किसानों को कोई लाभ नहीं होगा जब तक उत्पादकों को उन उपकरणों के प्रयोग की विधि और प्रभावशालिता का ज्ञान न हो। जब नई आगत कृषि में व्यावाहरिक रूप धारण कर लेती है तब किसी एक एजेंसी की आवश्यकता होती है जो इसकी सूचना को कृषकों तक पहुंचाए। इस अवस्था में एक विकसित विस्तार सेवा एजेंसी होनी चाहिए जो इस नई वैज्ञानिक विधि का प्रसार उत्पादकों तक पहुंचाए।

16.4.2. नए साधनों की मांग-

राज्य का कर्तव्य न केवल नए उत्पादन के साधनों की पूर्ति करना और उनको उत्पादकों को उपलब्ध कराना होता है बल्कि यह भी सुनिश्चित करना होता है कि उत्पादक इस नए साधन को अपनाने के लिए तैयार हैं। अन्य शब्दों में राज्यों को इन आगतों के प्रति मांग पैदा करनी होगी।

शुल्ज के अनुसार यह कहना गलत है कि पारंपरिक कृषि में किसान नई आगतों का विरोध करते हैं और उसे नहीं अपनाना चाहते हैं। शुल्ज के अनुसार इन आगतों के प्रयोग के लिए केवल प्रेरणाओं (incentive) की जरूरत होती है। दूसरा कारण जिसकी वजह से कृषक नए उत्पादन के साधनों को अपनाते है वह शुद्ध रूप से आर्थिक कारण है जिसे लाभ की दर भी कहा जाता है। गैरपरम्परागत साधन की लाभ दर दो बातों पर निर्भर करती है

(अ) नई आगत की पूर्ति कीमत

(ब) प्रत्याशित आय इनका वर्णन इस प्रकार है

(अ) नई आगत की पूर्ति कीमत- नई आगत की लाभ दर इस आगत की कीमत और उससे प्राप्त होने वाली आय के ऊपर निर्भर करती है। शुल्ज के अनुसार नई आगत विकसित देशों के अनुकूल हो सकती है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह अल्पविकसित देश के अनुकूल हो। आरम्भ में अल्पविकसित देशों में नई आगत की पूर्ति कीमत अधिक होती है क्योंकि आरम्भ में इसके प्रयोग के लिए कौशल प्रयोग करने के ज्ञान की लागत भी इसमें शामिल होती है। इसलिए सरकार को प्रारम्भ में इन उपकरणों पर वित्तीय सहायता देनी चाहिए।

(ब) प्रत्याशित आय- नई आगत को प्रयोग करने से पहले उत्पादक न केवल उसकी पूर्ति कीमत को जानता है बल्कि उसकी प्रत्याशित आय को जानने में भी दिलचस्पी रखता है। कृषक नई आगतों का प्रयोग तभी करेगा जब आगत से प्रत्याशित आय उसकी पूर्ति कीमत से अधिक हो। नई आगतों की उपलब्धिता तथा उनकी किसानों द्वारा स्वीकारता का वांछित परिणाम प्राप्त हो क्योंकि इसके लिए किसानों को अतिरिक्त ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होगी। यदि किसान को इस आगत का ज्ञान न हो और न ही वह इसे अपनी इच्छानुसार प्रयोग करना चाहता हो तब इस नई आगत का कृषक को कोई लाभ नहीं होगा। इसीलिए शुल्ज ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि पारंपरिक खेती का रूपान्तरण करने के लिए कृषकों को नए उत्पादन के साधनों का कौशल और ज्ञान प्रदान किया जाए।

16.5 शुल्ज के कृषि विकास प्रारूप की आलोचनायें

अन्य मॉडलो की भांति शुल्ज का कृषि विकास प्रारूप भी द्वारा आलोचना रहित नही है। इस सिद्वांत की मुख्य आलोचनाएं निम्न है

1. सामान्य धारणा- शुल्ज का सिद्धांत बहुत सामान्य है जो केवल विशेष परिस्थितियों में ही लागू होता है। शुल्ज ने आर्थिक तत्वों को बहुत अधिक महत्व दिया है जबकि सांस्कृतिक तत्वों की पूर्ण रूप से अवहेलना की है। वास्तव में ये तत्व पारंपरिक खेती के रूपान्तरण में बहुत अधिक महत्व रखते है।

2. साधन आबंटन की अकुशलता- बहुत से अल्पविकसित देशों में संसाधनों क आवंटन से स्पष्ट है कि पारंपरिक कृषि में संसाधनों का आवंटन कुशल नही होता है जबकि शुल्ज का मानना है कि पारंपरिक कृषि में संसाधनों का आबंटन कुशल होता है।

3. शिक्षा एवं जागरूकता का अभाव- शिक्षा एवं जागरूकता के अभाव के कारण किसानों को आर्थिक प्रोत्साहन दिये भी जाये तो भी वह नयी आगतों को स्वीकार करने में तैयार नही होते हैं।

4. छिपी बेरोजगारी की विद्यमानता- बहुत से अल्पविकसित देशों में छिपी हुई बेरोजगारी विद्यमान होती है, इसके कारण पारंपरिक कृषि में रूपांतरण करना कठिन होता है। शुल्ज ने इस पहलू का ठीक ढंग से विश्लेषण नहीं किया है।

5. आज्ञा विधि- शुल्ज के अनुसार बाजार विधि आज्ञा विधि की अपेक्षा अधिक कुशल है। परन्तु रूपांतरण की प्रक्रिया में विकासशील देशों में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक तत्वों का बहुत अधिक महत्व है।

6. आत्म-विरोधी- पारंपरिक और आधुनिक कृषि में भूमि तथा उत्पादन का वितरण करने के लिए शुल्ज ने किसी वैज्ञानिक विधि एवं नीति का उल्लेख नही किया है। अपने पूरे विश्लेषण में शुल्ज ने केवल अधोसंरचना में सुधार एवं विस्तार पर बल दिया है।

निष्कर्ष में हम यह कह सकते है कि शुल्ज द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत द्वारा पारंपरिक खेती के आधुनिक खेती में रूपांतरण और हरित क्रान्ति लाने में काफी सहायता मिली है। इस विश्लेषण को और भी उचित ढंग से स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि इसमें कृषि को विकास का इंजन और आधुनिक आगतों को स्वीकार्य करने के लिए कहा गया है।

16.6 बोसरप का कृषि विकास प्रारूप

बहुत से अर्थशास्त्री जिन्होंने कृषि विकास की प्रक्रिया मे आने वाली समस्याओं की चर्चा की है उनमें बोसरप का स्थान प्रमुख है। बोसरप कृषि विकास के कारणों का विश्लेषण करते हुए कहते है कि कृषि का विकास एक प्रकार से दबाव के कारण होता है और यह दबाव है बढ़ती हुई जनसंख्या। उसके विचारानुसार जनसंख्या का दबाव ही कृषि विकास में परिवर्तन लाता है। कृषि ढांचे का तकनीकी विकास और कृषि समुदाय का समाजिक ढांचा जनसंख्या वृद्धि द्वारा प्रभावित होता है। इस कथन का समर्थन बोसरप ने दक्षिण अफ्रीका और लैटिन अमेरिका जैसे देशों में कृषि विकास का परीक्षण करके किया है।

आपको बोसरप के कृषि प्रारूप को समझने से पहले माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त को समझना होगा। इस सिद्धांत के अनुसार राजनीतिक तथा तकनीकी परिवर्तनों के कारण जब खाद्यान्न की पूर्ति में वृद्धि होगी तो जनसंख्या में भी वृद्धि होगी और जनसंख्या तथा पूर्ति में एक नया सन्तुलन स्थापित हो जायेगा। अन्य शब्दों में यदि जनसंख्या खाद्यान्न की मात्रा से कम है तो जनसंख्या में वृद्धि होगी तथा खाद्य पूर्ति की अधिकता समाप्त हो जायेगी। अन्य शब्दों में यदि जनसंख्या जीवन निर्वाह से अधिक है तो धनात्मक नियंत्रण के कारण जनसंख्या कम हो जाएगी और सन्तुलन कायम हो जाएगा।

16.6.1 बोसरप का दृष्टिकोण एवं माल्थस

बसिरप ने अपने कृषि विकास प्रारूप में माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त के दो दृष्टिकोणों से अलग मत दिये है

i. माल्थस के साथ-साथ अन्य आर्थिक विश्लेषकों का मानना है कि अल्पविकसित देशों में दो विश्वयुद्धों के बाद जनसंख्या में जो वृद्धि हुई है, वह खाद्यान्न उत्पादन में परिवर्तन के कारण हुई है। परन्तु बोसरप का यह मानना है कि जनसंख्या में वृद्धि खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि के कारण नहीं हुई है बल्कि चिकित्सा क्षेत्र में अविष्कार की वजह से हुई है जिसे एक स्वतन्त्र चर माना जाता है।

ii. माल्थस के अनुसार यदि जनसंख्या जीवन निर्वाह से अधिक है तो धनात्मक नियन्त्रण के कारण जनसंख्या कम हो जायेगी और खाद्यान्न तथा जनसंख्या का सन्तुलन स्थापित हो जायेगा, सत्य है परन्तु बोसरप ने इसे अन्य ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार जब कभी जनसंख्या का दबाव बढ़ता है तो जनसंख्या कम नहीं होती। परन्तु यह जनसंख्या का दबाव बहुत से तकनीकी तथा अन्य परिवर्तनों को जन्म देता है जिसकी वजह से कृषि का विकास होता है और खाद्यान्न के उत्पादन को बढ़ाने के लिए अधिक आगतों का प्रयोग किया जाता है तो खाद्यान्न के उत्पादन को बढ़ाने के लिए अधिक आगतों का प्रयोग किया जाता है तो खाद्यान्न की पूर्ति बढ़ जाती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में यह में यह सत्य होता है कि जब कृषि उत्पादन को बढ़ाने में तीव्र वृद्धि होती है।

16.6.2. कृषि विकास प्रारूप की अवस्थाएं

भूमि प्रयोग के आधार पर बोसरप के कृषि विकास प्रारूप को पांच भागों में बांटा गया है

i. जंगल ऊसर

ii. झाड़ी ऊसर

iii. अल्प अवधि ऊसर

iv. वार्षिक फसल खेती

v. बहुफललय खेती

i. जंगल ऊसर– बोसरप के अनुसार कृषि को अपनी प्रारम्भिक अवस्था में बहुत ही सरल प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। केवल बीज और कुल्हाड़ी ही पूंजी के रूप में प्रयोग की जाती थी। इसको बोसरप ने जंगल ऊसर का नाम दिया है।

इस अवस्था में कृषि उत्पादन करने के लिए कम से कम श्रम तथा पूंजी की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में परिपक्व वनों को जला दिया जाता है, मिट्टी ढीली हो जाती है और राख से ढक जाती है। इसको छड़ी से भी खोदा जा सकता है। इस भूमि पर यदि किसी फसल को उगाना है तो खुरपी और हल की आवश्यकता नहीं होती। यह प्रक्रिया भूमि के विभिन्न हिस्सों पर बार-बार दोहराई जाती है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की खेती के लिए और प्रति इकाई उत्पादन के लिए कम श्रम और पूंजी की जरूरत होती है।

इस अवस्था को जंगल ऊसर इसलिए कहा जाता है। क्योंकि इसके ऊपर जो परिपक्व जंगल थे उन्हे जला दिया जाता है और फिर उस भूमि पर एक दो वर्ष के लिए खेती करके छोड़ दिया जाता है और तब तक भूमि को खाली रखा जाता है जब तक दुबारा उसी भूमि पर परिपक्व वन तैयार न हो जाए और फिर उन वनों को जलाया जाए। इस प्रकार भूमि को दीर्घकाल तक खाली रखा जा सकता है जब तक किसी देश में जनसंख्या कम होती है और यह अवधि 25 वर्ष तक की हो सकती है।

ii. झाड़ी ऊसर– बोसरप के अनुसार अब हमें यह देखना है कि जब जनसंख्या बढ़ रही होती है और इसकी खाद्यान्नों के प्रति मांग परिपक्व जंगलों को जलाकर पूरी नहीं हो सकती तब क्या किया जाना चाहिए? जंगलों को परिपक्व अवस्था में पहुंचाने के लिए दीर्घकालीन समय की आवश्यकता होती है। स्पष्ट है कि इस अवस्था में समुदाय उन जंगलों को जलाने के लिए विवश हो जाता है जो कम परिपक्व है। जब कम परिपक्व जंगलों को बार-बार जलाया जाता है तो इस अवस्था को झाड़ी बंजर अवस्था कहा जाता है। यह वह अवस्था है जब

वनों के बजाय झाड़ियों तथा छोटे पेड़ों को जलाया जाता है। जब झाड़ियों को जलाया जाता है तो कई प्रकार की जंगली घास जीवित रह जाती हैं। भूमि कठोर हो जाती है बजाय इसके वे ढीली पड़े जैसे कि जंगल ऊसर के दौरान होता है। अब इस प्रकार की भूमि पर खेती करने के लिए छड़ी की अपेक्षा एक मजबूत यन्त्र जैसे कि खुरपी और अधिक श्रम की आवश्यकता होगी। यह इसलिए कि घास को जलाना आसान नहीं होता। खुरपी से सारा घास नहीं निकाला जा सकता है इसीलिए अधिक श्रम की जरूरत पड़ती है। इस अवस्था में बंजर भूमि की अवधि 25 वर्ष से कम होकर 6 वर्ष रह जाती है। बढ़ती हुयी जनसंख्या को अधिक खाद्यान्न की आवश्यकता होती है इसीलिए जंगलों की बजाय झाड़ियों को जलाना पड़ता है। इस प्रकार कृषि को जंगल ऊसर की अवस्था से झाड़ी ऊसर अवस्था में धकेलता है।

iii. अल्प अवधि ऊसर- जनसंख्या में और अधिक वृद्धि तथा खाद्यान्न के प्रति बढ़ती हुई मांग कृषि को अल्प अवधि ऊसर में धकेलती है। अब वह भूमि जो घास अन्तर्गत होती है उसका प्रयोग उसी रूप में करना पड़ता है। झाड़ी बंजर अवस्था में खुरपी एक महत्वपूर्ण यन्त्र था। यह सभी प्रकार की घास को नहीं हटा सकती। इस अवस्था में भूमि पर राख वाली खाद भी उपलब्ध नहीं होती क्योंकि जंगल में आग लगाने वाली प्रक्रिया भी धीमी पड़ चुकी होती है। गोबर, तालाब का कीचड़, कचरा आदि को खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके लिए अधिक पूंजी और श्रम की जरूरत होती है। इस अवस्था को अल्पकालीन ऊसर अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में भूमि एक या दो वर्ष के लिए ऊसर रहती है। कुछ समय के पश्चात् कृषक दुबारा उस खेत पर कृषि करना आरम्भ कर देते हैं।

iv. वार्षिक फसल खेती- वास्तव मे इस अवस्था में भूमि ऊसर नहीं होती है। फिर भी एक फसल की कटाई एक साल और दूसरी फसल की बुआई अगले साल होती है इसमें कुछ महीनों का अन्तराल होता है। वास्तव में यह अन्तर वाली अवधि जो दो फसलों के बीच होती है इसका उपयोग घास और चारा उगाने के लिए किया जाता है। बहुफसलीय खेती- यह भूमि प्रयोग की सबसे अधिक गहन विधि है। प्रत्येक वर्ष दो या दो से अधिक फसलें उगाई जाती है। इस प्रकार ऊसर अवधि नगण्य होती है। जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप चौथी और पांचवी अवस्था फिर अस्तित्व में आती है। इसमें न केवल अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है बल्कि अधिक मात्रा में श्रम की खपत भी होती है। साधारण खाद के अतिरिक्त हरी खाद, कचरा तथा घरों का कूड़ा, नहरों का कीचड़ आदि अनिवार्य हो जाते हैं। बहुफसली खेती के लिए अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है।

ऊपर वर्णित अवस्थाओं में प्रति एकड़ खाद्यान्न उत्पन्न करने के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है। जैसे खाद्यान्न की आवश्यकता बढ़ती है और कृषि अल्प अवस्था में पहुंचती है तो बोझ उठाने वाले पशुओं जैसे बैल की जोड़ी की आवश्यकता पड़ती है। जब भूमि पर्याप्त मात्रा में होती है और खाद्यान्न के प्रति मांग कम होती है तो समुदाय इस प्रकार के पशुओं की अनदेखी करता है। परन्तु जब जनसंख्या का घनत्व बढ़ता है, कृषि क्रियाओं का आकार भी बढ़ जाता है और बोझ वाले पशुओं की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। अब उनको अच्छे घास और चारे की जरूरत होती है। इस प्रकार अब न केवल खाद्यान्न बल्कि चारें के लिए मांग बढ़ जाती है। अब और अधिक श्रमिकों की जरूरत होती है।

बोसरप के अनुसार कृषि का विकास जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप हुआ है और इस बात को सिद्ध करने के लिए उसने बहुत से देशों जैसे उत्तरी तथा दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका तथा यूरोप के देशों के उदाहरण प्रस्तुत किए। कई और देशों के उदाहरण भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जहाँ पर जनसंख्या की कमी रोकने के लिए प्रवास बन्द किया गया और कई बार लोगों को शहरों से दुबारा गांव की ओर भेजा गया।

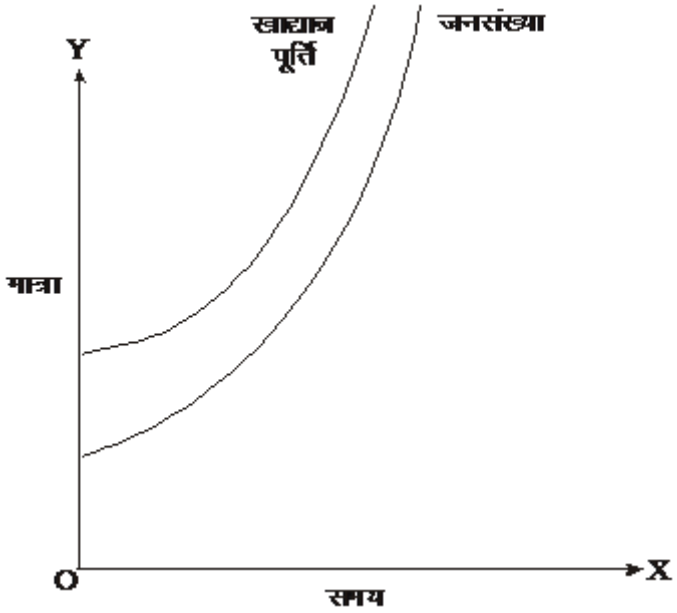

चित्र में X अक्ष पर समय तथा Y अक्ष पर मात्रा को दर्शाया गया है। बोसरप के अनुसार समय के साथ-साथ जैसे-जैसे जनसंख्या का आकार बढता है वैसे-वैसे खाद्यान्न पर्ति में वृद्धि हेतु कृषि क्रियाओं का आकार भी बढ़ता जाता है।

16.6.3. जनसंख्या वृद्धि एवं अन्य परिवर्तन।

बोसरप ने जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप कृषि विकास प्रारूप में परिवर्तनों के साथ-साथ अन्य परविर्तनों का भी उल्लेख किया है। यह परिवर्तन यन्त्रों से संबंधित है और उनके स्रोतों में भी परिवर्तन आता है। पहले जो कृषि यन्त्र घरों में बनाए जाते ये वे अब कारखानों में बनना प्रारम्भ हो जाते है।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन गांवों और शहरों को एक दूसरे के साथ जोड़ने से है। इसके लिए एक सुदृढ़ यातायात की सुविधा का प्रबन्ध करना होता है ताकि गांवों से शहरों को अनाज की पूर्ति हो सके। बोसरप का यह भी मानना है कि कृषि के विकास के लिए तकनीकी परिवर्तन अनिवार्य है और जनसंख्या वृद्धि खेती करने के ढंग में भी परिवर्तन करती है। खेती में परिवर्तन की वजह से सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन आता है। अन्ततः यह भी कहा जा सकता है कि बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण निवेश में भी वृद्धि होती है और निवेश की मांग में जनसंख्या वृद्धि किसी भी प्रकार की बाधा नहीं डालती है।

16.6.4. बोसरप के कृषि विकास प्रारूप

सिद्वांत की आलोचना अन्य सिद्वांतो की भांति बोसरप का कृषि विकास प्रारूप सिद्वांत की भी कड़ी आलोचना की गई है। शुल्ज के अनुसार बोसरप का सिद्धांत सामान्यतः गलत है। यह तभी ठीक होसकता है यदि हम इसका परीक्षण आधुनिक अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में करें। इसकी आलोचनायें निम्न प्रकार है

(क) बोसरप के सिद्धांत का यह दोष है कि यह उन देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर लागू नही होता जिन देशों की अर्थव्यवस्थाओं में शहरी औद्योगिक क्षेत्र कम विकसित होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा की अर्थव्यवस्था कम आबादी वाली होते हुए भी यह सिद्धांत लागू नही हो सकता।

(ख) बोसरप ने यह भी कहा है कि आधुनिक अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में बढ़ती हुई जनसंख्या कृषि क्षेत्र में ही समा जाती है परन्तु यह विचार संयुक्त राज्य अमेरिका जैसी अर्थव्यवस्था में लागू होता है जहां

जनसंख्या कम होती है। परन्तु अधिक जनसंख्या वाले एवं औद्योगिक दृष्टि से अविकसित देशों में यह सिद्धांत लागू नहीं होता है। (ग) बोसरप के अनुसार जनसंख्या के बढ़ने से गहन कृषि की जाती है और जनसंख्या के कम होने से विस्तृत खेती की जाती है। दक्षिण पूर्व एशिया में जनसंख्या वृद्धि को कृषि क्षेत्र में नहीं खपाया जा सका है अर्थात् छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या एक गंभीर समस्या बन गई है।

(घ) बोसरप ने बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रतिकूल प्रभावों जैसे विखण्डन एवं उपविभाजन जैसी समस्याओं का उल्लेख नहीं किया है। छोटे खेतों पर मशीनों आदि का प्रयोग नहीं हो सका है अतः पूंजी निर्माण की दर भी कम ही रही है।

(ड.) बोसरप का सिद्धांत सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक है परन्तु इसकी व्यवहारिक उपयोगिता बहुत ही कम है।

16.7 अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न 1

1. 'ट्रांसफार्मेसन ऑफ ट्रेडिशनल एग्रीकल्चर' पुस्तक के लेखक कौन है?
   (i) आर्थर लुईस
   (ii) शुल्ज
   (iii) शुम्पीटर
   (iv) फाई-रेनिस
2. शून्य श्रम में अदृश्य बेरोजगारी की स्थिति क्या होती है?
   (i) नहीं होती है
   (ii) होती है
   (iii) उपर्युक्त दोनो
   (IV) उपर्युक्त में से कोई नही
3. बाजार प्रस्ताव किन प्रेरणाओं से निर्धारित होता है?
   (i) राजनैतिक प्रेरणाओं से
   (ii) सांस्कृतिक प्रेरणाओं से
   (iii) आर्थिक प्रेरणाओं से
   (iv) उपर्युक्त सभी
4. शुल्ज के अनुसार अल्पविकसित देशों में संसाधनों का आवंटन किस प्रकार का होता है?
   (i) कुशल
   (ii) अकुशल
   (iii) दोनों
   (iv) उपर्युक्त सभी
5. शुल्ज का कृषि विकास प्रारूप किसके रूपान्तरण की बात करता है
   (i) परंपरागत कृषि
   (ii) आधुनिक कृषि
   (iii) समाजवादी कृषि
   (iv) उपर्युक्त सभी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. परंपरागत कृषि अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

2. पारंपरिक कृषि की प्रमुख विशेषतायें बताइये।
3. शून्य श्रम को परिभाषित कीजिए।
4. परंपरागत कृषि एवं आधुनिक कृषि में अन्तर बताइयें।
5. शुल्ज के कृषि विकास प्रारूप में रूपान्तरण की प्रक्रिया को समझाइये।

बहुविकल्पीय प्रश्न 2

1. बोसरप का कृषि विकास प्रारूप मे कृषि उत्पादन किससे प्रभावित है?
    (i) सेवाओं से
    (ii) जनसंख्या से
    (iii) शिक्षा से
    (iv) इनमें से कोई नही
2. जनसंख्या सिद्धान्त हेतु कौन-सा अर्थशास्त्री प्रसिद्ध है?
    (i) मार्शल
    (ii) कीन्स
    (iii) माल्थस
    (iv) रिकार्डो
3. बोसरप के कृषि विकास प्रारूप सिद्धान्त की कितनी अवस्थायें है?
    (i) दो
    (ii) तीन
    (iii) चार
    (iv) पाँच
4. बोसरप ने जंगल ऊसर अवस्था की समयावधि कितनी बतायी है?
    (i) 5 वर्ष
    (ii) 10 वर्ष
    (iii) 25 वर्ष
    (iv) इनमें से कोई नही
5. बहुफसलीय कृषि में एक वर्ष में कितनी फसलें उगायी जाती है?
    (i) एक
    (ii) दो से अधिक
    (iii) एक भी नही
    (iv) इनमें से कोई नही

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बोसरप के कृषि विकास प्रारूप सिद्धान्त की अवस्थायें कौन-कौन सी है?
2. जंगल ऊसर तथा झाड़ी ऊसर अवस्थाओं में अन्तर बताइये।
3. बोसरप का दृष्टिकोण माल्थस के दृष्टिकोण से किस प्रकार भिन्न है?
4. वार्षिक फसल खेती तथा बहुफसलीय खेती में अन्तर बताइये।
5. अल्प अवधि ऊसर को समझाइए।

16.8 सारांश

इस इकाई में आपने शुल्ज के कृषि विकास प्रारूप के बारे में जानकारी प्राप्त की। शुल्ज ने परम्परागत कृषि पद्धति में बदलाव हेतु कृषि फार्म का आकार, कुशल कृषि कार्य, कृषकों को प्रोत्साहन आदि कारकों को महत्वपूर्ण माना है। परम्परागत साधनों के स्थान पर नवीन कृषि यन्त्रों के प्रयोग का समर्थन करते हुए शुल्ज कहते है कि इसका प्रयोग अल्पविकसित देशों की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। शुल्ज के अनुसार अल्पविकसित देशों के कृषक रूढ़िवादी परम्पराओं बंधे होते है जिसके कारण वह आधुनिक साधनों के प्रति संकोची प्रवृत्ति के होते है अतः कृषकों को नवीन साधनों के प्रयोग के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था, शिक्षा की व्यवस्था तथा नये साधनों के प्रयोग के सम्बन्ध में जागरूकता पैदा की जानी चाहिए।

आप शुल्ज के कृषि विकास प्रारूप को समझ गये होंगे कि यदि किसान परम्परागत तरीके से खेती करता है तो वह उत्पादन में अधिक वृद्धि नहीं कर पायेगा। इसके विपरीत यदि वह आधुनिक तरीकों से कृषि करता हैं तो वह अधिक उत्पादन प्राप्त करता है। बोसरप ने अपने कृषि विकास प्रारूप में इस तथ्य का विश्लेषण किया हैं कि जनसंख्या के कम होने पर बिना तकनीकी वाली विस्तृत खेती की जाती हैं क्योंकि खाद्यान्न की मांग की तुलना में भूमि की उपलब्धता अधिक है। जनसंख्या के बढ़ने के साथ ही खाद्यान्न की मांग भी बढती जाती हैं। कृषि का स्वरूप बदलने लगता हैं। जनसंख्या के लगातार बढने से विस्तृत खेती की जगह गहन खेती ले लेती हैं जिसके साथ-साथ तकनीकी के स्तर में भी सुधार होता जाता हैं। कृषि की प्रगति औद्योगिक क्षेत्र की प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त करती हैं जो सामाजिक परिवर्तनों का वाहक भी बनती हैं।

16.9 शब्दावली

- **दोहरी अर्थव्यवस्था**-दो क्षेत्रों वाली अर्थव्यवस्था अतिरेक-अतिरिक्त पूँजी निर्माण-पूँजी का सृजन
- **निर्वाह मजदूरी**-न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राप्त होने आय पूँजीवादी देश- पूँजी की अधिकता वाले देश
- **परम्परावादी कृषि**– पुरानी विधियों पर आधारित कृषि साधनों का आबंटन- संसाधनों को बांटना
- **शून्य श्रम**- अदृश्य बेरोजगारी का अभाव प्रत्याशित आय- आय प्राप्ति की संभावना

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न 1

उत्तर- (i) शुल्ज (ii) नही होती है (iii) आर्थिक प्रेरणाओं से कुशल (v) परंपरागत कृषि

उत्तर- (i) शुल्ज (ii) नही होती है (iii) आर्थिक प्रेरणाओं से (iv) कुशल (v) परंपरागत कृषि

2. अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न 2

उत्तर- (i) जनसंख्या से (ii) माल्थस (iii) पाँच (iv) 25 वर्ष (v) दो से अधिक

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन एम०एल, विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा०लि0, नई दिल्ली।

- लाल एस0एन0 एवं एस0के0 लाल, आर्थिक विकास तथा आयोजन, शिव पबिलशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
- गुप्ता पी0के0, कृषि अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा०लि0, नई दिल्ली।

16.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शुल्ज के कृषि विकास प्रारूप के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. कृषि में श्रम की शून्य सीमान्त उत्पादकता पर शुल्ज के विचारों का उल्लेख कीजिए।
3. परंपरागत कृषि के रूपान्तरण में प्रमुख बाधायें कौन-कौन सी है? संक्षेप में समझाइए।
4. बोसरप के कृषि विकास प्रारूप सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. बोसरप के कृषि विकास प्रारूप सिद्धान्त की विभिन्न अवस्थाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
6. बोसरप के कृषि विकास प्रारूप सिद्धान्त की विभिन्न अवस्थाओं में अन्तर बताइये।